ISSN No :

वर्ष 1–त्रैमासिक अंक 1–(जनवरी-मार्च 2021)

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

अतिथि संपादक
प्रेम जनमेजय

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार
प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा
कार्यकारी संपादक
कामिनी
आवरण सज्जा
शुभ्रा मणि

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : अनुस्वार सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार :** संपादक : डॉ. संजीव कुमार
आवरण : विनय माथुर
टाइपिंग सेटिंग : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 50 रुपये
विशेषांक प्रति : 100 रुपये
वार्षिक : 600 रुपये
द्विवार्षिक : 1000 रुपये

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

विशेष सूचना

अनुस्वार में लिखित सामग्री लेखक/लेखिका के अपने विचार है,
जिसके लिए संपादक, प्रकाशक या मुद्रक उत्तरदायी नहीं होगा।

डॉ. संजीव कुमार के लिए, डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा प्रकाशित एवं बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

अतिथि संपादक : प्रेम जनमेजय

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से 7
अतिथि संपादक उवाच 9

आत्मकथ्य
यात्राएँ और पड़ाव 13

निकष पर काव्याभिव्यक्तियों के शब्दार्थ

गाँव और शहर के अंतर्विरोधों का सामना	:	प्रताप सहगल	21
मनुष्यता को रोपने की जिद	:	हरीश पाठक	23
अपनी जमीन निर्मित करती काव्याभिव्यक्तियाँ	:	प्रेम जनमेजय	24
अर्थ अमित आखर अति थोरे	:	गंगाराम राजी	29
कवितामय जीवन या जीवनमय कविता	:	डॉ. हरिसुमन बिष्ट	32
आकर्षित करता है ललित का काव्य-लोक	:	गिरीश पंकज	35
अलग तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न करती कविताएँ	:	पंकज सुबीर	36
बोलती बतियाती कविताएँ	:	रामस्वरूप दीक्षित	39
बहुत कुछ बाकी है अनकहा	:	डॉ. नीरज दइया	41
त्वरा के साथ स्वरा का वरण	:	डॉ. राजरानी शर्मा	43
समग्रता और समसामयिकता	:	डॉ. तबस्सुम जहां	45
मेरी कविता समझदार किसिम के लोगों पर	:	विपिन कुमार शर्मा	48

निकष पर हास्य-व्यंग्य का रचना संसार

ध्यान आकर्षित करने वाली दीवाली में सन्नाटा	:	सूर्यबाला	51
लालित्य ललित की व्यंग्य यात्रा	:	नीरज दहिया	53
ललित के व्यंग्य : ज़िंदगी का कोलाज	:	अरविंद तिवारी	57
एक बार चख तो लो पांडेयजी के लड्डुओं का स्वाद!	:	प्रो. बल्देव भाई शर्मा	59
जीवन की आकृति उकेरने वाला कुशल चितेरा	:	रमेश सैनी	61
लालित्य ललित के व्यंग्य और उसकी भाषा	:	विनोद साव	63
लालित्य ललित के व्यंग्य से गुजरते हुए	:	सुभाष चंदर	66
व्यंग्य काज कीन्हे बिनु लालित्य कहाँ विश्राम...!	:	पिलकेंद्र अरोरा	69
ललित आंदोलन	:	राजेशकुमार	71
विशाल मध्यवर्ग के प्रतीक पुरुष विलायतीराम पांडेय	:	अनुराग वाजपयी	74
व्यंग्य के अक्षय कुमार हैं लालित्य ललित	:	डॉ. संदीप अवस्थी	77

उम्र के पड़ावों को पीछे छोड़ता एक प्रखर रचनाकार	:	प्रभात गोस्वामी	78
आम आदमी की विसंगतियों पर चोट करने में सक्षम	:	मधु आचार्य आशावादी	80
अनुभूतिपरक स्थितियों पर मारक व्यंग्य में माहिर	:	रणविजय राव	72
जिंदगी की जंग और पांडेयजी	:	जयप्रकाश पांडेय	85
समकालीन हिंदी व्यंग्य के अग्रज ध्वजवाहक	:	हरीश कुमार सिंह	87
विलायतीराम पांडेय आम जीवन का महानायक है	:	चंद्रकांता	89
हास्य-व्यंग्य की दुनिया का गतिमान खिलाड़ी	:	प्रेम जनमेजय	96

आत्मकथ्य

जो लिख दिया सो लिख दिया	:	रणविजय राव	100
व्यंग्य में फूहड़ता का स्थान नहीं	:	सुनील जैन राही	106
कविता का अपना सौंदर्य है	:	चन्दन राय से संवाद	108
व्यंग्य कल आज और कल	:	रामगोपाल शर्मा की बातचीत	111
व्यंग्य तीर चलाते हैं : लालित्य ललित	:	सुनील जाधव से संवाद	114

मेरे लिए तुम्हारा होना : संस्मरण शृंखला

मेरी यादों के पहाड़ में वह खुशदिल शख्सियत	:	देवेन्द्र मेवाड़ी	119
लालित्य ललित एक मस्तमौला बहुआयामी व्यक्तित्व!	:	तेजेन्द्र शर्मा	122
विलक्षण प्रतिभा वाला व्यक्तित्व	:	सुधा ओम ढींगरा	124
एक अपना सा चेहरा	:	सुरेश सेठ	126
राजेश्वरी के मन की बातें	:	राजेश्वरी मंडोरा	128
लालित्य ललित दिलकश दिलदार दोस्त	:	डॉ. श्याम सखा श्याम	132
लालित्य ललित जी से मेरा पहला साक्षात्कार	:	पुष्पिंदरा चगती भंडारी	132
My Father From My Eyes	:	Sanskriti Mandora	133

भूमिका लेखन में भूमिका

व्यंग्य के सुपरिचित हस्ताक्षर	:	भाई दिलीप तेतरबे	135
ईमानदारी से लिखे गए व्यंग्य	:	डॉ. लालित्य ललित	136
अशोक व्यास के व्यंग्यों से गुरजना	:	डॉ. लालित्य ललित	138
नया वितान रचती प्रियंका जादौन की कविताएँ	:		140
पारुल तोमर की कविताओं से गुजरना	:		142
पुष्पिंदरा चगती भंडारी की कविताएँ स्पंदित करती हैं	:		144

लालित्य ललित की रचनाएँ

दिवाली का सन्नाटा	:	लालित्य ललित	146
पांडेयजी चैनल और अंतरराष्ट्रीय सीमा	:		149

स्वास्थ्य साहित्य

थैंक्यू कोरोना बनाम काम के गुलाम : डॉ. श्याम सखा श्याम 154

पहली कलम से

ग़ैर हाज़िर कंधे : प्रभात शुक्ला 156

सेवा का मूल्य : अर्चना मिश्र 160

काव्याभिव्यक्तियाँ

गाँव का खत : शहर के नाम : 162

शुभ्रामणि की कविताएँ : 168

गीता पंडित की कविताएँ : 170

प्रगति राय की कविताएँ : 171

रश्मि चौधरी की कविता : 172

नीरज मनमीत की कविता : 173

पारमिता षाडंगी की कविता : 174

विवेक रंजन की कविताएँ : 174

डॉ. राहुल की कविताएँ : 175

शशि किरण की कविताएँ : 175

अरूण शेखर की कविताएँ : 178

सोनीलक्ष्मी की कविताएँ : 180

विविध साहित्य

मॉब लिंचिंग : कारण और निवारण : सन्तोष खन्ना 181

समाचार का अनुस्वार **188**

इंडिया नेटबुक्स के महत्वपूर्ण आयोजनों एवं :
व्यंग्य यात्रा को मिले सम्मान समाचार

पुस्तक समीक्षा

उम्र भर देखा किए (जीवनी सूरज प्रकाश लेखक : विजय अरोड़ा) 190

मेरी दस रचनाएँ
लालित्य ललित
शिवना प्रकाशन
मेरी दस रचनाएँ
(व्यंग्य)
लालित्य ललित

पांडेय जी
लालित्य ललित के चुनिंदा व्यंग्य
आलोकपर्व
फेसबुक के कबीर
पाण्डेय जी के किस्से

मुख्य संपादक की ओर से

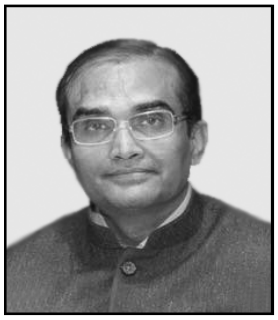

मेरे लिए यह अत्यन्त सुखद है कि "अनुस्वार" पत्रिका का शुभारंभ वसन्त माह में होने जा रहा है। वसन्त का शुभागमन ही आत्मिक हर्ष और उल्लास के साथ होता है। इसे ऋतुराज भी कहते हैं। ऋतुराज यानी ऋतुओं का राजा। यूँ तो सब ऋतुओं का अपना रंग और राग है, अपना-अपना महत्व है। फिर भी वसन्त के ठाठ ही कुछ निराले हैं। इसका अपना अतिरिक्त महत्व है। इसीलिए इसे ऋतुराज कहते हैं। इस ऋतु के आते ही विटपों में नयी-नयी कोपलें निकलने लगती हैं। सब हर्षोउल्लास से प्रफुल्लित हो आनन्द से झूम उठते हैं। नयी नयी खुशियाँ भर आती हैं। यूँ कहें कि वसन्त प्रेम की ऋतु है तथा सरस्वती के आह्वान का भी। माँ सरस्वती विद्या की देवी हैं। यह प्रेम और सुन्दरता की भी देवी हैं। एक हाथ में कमल, दूसरे में वेद एवं शेष दोनों हाथों से वीणा बजा रही हैं तो जाहिर है कि वह प्रेम व संगीत की देवी हैं। वैदिक ऋषियों की चेतना से अपना श्रृंगार करने वाली अनुपम सुन्दरी हैं। कमल के पार्थिव सौन्दर्य को सहेजती हुई वह यह शाश्वत संदेश दे रही हैं कि यह पृथ्वी बहुत सुन्दर है, प्रेम और सौहार्द बांटने के लिए है। कौन नहीं जानता कि साहित्य, कला, संगीत और सौन्दर्य से भरपूर है वसन्त। वसन्त आते ही वसन्त पंचमी पर्व की याद आती है। यह पर्व महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की जयन्ती का पावन पर्व भी है। निराला जी ने छन्द मुक्त कविता की शुरुआत की और नये सृजन की परम्परा की नींव रखी जो नव सृजन का प्रतीक है।

हम जानते हैं कि सफलता एवं सर्वग्रहिता की कामना करें और ये प्रयास भी करें कि भविष्य में यह पत्रिका नए आयाम ग्रहण करें। वसन्त नव सृजन का उत्सव है। तो आइये, हम वसन्तोत्सव के साथ "अनुस्वार" के नवांकुर यानी प्रवेशांक की बात करें। अनुस्वार मेरी एक महत्वपूर्ण कल्पना एवं सपना थी। इसके प्रकाशन पर और आज इसे मूल रूप देते हुए मैं भाव-विह्वल हूँ। यह पत्रिका अपने आप में एक नया संकल्प, एक नयी चेतना, नयी चेतना की ऊर्जा लिए हुए है। मैंने अनुभव किया है कि समकालीन सामाजिक एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में नवांकुरों को सृजनात्मकता से जुड़ने व जोड़ने की सबल प्रेरणा देने और उत्प्रेरित करने की दिशा-दृष्टि देने वाली सशक्त पत्रिकाएं कम हैं।

इसी सोच ने "अनुस्वार" को प्रसूत किया। मेरा ध्येय सिर्फ पत्रिका का प्रचारात्मक पक्ष नहीं है, और सम्पादकों की लम्बी श्रृंखला में खड़ा होकर हो हल्ला मचाना, बल्कि मेरी कामना है सहज प्रकृति से साहित्य का संवर्धन करना। अनुस्वार एक साहित्यिक पत्रिका के रूप में परिकल्पित की गई है जिसमें समकालीन साहित्य को उसकी विभिन्न विधाओं को समोहित करते हुए संवर्धित करने का प्रयास किया जाएगा।

इस प्रकार इसके प्रमुख स्तम्भों में आलेखों, कहानियों, कविताओं, समीक्षाओं, संस्मरणों साक्षात्कारों, यात्रा-वर्णनों के अतरिक्त कुछ विशिष्ट स्तम्भ भी परियोजित किए गए हैं। जैसे स्वास्थ्य साहित्य, विधि साहित्य एवं नवोदित रचनाकारों के लिए पहली कलम से, समय समय पर साहित्य के विशिष्ट व्यकितत्वों के समग्र भी प्रकाशित किए जाएंगे। अनूदित साहित्य को भी पर्याप्त स्थान दिया जाएगा।

ये निरन्तर प्रयास रहेगा कि साहित्य की गुणवत्ता को बनाए रखते हुए जहाँ तक हो सके नवोदित कलाकारों को प्रकाशन का अवसर मिले और साथ ही स्थापित साहित्यकारों के बारे में विशिष्ट सामग्री भी उपलब्ध हो और उनके ज्ञान के साथ-साथ प्रेराण का स्रोत भी बने। इस प्रकार अनुस्वार साहित्य की प्रायः हर विधा के साथ अनुवाद साहित्य को ही प्रश्रय दिया जाएगा। क्योंकि साहित्य सेवा राष्ट्र की सेवा है। साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतनक है।

ऐसा नहीं है कि आज साहित्य लिखा ही नहीं जा रहा है, निस्संदेह वह लिखा जा रहा है, और खूब लिखा जा रहा है। मगर साहित्य की सरिता जब जनता के हर्ष-विषाद से तरंगित होती है तभी गंगा के तुल्य उसमें अवगाहन करने से आत्मतुष्टि मिलती है। अस्तु। बसंतागमन के साथ प्रस्तुत पत्रिका के प्रमोचन के शुभ अवसर पर मैं वाग्देवी माँ सरस्वती से वन्दना करता हूँ कि समकालीन परिवेश में सभी में सुबुद्धि और सद्ज्ञान का संचार हो और वह राष्ट्र की अस्मिता के प्रति समर्पित भावना से अपने सृजन को सार्थक करें।

आचार्य रामचंद्रशुक्ल का एक कथन कौंधता है, कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है'। "अनुस्वार" का यह प्रवेशांक हिन्दी के युवा रचनाकार लालित्य ललित की सृजनशीलता पर केंद्रित है। उनकी रचनाओं में समाज, संस्कृति, कला, व्यंग्य आदि की विविध धाराएं प्रवाहित हैं एक लालितय ललित एक युवा कर्मठ विचारशील नेतृत्व गुण, सम्पन्न तथा लोकप्रिय व्यंग्यकार हैं। आज उनके लेखन को गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में सराहा जा रहा है। अनुस्वार के इस विविशष्ट अंक में लालित्य ललित के लिए विशिष्ठ साहित्यकारों द्वारा विचार व्यक्त किए गए हैं जिनमें कमल किशोर गोयनका, प्रेम जनमेजय, सूर्यबाला, ज्ञान चतुर्वेदी, हरीश नवल आदि ने अनेक साहित्य लेखन पर अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं।

लालित ने एक ऐसे चरित्र पांडेयजी की रचना की है जो प्रतिदिन समचार पत्रों का अंग बनता है। और विभिन्न विषयों पर व्यंग्य का सृजन पांडेयजी के केन्द्रीय चरित्र के आस-पास होता है। वो अगर प्रेम पर कविता लिखते हैं तो समकालीन समाज के अन्य अंगों जैसे श्रमिक, मजदूर, किसान आदि से भी आँखें नहीं फेरते।

उनकी इस सार्वजनिक साहित्य रचना के अनवरत पल्लवित होते रहने की कामना है। अनुस्वार परिवार की ओर से ये भी कामना है कि पांडेयजी मिकी माउस की तरह विश्वस्तरीय लोकप्रियता प्राप्त करें।

पत्रिका के प्रबुद्ध पाठक प्रस्तुत प्रवेशांक में गहन साहित्यिक रचनाओं के साथ युवा व्यंग्य लेखक की रचनात्मकता से भी रूबरू होंगे। पत्रिका के अतिथि सम्पादक बहुमुखी व्यंग्यकार एवं सृजेता श्री प्रेम जनमेजय को धन्यवाद कि उन्होंने सहयोग कर इस पावन वसन्तोत्सव पर्व पर "अनुस्वार" आप तक पहुंचायी।

आशा है आप इसका रसास्वादन कर हमें अपनी अनुभूतियों से अवगत कराएंगे।

इति शुभम्

डॉ. संजीव कुमार

अतिथि संपादक उवाच

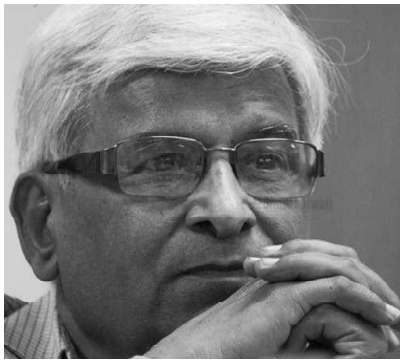

इधर हिंदी व्यंग्य में युवा रचनाकार की आलोचना के दो मापदंड चल रहे हैं। एक में तो लुच्च धातु प्रधान है जिसके तहत युवा रचनाकार को ही नहीं अपने समकालीनो को भी कमतर आंकने की दृष्टिबद्धता है। अब आप दूसरे को कमतर आंकेंगे तभी तो आपकी श्रेष्ठता स्थापित होगी। जब आप अपने खून को बेहतर खून और दूसरे के खून को पानी समझेंगें, तभी तो आप साहित्य के श्रेष्ठी कहलाएंगें। आप चारों ओर छाए अंधियारे का वर्णन करेंगें तभी तो आपको सूर्य समझ नमस्कार किया जाएगा। जब आप स्वयं को गड्ढे के बाहर दूसरे को गड्ढे में गिरा दिखाएंगें तभी तो आप श्रेष्ठ दिखेंगें । तभी तो भक्त त्राहि माम करते हुए, आपसे, स्वयं को गड्ढे बाहर निकालने की 'प्रार्थना' करेंगें। जब आप अज्ञात भय से भयभीत करेंगें तभी उससे बचाव का उपाय जानने भक्त आपकी शरण में आएंगें। आप जिसे भी कह देंगें कि तुम्हें मैंने काली छाया से मुक्त कर दिया, तुम उन जैसे नहीं हो, वही तो आपकी चरणधूल धरण कर गाएगा कि मेरे तो गिरधर गोपाल...। दूसरे को कमतर आंक स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने और करवाने वाले 'कलाकार' भूल जाते हैं कि कभी वे सम्मानीय भी युवा थे। कभी वे भी छपास की चाह में अपनी रचनाओं के लिफाफे पत्रिकाओं में भेजकर रचना की वापसी का भी 'सुख' उठाते थे। कभी वे भी अस्वीकति की धूप से हलकान किसी 'वट वृक्ष' की थोड़ी-सी छांह पाने को तरसते थे। संभवतः वटवृक्ष बनने की प्रकिया ही कमतरी का व्यापार करवाती है।

आलोचना की एक और दृष्टि 'लोचन रहित' है। ऐसे में चारों ओर हरा ही हरा देखा जाता है। काहे किसी की कमियां गिनाकर कर पाप का भागी बना जाए। साईं के तो सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय। ऐसी आलोचना बहुत सरल भी होती है। अतिरेकपूर्ण प्रशंसा के कुछ उपमान गढ़ लिए जाते हैं और उसे किसी के भी साथ फिट कर दिया जाता है। किसी की त्रुटि निकालें तों वह झट पूछ बैठता है कि मुझमे यह त्रुटि कहाँ है। वह आपके प्रत्युत्तर में भी प्रश्न कर सकता है। ऐसे में आपको तर्क खोजने पड़ते हैं। पर जिसकी आप अतिरेकपूर्ण प्रशंसा करते हैं, वह कभी सवाल नहीं करता अपितु भक्तिभाव से प्रणाम करता है। बिन मांगें भक्त मिलें तो तो काहे 'लुच्चा' हुआ जाए। कीचड़ की गंध का चंदन की सुगंध से साम्य बैठाने वाले ऐसे नामवर प्रशंसक मौखिक रूप से, मिलने-जुलने, फोन आदि पर पर्याप्त सुगंध बिखेरते हैं पर लिखित में कोई साक्ष्य नहीं देते। आप उनके द्वारा प्रदत्त मीठी गोलियों के नशे में उनके चाकर तक बन जाते हैं।

जब तक आप स्वयं को साहित्य का सहयात्री मान आपनी बदबूदार बगलें भी झांकने में संकोच नहीं करेंगे या फिर काले को काला कहने का साहस नहीं करेंगें, तब तक चाहे आपका कितना ही भला हो जाए पर साहित्य और समाज का भला नहीं होगा। इस एकांगी दृष्टिकोण को त्यागकर यथासंभव विवेकपूर्ण संतुलित व्यापक आलोचकीय दृष्टि ही युवा रचनाकारों को कोई दिशा दे सकती है और साहित्य के भविष्य को स्वर्णिम नहीं तो कम से कम 'चार चांदीय' तो कर ही सकती है।

मुझे याद आता है सन 1999 का मार्च महीना। उन दिनों मैं त्रिनिदाद के वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य

की भूमिका निभा रहा था। उन दिनो 'यू.एस.एम पत्रिका' एक चर्चित पत्रिका थी। इस पत्रिका ने मेरे पच्चासवें जन्मदिन पर एक विशेशाँक प्रकाशित किया था। इस अंक को तैयार करने में लालित्य ललित, मलिक राजकुमार, विजय विद्रोही आदि ने संपादक की सहायता की थी। इस विशेषांक का लोकार्पण मेरी अनुपस्थिति में 18 मार्च को हिंदी भवन में हुआ था। इसके लोकार्पण समारोह आयोजन में लालित्य ललित ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इस अंक का लोकार्पण नासिरा शर्मा, और रामदरश मिश्र ने किया था। सात समंदर पार जब यह अंक मुझे मिला तो रचनात्मक सुख की अनुभूति हुई। अच्छा लगा कि मेरे लिखे को रेखांकित किया जा रहा है। इस अंक में मेरे लिखं को लेकर सावधानियां कम बयान की गयी थीं अभिनंदन कुछ अधिक था। इस प्रकार के आयोजन का संभवतः यही चरित्र होता है।

लेखन में पचास की उम्र को मैं परिपक्वता का पहला सोपान मानता हूं। इस आयु तक आप न केवल बहुत कुछ लिख चुके होते हो अपितु एक जिज्ञासु के रूप में बहुत कुछ जान चुके होते है। आप अपनी एक पाठशाला तैयार कर चुके होते हैं। आप अपने लिखे पर प्रशंसाएं प्राप्त करते हैं तो अपने ऊपर हुए हमले भी झेलते हैं। आप अपने लिखे के गुण दोष पहचाने लायक भी हो जाते हैं। सब नहीं होते हैं। कुछ उम्र भर मुग्धा नायिका से अपने लेखन का आंनद उठाते हैं और आलोचक को शत्रु ही मानते हैं। मेरी समझ में इस प्रकार के विशेषांक एक पंथ अनेक काज करते हैं। मेरा विश्वास है कि यह विशेषांक भी ऐसा ही करेगा।

लालित्य ललित के लिखे को रेखांकित किया जाने लगा है। उनके लिखे पर जहाँ एक ओर चित्रा मुद्गल, कमलकिशोर गोयनका, वेद राही, राहुल देव, दिविक रमेश, प्रताप सहगल, नंद भारद्वाज, सूर्यबाला, आबिद सुरती, प्रदीप पंत, मिथिलेश्वर, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, सुभाष चंदर, गिरीश पंकज, रमेश तिवारी, बुलाकी शर्मा जैसे अनेक रचनाधर्मी अपने सकारात्मक विचार व्यक्त कर रहे हैं वहीं लालित्य ललित पर पत्र-पत्रिकाएं अंक भी प्रकाशित कर रही हैं। वे लिख बहुत रहे हैं तो उनके लिखे को प्रकाशित करने वाले प्रकाशक भी बहुत हैं। यही कारण है उनकी लेखकीय जठराग्नि निरंतर प्रज्वलित है। यदि आप लिख रहे हैं और प्रकाशक आपसे पीठ किए बैठा है तो आपकी जठराग्नि धीरे-धीरे मंद पड़ती जाती है। स्टोर में पड़ी पांडुलिपियाँ आपको स्टोररूम का रचनाकार बना देती हैं। यह लालित्य ललित की लेखकीय जठराग्नि का ही परिणाम है कि जो जमीन उसने कविता में तोड़ी थी वही व्यंग्य में भी तोड़ रहे हैं। पिछले दिनों, विभिन्न प्रकाशकों द्वारा उनके छह व्यंग्य संकलनों का प्रकाशन और उनके लोकार्पण पर कमलकिशोर गोयनका, राहुल देव, मधु आचार्य आशावादी, दिविक रमेश, प्रताप सहगल, अरविंद तिवारी, प्रज्ञा, रमेश तिवारी, के वक्तव्य, हाथ कंगन को आरसी जैसे हैं। प्रसिद्ध पत्रकार और हिंदी के योद्धा, राहुल देव को भाषा पर लालित्य ललित पकड़ जबरदस्त लगी। और जब हमारे समय के प्रसिद्ध कवि दिविक रमेश कहते हैं कि लालित्य ललित के व्यंग्य पहले से ज्यादा परिपक्व हुए हैं तो ललित का व्यंग्य लेखन रेखांकित होता है। इस अवसर पर प्रताप सहगल ने एक बात कही थी- इनकी सोच उजली है और इनके पास विषयों का वैविध्य है, जो विषय इनसे खुद अपने को लिखवा ले जाता है, इस शाब्दिक ताकत का मैं कायल हूँ।"

लालित्य ललित के पास विषयों की कमी नहीं है। अनेक बार तो ऐसा लगता है कि ललित के पास विषयों को अपनी रचना के लिए खींचने का कोई चुंबक है। जहां एक ओर अनेक रचनाकार विषय की खोज में दर-दर भटकतें हैं और समझ नहीं आता कि क्या लिखें उतने समय में लिखने को आतुर लालित्य ललित रचना का निर्माण कर डालते हैं। एक साक्षात्कार में अपने इस स्रोत का रहस्य खोलते हुए लालित ने कहा भी है– देखिए, चूंकि मैं समाज में रहता हूँ, समाज की जितनी विसंगतियाँ, जितनी विडंबनाएं हैं, वह मुझसे कहती हैं कि आप इस पर लिखो। ये ऐसा अध्याय है जिस पर लिखना बाकी है मुझे नहीं लगता मैं कैसे लिखता हूँ लेकिन परिस्थितियाँ मुझसे लिखवा लेती हैं। और मैं ये कहना चाहता हूं कि

मैं केवल सच लिखता हूँ और सच के सिवा कुछ नहीं लिखता।' जितना यह सत्य हे कि ललित से परिस्थितियाँ लिखवाती हैं, उतना ही यह भी सत्य है कि लेखकीय जठराग्नि की बहुत बड़ी भूमिका है। लालित्य ललित की रचना है, 'पांडेय जी की पुस्तकों का लोकार्पण' जिसमें लेखक ने अपने प्रिय पत्र पांडेय जी के द्वारा कहलाया है—सबके मन में विचार था कि कोई इतना कैसे लिख सकता है। पांडेय जी का कहना है कि रचनात्मकता का कभी अंत नहीं, उसके जरिए लिखना अबाध गति से जारी रहता है। लिखना पांडेय जी के लिए शगल है, आनंद का मेला है।'' लालित्य ललित जब लिखते हैं कि लिखना पांडेय जी के लिए शगल है, आनंद का मेला है, तो वह अपने लिखे का उद्देश्य और दृटि को स्पष्ट कर देते हैं।

ललित अपने आसपास के समाज से बेखबर नहीं हैं और उनकी दृष्टि एकांगी नहीं है वह सब पर जाती है। यही कारण है कि चाहे एक सर्वांगीण सामाजिक दृष्टि ललित की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। और यही कारण है कि ललित अपनी रचनाओं में स्वयं की जीते हुए दृष्टिगत होते हैं।

मैंने लालित्य ललित के लेखन पर बहुत लिखा है और किसी युवा रचनाकार पर संभवतः सबसे अधिक। मुझे लालित्य ललित की रचनाधर्मित में निरंतर विकास दिखाई देता है। जहां विकास निरंतर हो वहां आप अंतिम बात कह भी नहीं सकते हैं। परिवर्तनशील समाज में, मनभावन परिवर्तन अच्छे लगते हैं। जो किसी कछुवे की तरह अपनी खोल को दुनियां माने बैठे हैं वही खिसियानी बिल्ली से खंभे नोचते रहते हैं। बहुत पुरानी कहावत है- गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में। लालित्य ललित निरंतर स्वयं को बेहतर कर रहे हैं। मुझे याद हैं कि एक समय 'धर्मयुग' के बैठे-ठाले स्तंभ पर परसाई, जोश्शी, त्यागी, के.पी और श्रीलाल शुक्ल का एकछत्र राज्य था। धीरे-धीरे धर्मवीर भारती मेरी पीढ़ी को इस पृष्ठ पर स्थान देने लगे। वे जानते थे कि हम अपनी अग्रजी पीढ़ी की गुणवत्ता से दूर हैं , फिर भी वे धीरे-धीरे हमें स्थान देकर प्रमुख करते जा रहे थे। भारती जी हमारी प्रतियोगिता हमारी अग्रज पीढ़ी से नहीं मानते थे वे हमें अपनी पहली रचना से बेहतर रचना धर्मयुग के लिए देने की चुनौती देते थे। वे हमारे लेखन को निरंतर बेहतर करने को प्रेरित करते। लालित्य ललित को भी मैंने स्वयं के लेखन को निरंतर बेहतर करने के लिए प्रेरित किया है। और अच्छा लगता है कि चाहे कविता हो या गद्य व्यंग्य रचना, ललित ने स्वयं को बेहतर ही किया है।

जब भी मैं ललित के लिखे को पढ़ता हूं तो उसमें कुछ नया मिल जाता है। ऐसा नया जो केवल ललित ही कर रहे हैं। मुझे नहीं लगता कि किसी व्यंग्यकार ने अपनी रचनाओं में ऐसा प्रयोग किया होगा जो ललित कर रहे हैं। व्यंग्य लेखन के साथ-साथ काव्य लेखन रवींद्रनाथ त्यागी ने किया है। उन्होंने उद्धरण के रूप में और एक आध जगह व्यंग्य रचना में क्षेपक के रूप में कविता का प्रयोग किया है। क्षेपक के रूप में ही कुछ रचनाएं परसाई या शरद जोशी के यहां मिल जाती हैं। पर व्यंग्य रचना के हिस्से के रूप में किसी व्यंग्यकार ने कविता का व्यापक प्रयोग किया हो, मेरे अल्पज्ञान में ऐसा नहीं दृटिगत होता। इस संकलन की अनेक व्यंग्य रचनाओं में आपको ऐसे काव्य प्रयोग मिलेंगें। आवश्यक नहीं हैं कि यह कविताएं रचना जितनी प्रखर हों और आप उसमें बलात व्यंग्य ढूंढने के चक्कर में रचना के सुख से वंचित हों। पर इन कविताओं का स्वर विरोध का है—

बस में ठुस्से लोग
जिस्मो में घुसे लोग
पता नहीं
क्या खोजते हैं
जरूर खो गया है

क्या सबका !

'अनुस्वार' के मुख्य संपादक संजीव कुमार एक सुलझे हुए साहित्य की गहरी समझ वाले रचनाकार हैं। उनके पास लेखन का व्यापक अनुभव है। इन दिनों वे साहित्य की दुनिया में इंडियानेट बुक्स प्रकाशन और 'अनुस्वार' के माध्यम से नई सोच लेकर आये हैं। संजीव कुमार शांतमना, अल्पभाषी हैं और पीछे रहकर काम करने में विश्वास करते हैं। यही कारण हे कि उन्होंने लेखन जगत के सभी 'व्यंजनों' को महत्व देने वाली पत्रिका को, हर वर्ग के अत में रहने वाले 'अनुस्वार' का नाम दिया है। आप तो जानते ही हैं कि लेखन दुनिया में भी अनेक प्रकार के– स्पर्श, अंतःस्थ, उष्म, संयुक्त आदि व्यंजन हैं। वे हर वर्ग में अंत में रहने वाले अनुस्वार का, पिछड़ा वर्ग की विधा व्यंग्य के मुझ रचनाकार से 'अनुस्वार' पत्रिका का 'आरंभ' करवा रहे हैं। मेरी शुभकामनाएं तो हैं हीं, आप जैसे शुभचिंतकों की भी होंगी।

नये का स्वागत होना ही चाहिए। अतः जब संजीव कुमार ने 'अनुस्वार' के प्रवेशांक' को लालित्य ललित पर केंद्रित करने और अतिथि संपादक के रूप में उसका संपादन करने का मुझसे आग्रह किया तो मुझे स्वागत करना ही था। संजीव कुमार का कहना था कि मैंने लालित्य ललित को उसके साहित्यिक शैशवकाल से देखा है और मेरे पास लंबा संपादकीय अनुभव है अतः उनके पास कोई विकल्प नहीं है। ऐसे में मेरे पास भी कोई विकल्प नहीं था।

इस प्रकार के वृहद् विशेषांक में सामग्री जुटाने में लेखक के साथ-साथ अन्य अनेक अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाते हैं। मैं सभी सम्मिलित रचनाकारों का इस विशेषांक में रचनात्मक योगदान देने के लिए आभारी हूं। संपादन सहयोग के लिए रणविजय राव और हरीश कुमार सिंह का आभारी हूं। प्रिय विनय ने इसके प्रूफ देखने आदि में विशेष सहायता की है।

अग्रिम आभार आप सबका जो इस अंक को रुचि अनुसार उलटेगें, पलटेंगे, देखेंगे और पढेंगें और अपनी प्रकति के अनुसार लिखित/मौखिक /साक्षात/पीठ पीछे की प्रतिक्रया देंगें।

हाँ, पचासवें जन्मदिन की लालित्य ललित को बधाई!

प्रेम जनमेजय

जीवन को एक यात्रा कहा गया है। कुछ का मानना है कि मनुष्य के अगले जन्म की जीवन यात्रा इसी जन्म में लिखी जाती है जिसे वहे अगले जन्म में तय करता है। कुछ मानते हैं कि व्यक्तिभ्रूण अवस्था में अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर देता है। कुछ मानते हैं कि मनुष्य की यात्रा तब आरम्भ होती है जब वह संसार में आँखें खोलता है। हम रोए जग हँसा। कुछ संत बुढ़ापे तक मन की आँखें खोलने का आह्वान करते रहते हैं। पर आध्यात्मिक भौतिकतावादी, दार्शनिक अनादि, आदि भी सभी एकमत हैं कि जीवन एक यात्रा है। असंख्य तारों से जीव अपनी-अपनी जीवन यात्रा रचते रहते हैं। पर जो सितारे से चमकते हैं उनकी यात्रा का बहुत कुछ स्वयमेव सार्वजनिक होता है और बहुत कुछ उन्हें सार्वजनिक करना पड़ता है। लेखक भी जीवन यात्रा रचता है और उसकी भी कुछ यात्राएँ सार्वजनिक होती हैं, कुछ करती पड़ती हैं। लालित्य ललित की जीवन यात्रा में कुछ सवालों के साथ झाँकने का प्रयत्न है।

अतिथि संपादक

आत्मकथ्य–

यात्राएँ और पड़ाव

लालित्य ललित

जीवन को एक यात्रा कहा गया है। कुछ का मानना है कि मनुष्य के अगले जन्म की जीवन यात्रा इसी जन्म में लिखी जाती है जिसे वह अगले जन्म में तय करता है। कुछ मानते हैं कि व्यक्ति भ्रूण अवस्था में अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर देता है। कुछ मानते हैं कि मनुष्य की यात्रा तब आरम्भ होती है जब वह संसार में आँखें खोलता है हम रोये जग हँसा। कुछ संत बुढ़ापे तक मन की आँखें खोलने का आह्वान करते रहते हैं। पर आध्यात्मिक, भौतिकतावादी, दार्शनिक अनादि, आदि सभी एकमत हैं कि जीवन एक यात्रा है। असंख्य तारों से जीव अपनी-अपनी जीवन यात्रा रचते रहते हैं। पर जो सितारे से चमकते हैं उनकी यात्रा का बहुत कुछ स्वयमेव सार्वजनिक होता है और बहुत कुछ उन्हें सार्वजानिक करना पड़ता है। (लेखक भी जीवन यात्रा रचता है और उसकी भी कुछ यात्राएँ सार्वजनिक होती हैं, कुछ करनी पड़ती हैं। लालित्य ललित की जीवन यात्रा में भी कुछ सवालों के साथ झाँकने का प्रयत्न है। संपादक) धन्यवाद, प्रेम जी। आज आप मुझसे मेरी जीवन यात्रा के संबंध में जिज्ञासा व्यक्त कर रहे हैं।

मेरा तो जैसे दिन बन गया। आपको कॉलेज टाइम से पढ़ते आये हैं, ऐसा व्यक्ति मुझ अदने से व्यक्ति से मेरी जीवन यात्रा के संबंध में पूछे तो मेरा लिखना सार्थक हो जाता है। मैं तो समझ रहा हूँ कि साहित्य का टॉप मोस्ट स्तर का पुरस्कार स्वयं मेरे द्वार आ गया हो, लेखन की पद्मश्री मिल गई हो। बहरहाल मैं बताऊँ कि मेरा लेखन लगभग आठवीं कक्षा से आरम्भ हुआ। स्वभाव से चँचल रहा। जब भी क्लास में कोई आशु कविता प्रतियोगिता होती तो मेरा नाम क्लास टीचर अवश्य लिख देते, या मॉनिटर लिखवा देता। मुझे मजा भी आता और इसके चलते मुझे स्कूल में मंच भी मिला। स्कूल के साथ-साथ जब मेरे घर के पास रामलीला होती तो उसमें भी कई बार अभिनय किया। पड़ोस की सभी आंटियों को सुबह ही बोल आता था,

आज आपने आना है, मेरा रोल है, सभी आंटियाँ आती भी थी और उनका आशीर्वाद भी प्रचुर मात्रा में मिलता था।

अब वह समय कहीं चला गया। मात्र स्मृतियाँ है। मुझे भगवान शिवजी का रोल मिलता तो पूरे शरीर पर नील लगाया जाता। गले में नकली साँप मंडराता। पूरे इलाके में झाँकियों में मैं भी निकलता। क्या टोर होती!

कई बार तो महिलाएँ मेरे चरणों में पूजा अर्चना करती। मेरी माँ बहुत खुश होती कि उनका बेटा आज झाँकी में निकल रहा है। एक बार मजेदार किस्सा हुआ।

रामलीला में डायलॉग बोलने वाला कहीं बीड़ी पीने चला गया। मंच पर सेट लगा था। सीता स्वयंवर का सीन था। मुझसे पूछ लिया गया कि युवराज आप किस प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हो! पीछे से बताने वाला कोई नहीं था। मैंने आव देखा न ताव। झट से कह दिया कि महाराज मैं बी-3 ब्लॉक, पश्चिम विहार का युवराज हूँ। क्या तालियाँ बजी कसम से! उस दिन। आज भी वह दिन नहीं भूलता।

स्कूली दिनों की एक याद

बचपन में बड़ी शरारतें की हैं।

मुझे ड्राइंग बनाना नहीं आता था। एक शिक्षक ने पेन उँगली में मरोड़ा, बड़ा दर्द हुआ। उसको उस जमाने में कहा कि सर, आज घर पहुँच कर दिखाना, वे बेचारे स्कूल टाइम के बाद भी स्कूल से न निकले। बाद में सर से पिटने का खामियाजा उनके लड़के की दुकान में शीशा तोड़कर पूरा किया गया।

एक बार तो फिजिक्स के टीचर को टॉयलेट में बन्द कर दिया, उनको ऊँचा सुनता था।

एक बार एक पीटीआई ने को। एड स्कूल में मुर्गा बना दिया, जबकि कोई गलती नहीं, उनको लगा कि ये स्टूडेंट प्रेयर में नहीं आते। पीटीआई ने एक थप्पड़ लगाया, दूसरे लगाने से पहले मैं जब आठवीं क्लास में था, कस कर हाथ पकड़ लिया और कहा कि आप मुझसे माफी माँगेंगे, थोड़ी देर में।

स्कूल के पास एक वकील सपरा साहब रहते थे, वे पिता जी को अपना दामाद मानते थे। उनको बताया तो वे आगबबूला होते हुए तीन चार वकील गाड़ियों में स्कूल पहुँच कर प्रिंसिपल से भिड़ गए। पीटीआई से माफी मँगवाई, वहाँ भी और स्कूल में भी।

उस दिन के बाद किसी टीचर ने अनावश्यक पंगा नहीं लिया। जब युवा थे साहब, जोश भी था और होश भी। हुआ क्या हिंदी के कॉलेज के समय में एक शिक्षक डॉ महेंद्र कुमार ने किसी बात पर हाथ मरोड़ दिया। उन्हें जवानी का घमंड था, हमसे रहा नहीं गया। कॉलेज में डॉ. महेश कुमार जी को कह दिया कि आज यूथ स्पेशल साउथ दिल्ली की लेकर दिखाना, वे उस समय मालवीय नगर रहते थे। वे निकले नहीं, चार बजे उन्हें कहा कि सर, कल से मेरा क्या किसी का भी हाथ नहीं मरोड़ना। आजतक उन्हें वह किस्सा याद है।

बचपन में सोचता था कि ऐसा कोई पद मिले, जिसमें पाँच सात गाड़ियाँ आगे-पीछे चलती हों। बचपना था। मन में फिल्में देख कर सवाल आते कि फिल्मों में जाना है, जब ललित माकन को गोली लगीं तो फैसला बदल लिया कि भईया विचार त्याग दो, अभी तो बहुत कुछ करना है। अब दिमाग में आया कि जहाँ से बिग बी यानि अभिताभ बच्चन ने पढ़ाई की है, उस कॉलेज में एडमिशन लेना है। किरोड़ीमल कॉलेज में दाखिला हुआ। वहाँ के प्रिंसिपल एन.एस. प्रधान से पहली मुलाकात में भिड़ गया। उनके साथ हुए संवाद का आप भी आनंद लें।

एडमिशन कार्ड बन गया।

जी!

हाइट कितनी?

5 फुट 11

पलंग बिछवा दूँ?

बिछवा दीजिये।

मुझे क्या पता था कि मेरी हाजिर जवाबी कोई झोल कर देगी! बिठा लिया, अपने ऑफिस में। कई सारे कॉलेज के नेता आये, सलाह दी। लेकिन दिमाग अपना ही चला।

पूछा, "कहाँ रहते हो?"

जी घर में।

पिता जी क्या करते हैं?

सरकारी सेवा में

किस डिपार्टमेंट में?

जी, कमिश्नर है, इनकमटैक्स डिपार्टमेंट में।

जाओ, आगे से मेरी निगाहें रहेगी तुम पर।

किसी मुसीबत की तरह छूटा। अब जब भी प्रिंसिपल नजर आते, मैं नमस्कार करता। कुछ दिन बाद वह दुनिया से निकल लिए, तब जा कर सांस में सांस आई।

लेखन में आने का कोई सीन नहीं था। कविताओं में रुचि थी। अजित कुमार, सत्यपाल चुघ साहब पढ़ाया करते। तब कॉलेज मैगजीन में छपना शुरू हो गया था, आउटलुक नाम था, कॉलेज पत्रिका का।

कॉलेज की लड़कियाँ बड़ी फैन थी, एक नीरू जैन का वाक्य याद आ रहा है। कहती कि आप मुझ पर कविता लिख देंगे!

मैंने भी कहा : कोई शक?

मैंने लिखा

ओ मेरी नीरू जैन

जब से देखा

न मिला चैन

पूरा बीता दिन

पूरी बीती रैन

ओ मेरी नीरू जैन।

ग़जब दिन थे वे।

ऐसे ही सपना का जन्मदिन था

उसे भी कहा कि

सपना तुम सपना नहीं सच्चाई हो

जन्मदिन की बधाई हो।

दूसरा पड़ाव

किरोड़ीमल कॉलेज में इलेक्शन में भी खड़ा हुआ, ढील डौल भी वैसा था कि कोई भी जीता देता। पर साहब, बहुत बुरी तरह पराजय हुई। बहरहाल बी.ए. हिंदी ऑनर्स करने के बाद वहीं से एम.ए. हिंदी किया। कॉलेज के टीचर्स भी सोचते थे, कि ये लड़का बड़ा एक्टिव है। कॉलेज टाइम में ही अंतरराष्ट्रीय पत्रिका गगनांचल में मेरा पहला आलेख छपा, लगभग सोलह पेज का। तब सम्पादक हुआ करते थे, कथाकार डॉ. अमरेन्द्र मिश्र। बाद में हम दोनों में खूब छनी। आज वे मेरे अच्छे मित्रों में हैं। कई यात्राओं में वे मेरे साथ रहे हैं। कॉलेज समय में ही मेरे कई कविता संग्रह आ गए। सीनियर्स को लगता कि भैया कुछ बात तो है ललित में।

एक बार चाय के खोखे पर सबके साथ चाय पी रहे थे, हिन्दू कॉलेज के पिछले वाले गेट पर। हमारे किसी मित्र ने कहा," उन्हें पहचानते हो?"

वे दाढ़ी वाले! क्या खासियत है उनमें?

वे हरीश नवल है। खूब बढ़िया लिखते हैं और कई फिल्मों में अभिनय भी किया है।

बस तब से मित्र वही रह गया और आज हरीश नवल जी के साथ घर जैसे सम्बन्ध हैं।

नरेंद्र कोहली जी का लेखक मंडल

इस कार्यशाला से बहुत कुछ सीखने को मिला। प्रेम जनमेजय जी के साथ वहाँ कई बार गया। देखा कि एक दाढ़ी वाले धवल केशी नरेंद्र कोहली जी टू द पाइंट बात करते। मन होता तो मुस्कुराते और सबकी रचनाओं पर सटीक राय भी देते। कई बार सामने वाले को गुस्सा भी आ सकता है, पर मेरे साथ नहीं हुआ। उनके कई स्टूडेंट्स से उस दौरान मिलना हुआ। आज भी उनकी बातों को अपने जेहन में रखता हूँ। कुल मिलाकर वे अपने काम में रमें हुए एक विशुद्ध संत हैं। उस कार्यशाला का ही परिणाम है कि आज जो भी लिख पाया हूँ वह उस आरम्भिक दौर का पुण्य है जो आज मिल रहा है। इस पूरे घटनाक्रम में प्रेम जनमेजय जी का सक्रिय योगदान है जिसे भूलना मेरे लिए संभव नहीं।

एम.ए. के दिनों की बात

इसी प्रसंग में जब लिखता रहा तो इस यात्रा में जाहिर है कि कई साहित्यकार आपकी मदद करते हैं।

एम.ए. में देवेंद्र सत्यार्थी, नरेंद्र मोहन और रामदरश मिश्र की अध्यक्षता में कविताओं को सुनाने से मन की झिझक दूर होती चली गई। अब तो मैं कई पत्र रामदरश जी को भेज देता। उनका जवाब नहीं आता। अपन ने भी हार नहीं मानी। एक दिन उनका जवाब आया कि ललित, आपकी कविताएँ मन को गहरे से छूने का प्रयास करती है। लिखो, लिखो और लिखो। उस दिन की बात घर कर गई। खूब लिखा। एक दिन वह भी आया जब रामदरश मिश्र की अनुसंशा से मेरी एक रचना को हिंदी अकादमी से अनुदान मिला। उस दिन से मिश्र जी मेरे साहित्यिक परिवार का हिस्सा है, अपनी आत्मकथा में मेरे ऊपर भी उनका एक आलेख है। इस सफर में लेखकीय यात्रा को आगे बढ़ाने में डॉ. प्रेम जनमेजय का हाथ रहा। एक जमाने में प्रेम जी के पास दुपहिया होता था। साहब उस पर बैठ कर वे मुझे पराग प्रकाशन, शाहदरा ले गए। रास्ते में स्कूटर की क्लच की तार टूट गई, मैंने कहा भी। लेकिन प्रेम जी ने कहा कि बालक बैठे रहो, आगे पहुँचने पर ठीक करा लेंगे। बहरहाल वह याद नहीं भूल पाता। श्रीकृष्ण जी जो पराग, बाद में अभिरुचि प्रकाशन के स्वामी थे, मेरे कई संग्रह छापे।

वह दिन और आज का दिन मेरे पाठक जगत में 33 कविता संग्रह हैं। जिन्हें कई सारे प्रकाशन समूहों ने प्रकाशित किया है।

आज याद आता है जब मेरे पहले सम्पादित कविता संचयन कविता सम्भव की बात करूँ तो उसमें रामदरश मिश्र, दिविक रमेश, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल के साथ अजित कुमार जी भी थे। अब आप सोचिये कि बी.ए. का स्टूडेंट जिसने देश के 60 कवियों की रचनाओं को सम्पादित कर दिया हो, ऐसे में सांसद शंकर दयाल सिंह के घर कानपुर के कुलपति डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय ने कहा कि ललित जी पश्चिम विहार में तो बलदेव वंशी भी रहते हैं! तब मैंने कहा था कि सर कीचड़ में अनेक कमल खिलते हैं।

कसक

कहते हैं पहली नजर में प्यार। यह वह उम्र होती है जब आप की सोचने समझने की शक्ति कुंद होती है। फिल्मों का असर और सरकारी स्कूल से निकलने पर कोएड का प्रसंग भी जीवन को रस घोलने में सहायक होता है। उसी दौरान एक से मुलाकात हुई।

पहली नजर का प्रेम। पर साहब जब जीवन में कोई और ही विधाता ने लिखा है आपको वही मिलता है।

आजीविका की ओर कदम

सरकारी सेवा भी लगी तो देश की प्रख्यात प्रकाशन संस्था में जो मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन। नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया में। अप्रैल 1995 में। आज इस बात को 25 बरस होने को आएँ। लगभग एक हजार रचनाकारों से मिलने का सीधा सम्वाद हुआ। हिमाचल, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, राजस्थान के साथ कई और भी सुगम व दुर्गम इलाकों में जाने का मौका मिला। मैंने महसूस किया है कि अभी भी दूरस्थ इलाकों के रचनाकार है उन्हें मुख्यधारा की कोई जानकारी नहीं है। हमारे प्रयासों से अब रचनाकारों में सक्रियता आने लगी है और हम पाठकों और लेखकों के साथ जुड़ने में कामयाब भी हुए हैं।

जब भी ऑफिस में कोई कार्यक्रम होता है तो उसका संचालन मैं करता हूँ। लोग हेजिटेट करते हैं जबकि मुझे बोलने में कभी कोई कठिनाई नहीं होती। जटिल से जटिल शब्द जिव्हा पर आकर सरल और सहज हो जाते हैं।

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में लेखक मंच और साहित्य मंच की जिम्मेवारियाँ विगत कई वर्षों से मिल रही है, इस साहित्यिक मंच ने लोकप्रियता भी बहुत दी और कटुता भी कई मित्रों के मन में पैदा की। बहरहाल यही जीवन है और संघर्ष भी, जो हमारे साथ-साथ चलता है और चलता रहेगा।

खट्टे अनुभव

एक बार मुझे कह दिया गया कि मुझे लेखक मंच पर अपनी किसी किताब का कोई लोकार्पण नहीं करवाना है और न ही किसी प्रकाशक को लोकार्पण के लिए कहना है। वही बात हुई कि आप की लड़की की शादी है और आप ही अपनी लड़की का कन्यादान नहीं करेंगे। मेरी स्टेनो और मेरे जब खास मित्रों को पता चला तो उनकी नाराजगी भी साफ जाहिर थी। काम करना है कोई बात नहीं करेंगे। लेकिन जब आपके साथ के अधिकारी जब कान भरने का काम करते हैं तो उसका क्या कर लीजियेगा। बाद में मुझे कुछ लोगों ने जिस व्यक्ति का नाम भी बताया। बहरहाल इसी का नाम ही जिंदगी है जिसके माध्यम से आपको खट्टे-मिट्ठे अनुभव मिलते रहेंगे।

परिवार

मेरे परिवार में कोई साहित्यिक नहीं रहा। पिताजी आयकर विभाग में रहे, उनकी किताबें पढ़ने की रुचि रही। कल्याण के बाद वे उपन्यास, व्यंग्य और कहानियों की पुस्तकें पढ़ते रहें। उन्होंने एम.ए इंग्लिश किया।

मेरी पत्नी ने हिंदी ऑनर्स किया जीसस एंड मैरी कॉलेज से। वह भी कहानियाँ लिखती हैं और कुछ प्रकाशित भी हुई। शादी मेरे घर की पसन्द से हुई। मेरी पत्नी की पसन्द मैं कभी था ही नहीं, उसे तो कोई नेवी वाला पसंद था। उसके कॉलेज में नेवी मुख्यालय पड़ता था अब तो मैंने कह दिया कि शादी की 25 वीं सालगिरह पर नेवी की ड्रेस ही पहन लूँगा। वैसे भी जो मुकद्दर में होता है उससे अधिक तो न किसी को मिला है और न कभी मिलेगा।

बिटिया ने एम.ए. इंग्लिश किया किरोड़ीमल कॉलेज से जहाँ से मैंने 27 साल पहले एम.ए. हिंदी किया। मेरी बिटिया भी कुछ कविताओं में रुचि रखती है, वह अंग्रेजी जमाने की है, हिंदी में सोचती हैं मेरे अनुदित कविता संग्रह की प्रस्तावना उसी ने लिखी है, आकाशवाणी में भी कई कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुकी है।

अब जब पुरस्कार मिलते हैं तो घर को खुशी होती है, ज्यादा पिताजी को।

जब पुरस्कार मिलता है और राशि नगद मिलती है तो श्रीमती जी अत्यधिक प्रसन्न, क्योंकि लिफाफे में यदा कदा जो मिलता है वह उन्हीं के हाथ में जाता है।

कहती हैं कि पति मेरा बड़ा अच्छा है लेकिन हर समय लिखता रहता है, जब देखो मोबाइल पर उँगलियाँ टाइप करती रहती है। हालांकि नया मोबाइल भी श्रीमती ही गिफ्ट करती हैं कि बढ़िया फोटो आनी चाहिए।

मेरे कुर्तों को डिजाइन भी वही पसन्द करती हैं। इसी खटाई मिठाई में जीवन की रोशनाई है, भाई साहब।

तीन भाइयों में मैं सबसे छोटा हूँ। जो बिना किसी लाग लपेट के कह देता हूँ और बुरा बनता हूँ, सँयुक्त परिवार में कभी एक साथ भाइयों को नहीं रहना चाहिए, जितना दूर रहते हैं, प्रेम बना रहता है। नजदीकियों में खटास जल्दी पड़ती है, पिताजी ने हमेशा चाहा कि सब एक साथ एक छत के नीचे रहें, रह रहे हैं लेकिन सब रह रहे है। जिंदगी में से महोब्बत नाम की चिड़िया सिरे से गायब है।

सफ़रनामा

कविता से शुरुआत की, आज 35 के करीब कविता पुस्तकें बाजार में पाठक जगत में हैं। व्यंग्य का सफर संगत से आया। पड़ोस में प्रेम जनमेजय, हरीश नवल रहते थे। एक बार अंजनी कुमार चौहान और ज्ञान चतुर्वेदी उनके यहाँ आये। मैं भी आमंत्रित था। मैं देखता कि कविताओं को अखबारों में थोड़ा स्पेस मिलता जबकि व्यंग्य से जुड़े लोगों को पूरा पेज मिलता। आज अपने को भी वही स्पेस मिलने लगा है। अच्छा लगता है। पिछले पुस्तक मेले में 6 व्यंग्य संग्रह आये और इस बार 9 तो व्यंग्यकार सुरेश कांत जी को लिखना पड़ा कि लालित्य ललित ने अपना ही रिकॉर्ड इस बार ध्वस्त किया है।

प्रेम जनमेजय जी और भी अनेक मित्रों का कहना है कि अब ललित को उपन्यास लिखना चाहिए, इसमें प्रताप सहगल, भाई विवेक मिश्र शामिल हैं। उपन्यास भी लिखना है। देखते हैं वह यादगार दिन कौन सा होता है। मेरे पात्र दर्जन भर से ज्यादा है जिसमें देविका गजोधर, टिप्सी मुटरेजा, शालिनी माथुर, रामकिशन पुनिया और कल्लू कालिया से लेकर झंडू सिंह गुलियाँ।

अब तो छज्जू मल भी आ गए और पांडेय जी का भतीजा दगडू जो पुलिससेवा में है। यही दुनिया है लेखक की जिसमें वह मस्त रहता है। आज मेरी रचनाओं के अंग्रेजी, कन्नड़, पंजाबी, मलयालम, गुजराती और भी कई भाषाओं में अनुवाद आये

हैं, इससे लगता है कि सफर और यात्रा ठीक चल रही है लेकिन लक्ष्य अभी बाकी है जिसे पार करना ही है, किसी भी कीमत पर।

दूरदर्शन पर डॉ. स्मिता मिश्र ने साक्षात्कार किया लगभग आधे घंटे का। आकाशवाणी में कई कार्यक्रम किये, दिल्ली, धर्मशाला, रायपुर, जयपुर के कई अनुभव हैं। यह दुनिया ही अद्‌भुत है, निराली है और अनुपम भी।

50 के बाद की पारी

जाहिर है अब जिम्मेवारियाँ भी बढ़ी हैं। लेखन तो प्रेम है और अभिरुचि का कारण भी। पाठक जगत के साथ प्रकाशकों का भी दायरा बड़ा है। सोचा है कि खाते में 100 कविता संग्रह हों और 51 व्यंग्य संग्रह हों और एक उपन्यास हो। ये सब हो जाए तो जीवन में और क्या चाहिए।

विदेशों में भी गया हूँ। लेकिन भारत से मुझे प्रेम है, रहेगा भी। हिंदुस्तान में मुझे हिमाचल प्रदेश और छत्तीसगढ़ के साथ राजस्थान बेहद पसन्द है। इंसान बना रहना चाहता हूँ। इससे अधिक की न अपेक्षा है और न ही इच्छा। कुछ विश्वविद्यालय कविता और व्यंग्य पर अपने यहाँ कार्य करवा रहे हैं, उसे देख सुनकर अच्छा और सुखद एहसास होता है। कई बातें हैं जो अक्सर याद रह जाती हैं। दिलों में कुछ रहना भी जरूरी है।

इस यात्रा में बहुत मित्र साथ चले हैं, कुछ स्टेशन से पहले ही उतर गए। यह काफिला है, जहाँ आप चल रहे हैं, लोग मिलते चले जाएँगे। आप जितना सहज होंगे उतना ही सफर सुगम होता चला जाएगा।

कविता और व्यंग्य का परिदृश्य आज के सन्दर्भ में

समय के साथ बहुत चीजें बदली हैं। कविताओं का अलग-अलग दौर आया। लेकिन आज भी परिवार केंद्रित रचनाएँ पाठकों द्वारा पसन्द की जाती हैं। हर पहलू का दौर होता है जो समय के साथ बदलता रहता है।

पहले मैं प्रेम पर अधिक लिखता था धीरे-धीरे उसके भी पहलू बदलते रहे। आज मैं अनेक विषयों पर लिखता हूँ जिसे आप लेखक की सामाजिक अवस्था भी कह सकते हैं।

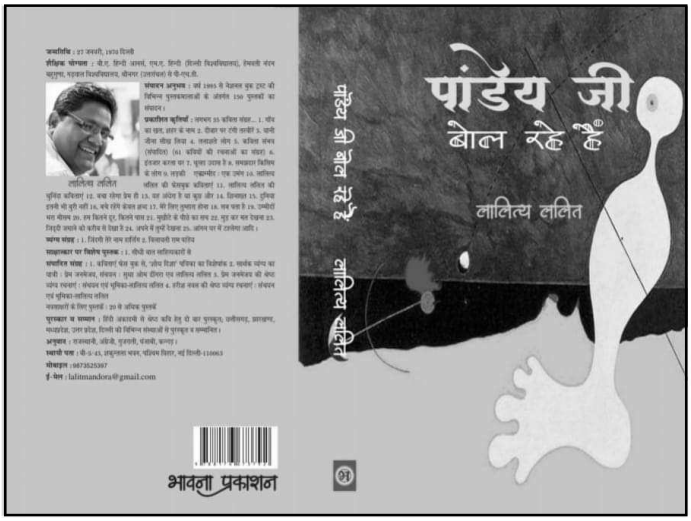

रही व्यंग्य की बात। मैं अपने पात्रों को जीता हूँ, मेरे पास दो दर्जन पात्र है जो मेरे साथ सम्वाद करते हैं।

मेरे कुछ पात्रों की तुलना कुछ लोग वास्तविक लोगों को पहचान कर करने लगते हैं।

बहरहाल जैसे प्रेम जनमेजय का पात्र राधेलाल है, नरेन्द्र कोहली जी का राम लुभाया तो मेरा पात्र विलायती राम पांडेय है। मैं अपने पात्रों का ध्यान दिल और दिमाग से रखता हूँ। मजा तब आता है जब लोग मेरा वास्तविक नाम न लेकर यह कहते हैं कि हमारे बीच विलायती राम पांडेय जी पधार गए हैं तो बड़ी खुशी होती है। जब आपके लेखकीय पात्र आपके पाठकों में चर्चा का विषय बन जाते हैं तो निसंदेह खुशी तो होती ही है।

कोरोना काल में लेखन

इस काल में जब अवसाद की लहर मन को इस कदर घेर रही थी तो कुछ समय के लिए यह भी मन में विचार आया कि बुढ़ापा देखने से पहले या बच्चों की शादी किए बिना ही संसार से रुखसत कर लेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। लेखन ही एकमात्र सहारा था जिसने बचाए रखा। मैंने निरंतर व्यंग्य लिखें और लाइव कार्यक्रमों से भी जुड़ा रहा। लगभग चार से ज्यादा व्यंग्य संग्रह इस अवधि में मेरे द्वारा लिखे गए। यह सही बात है कि समय बड़ा विकट है। ऐसे में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के भी एक लाइव को करने का मौका मिला। लाइव कार्यक्रमों ने वास्तव में जड़ी बूटी का काम किया, नहीं तो गहरे अवसाद का शिकार हो गए होते।

इस काल ने अनेक लेखकों को हमसे छीन भी लिया। यह हमारे लिए बड़ी क्षति है। अनेक मित्रों को कोरोना भी हुआ लेकिन वे उपचार के बाद स्वस्थ भी हो गए।

कोरोनाकाल में कई बार मन उचाट भी हुआ। कहीं बाहर जाने को मन भी हुआ लेकिन परिस्थितियों ने मना कर दिया। देखते है यह कोरोना नाम की चुड़ैल कब भारत से प्रस्थान करेगी।

परिवार एक था, एक है इसी कारण बहुत सी बातें जो आधी अधूरी थी उन्हें पूरा करने का समय भी कोरोनकाल ने हमें दिया। अक्सर कुछ बातें व्यस्तता के चलते छूट जाती थी, जिसमें नाचना, गाना और किचन में साथ होते हुए हाथ बटाने जैसे काम भी किए। कभी प्रेस करना और कभी जालें साफ करना और झाड़ू भी लगाना, जैसे काम अनिवार्य हो गए। आनंद भी आया।

बल्कि मैं तो कहूँगा कि कोरोना ने बहुत हद तक आत्मनिर्भर भी बनाया।

आज जब गूगल पर सर्च करता हूँ विलायती राम पांडेय तो तत्काल एक साथ मेरी व्यंग्य पुस्तकें निकल कर आती है तो यह सुख बेहद आत्मीय और विभ्रम बनाता है।

गाँव और शहर के अंतर्विरोधों का सामना

प्रताप सहगल

यह बात अक्सर सुनने को मिलती है कि कवि का पहला कविता संग्रह अगर कविता के दुर्ग के द्वार पर दस्तक देता है और वह दस्तक कविता के दुर्ग के अंदर बैठे कवियों को सुनाई दे जाती है तो समझ लीजिए कि उस कवि की कविता यात्रा लंबी चलने वाली है। अपवाद भी होते हैं कि कवि का पहला कविता संग्रह ही उसकी पहचान बनकर रह जाता है। उस कवि का बाद का कविता संसार या तो पिष्टपेषण होता है या एक्सटेंशन।

लालित्य ललित ने भी आज से लगभग तीस साल पहले कविता के दुर्ग द्वार पर दस्तक दी थी और द्वार खुल गया। खुला ही नहीं प्रवेश भी हो गया। अब ललित का कवि के रूप में दायित्त्व बढ़ गया था कि वे 'गाँव का ख़त शहर के नाम' कविता से आगे की कविताएँ लिखें। इन तीस सालों में ललित की कविताओं के विषयों में वैविध्य तो है लेकिन दोहराव भी बहुत है। उनकी दिनचर्या कविता से शुरू होकर कविता पर ही खत्म होती है। बीच-बीच में व्यंग्य भी आ जाता है और अब तो कविता और व्यंग्य की जुगलबंदी चलती रहती है। कविता की व्यंग्य में और व्यंग्य में कविता की आवाजाही बनी हुई है।

लालित्य ललित की हज़ारों कविताओं में से 'गाँव का ख़त शहर के नाम' कविता चुनने का मेरा मकसद केवल इसी कविता में उपस्थित विमर्श की पड़ताल करना है। इस कविता में दो संज्ञाएँ पहली गाँव और दूसरी शहर उपस्थित हैं। इन दोनों संज्ञाओं को जोड़ने वाली एक तीसरी संज्ञा है 'ख़त'। ख़त है तो कागज़ का एक टुकड़ा ही लेकिन लिखने वाले या लिखवाने वाले के भावों को अंकित कर या करवा कर उसे एक व्यक्तित्त्व मिलता है। ख़त बोलने लगता है और बोलते हुए पाने वाले मन का हिस्सा हो जाता है। उसे ख़त में संबंधों की ऊष्मा अनुभव होने लगती है। यह ख़त उसी तरह का ख़त है।

गाँव से शहर में काम करने के लिए लोग शहरों में आते हैं। गाँवों की कृषि पर बढ़ता हुआ लोगों का बोझ, कम आय के साधन, अवसरों की कमी, बेहतर जीवन जीने की महत्त्वाकांक्षाएँ लोगों को काम की तलाश में शहर ले आती हैं। पत्नी, बच्चे, माँ-पिता आदि गाँव में ही रह जाते हैं। यह कविता माँ-पिता, बच्चों तथा दूसरे रिश्तों पर खामोश है। केवल पति-पत्नी के संबंधों की बात करती है। पति-पत्नी के संबंधों में गाँव और शहर के संबंधों का विमर्श खुलता है। पुरुष शहर में आकर काम में व्यस्त हो जाता है और स्त्री गाँव में घर-गृहस्थी संभालती है। उसके साथ गाँव है, गाँव के रिश्ते हैं, शहर को लेकर तरह-तरह की आशंकाएँ हैं।

गाँव आते वक्त
रेल से मत आइयो
मंडी टेशन पर बम फटा था

गाँव में बैठी हुई भी पत्नी अपना धर्म निभाते हुए पति को हिदायत देना नहीं भूलती।

समय से काम पर जाना
ठीक वक्त पर खाना खाना
और सबसे ज़रूरी है शहरी सांपिनों से दूर रहना।

इस तरह से छोटे-छोटे प्रसंग कविता में गाँव का जीवन और गाँव में बसी एक मामूली स्त्री की मासूम मानसिकता को उजागर कर देती है। यह केवल एक उदाहरण है। वस्तुतः गाँव का ख़त : शहर के नाम दो सांस्कृतिक विमर्शों के मेल और उस मेल में अंतर्निहित संघर्ष की कहानी है। गाँव में अपना आस-पास सब मालूम होता है। शहर में बैठा पुरुष भी अपने गाँव के उस आस-पास से जुड़ा रहना चाहता है। अब तो मोबाईल का ज़माना है। गाँव में इधर कोई घटना दुर्घटना हुई, उधर उसकी सूचना शहर तत्काल पहुँची। इसी तरह से शहर की हर सूचना गाँव में भी दिन में तीन बार पहुँचती है। इसलिए आज की पीढ़ी शायद गाँव से लिखे गए

इस ख़त में अंतर्निहित मनोभावनाओं को न समझ सके या कहे कि व्हाट इज़ दि बिग डील। ऐसा नहीं तो ऐसा कर लो। यही वह मुकाम है जहाँ सांस्कृतिक मूल्य बदलते हुए दिखाई देते है। संबंधों का व्याकरण बदलता हुआ दिखाई देता है। इस बदलाव के चलते स्त्री-पुरुष संबंधों के साथ अन्य रिश्तों की व्याख्याएँ भी बदल जाती हैं। आज शायद यह कविता नास्टैलजिया की तरह से अधिक पढ़ी और समझी जाएँ नई पीढ़ी इसे संभवतः हैरानी या हिक़ारत के साथ समझे। लेकिन है यह हमारी धरोहर का हिस्सा। विकास के एक दौर की कहानी है यह कविता। ललित की कविताओं में लड़की, पति, पत्नी, बेटा, पिता, मित्रता, खान-पान और सामाजिक संबंधों की टूट फूट नज़र आती है। वे बार-बार इन सबकी इयत्ता और उनके सामाजिक दायित्त्वों की ओर लौटते हैं। इनके सामाजिक रिश्तों को वर्तमान के आलोक में अतीतोन्मुखी मूल्यों के माध्यम से समझते हैं। कहा जा सकता है कि ललित की दृष्टि अतीतोन्मुखी है। बदलते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को समझने या स्वीकार करने के स्थान पर आधुनिक सोच को प्रश्नांकित करते हैं, बल्कि कई बार हिकारत की निगाह से देखते हैं। गाँव का ख़तः शहर के नाम कविता मुझे इसलिये भी पसंद है कि यह अपने भावात्मक ताने-बाने के साथ तार्किंत अन्विति को नहीं छोड़ती। शुरू होकर अंत तक गाँव की एक भोली लेकिन सयानी महिला का विमर्श रचती है। शहर उसके लिए एक खतरा है। आर्थिक संसाधनों को जुटाने की विवशता न हो तो वह अपने पति को कभी भी शहर न जाने दे। महिला शहर से केवल आशंकित ही नहीं, वह स्वयं भी शहर जाकर कुतुब मीनार देखना चाहती है। कुतुब मीनार तो केवल एक प्रतीक है। वस्तुतः वह पूरा शहर देखना चाहती है, शहर का जीवन भी जीना चाहती है। गाँव से शहर में आकर बसने वाले लोगों में एक अंतर्विरोध यह है कि वे रहना तो शहर में ही चाहते हैं, शहर में मिलने वाली सुविधाएँ भी भोगना चाहते हैं लेकिन अतीतमोह में फ़ँसे वे लोग गाँव का मोह नहीं छोड़ पाते। सांस्कृतिक दृष्टि से वे गाँव की मिट्टी से ही जुड़े रहना चाहते हैं।

गाँव में छूटी पत्नी अपने पति को ताकीद करती है।

अच्छा अब सुन लो ध्यान से
बाबू बनके आइयो
आते वक़्त कुर्ता पायजामा पहनकर मत आइयो
यहाँ रोब नहीं पड़ेगा।

गाँव का आदमी शहर में गाँव का सा रहते-रहते जब गाँव लौटता है तो वह शहर से लौटा हुआ दिखना चाहता है। यह भी एक अंतर्विरोध है।

ललित की यह कविता इस मायने में विशेष है कि यह मामूली तरीके से कई अंतर्विरोधों को हमारे सामने खोल देती है। संबंधों की तहों में छिपे भावों को हमारे सामने बिछा देती है। इस कविता की यही शक्ति है, जिसने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया।

लालित्य ललित कविता के क्षेत्र में एक विश्वसनीय नाम है जो विगत गई कई सालों से अपना काम बखूबी कर रहे थे। इधर जब से व्यंग्य के क्षेत्र में आए हैं वह भी इनका सामर्थ्य है। और नए लोगों के लिए प्रेरणादायी काम है। खासतौर से जिस तरह की प्रवाहमान भाषा व्यंग्य की होनी चाहिए उसका वे बहुत ही सशक्त ढंग से उपयोग करते हैं।

कभी-कभी तो लगता है कि जो बहुत ही प्रख्यात, प्रसिद्ध और नामी व्यंग्यकार है उनकी पूरी तरह से टक्कर में आ गए हैं। इस नाते मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कुछ जो ये सोचते हैं कि अधिक लिखने से चीजों में गिरावट आती है, मुझे तो लियो टॉलस्टाय भी याद आ रहे हैं। बहुमुखी प्रतिभा का जो रचनाकार होता है वह बहुत अधिक लिखता है। सवाल यह नहीं किस पाठक वर्ग के लिए लिख रहा है किस शैली में लिखा गया है। मैं यह मानता हूँ कि लालित्य ललित आज के समय के एक स्थापित महत्वपूर्ण व्यंग्यकार हैं, व संवेदनशील कवि हैं। उनको मेरी शुभकामनाएँ।

दिविक रमेश

मनुष्यता को रोपने की जिद

हरीश पाठक

शब्द विरोधी इस महा दौर में सतत् रचनाशीलता स्तब्ध भी करती है और एक कौतुक भी जगाती है कि यह क्यों और कैसे हो रहा है? लालित्य ललित कौतुकता के इस घटाटोप में एक जरूरी सवाल की तरह उभरते हैं। वे एक शिखर व्यंग्यकार तो हैं ही उनके नये कविता संग्रह 'मेरी 51 कविताएँ' से गुजरते हुए यह अहसास बहुत शिद्दत से होता है कि हम ऐसे कवि से मुखातिब हैं जिसके यहाँ लौकिक और लोकोत्तर संवादरत हैं। जिसके पास समकालीन यथार्थ की विकरालता को समझने की क्षमता ही नहीं उनका उत्सव मनाने की भी अदम्य इच्छाशक्ति है। इस मनुष्य विरोधी समय में यह दुर्लभतम है। वे कविता को किसी भी विचार का उपनिवेश बनाने के प्रयत्नों का सतत् मुखर प्रतिवादी स्वर बनकर उभरते हैं। यहीं लालित्य ललित भीड़ से इतर, समकालीनों से बहुत-बहुत अलग दिखते हैं। यही उनकी ताकत है। दिग्गज व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय के शब्द उधार ले लूँ कि 'लालित्य ललित अपनी रचनाओं में स्वयं को जीते हैं' तो बहुत कुछ साफ-साफ हो जाता है। वे खुद कहते हैं, 'मुझे नहीं लगता मैं कैसे लिखता हूँ। परिस्थितयाँ मुझसे लिखवा लेती हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं केवल सच लिखता हूँ और सच के सिवा कुछ नहीं लिखता।'

इन कविताओं में सच की यही परछाई अक्षर-अक्षर मिलती है। इनमें जीवन टिमटिमाता है। उसकी विद्रूपता मुस्कुराती है। उसकी जटिलता कसमसाती है और उसकी याचक मुद्राओं से रोम-रोम सिहर जाता है। यहीं यह भी अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि कविता की प्रामाणिकता किसी विचार विशेष का अनुगमन करने में नहीं, मानवीय वेदना और संवेदना को मुखरित करने में है। यह कविताएँ इस बात को बखूबी प्रामाणित करती हैं।

'मैंने उसे देखा' कविता में वे लिखते हैं :

जब भी कोई प्रेम में होता है, वह सुनता थोड़े ही है।

इसी तरह 'एक शब्द मैं लिखूँ और एक लिखो तुम' में वे कहते हैं :

संवेदनाओं ने बात, करना शुरू कर दिया
एहसास धीरे-धीरे, नजदीक आते चले गए
प्रेम हुआ दोनों में।

इतनी स्पष्ट, सहज और अपनी सी अभिव्यक्ति सिर्फ और सिर्फ लालित्य ललित के रचना संसार में ही मिलती है। इनमें मिलती है जीवन की विराटता और विकलता। इन कविताओं में है स्त्री, विवाह, प्रेम, राग, अनुराग, समय, हताशा, उम्मीदें, टूटना, बिखरना, जुड़ना, त्रास, त्रासदी, विचार, विचारधारा, कोरोना, फेसबुक, मैसेंजर और वह सब जो सात रंगवाले जीवन में, जगत में है। सच तो यह है कि सच्चाई से सचेत और उसके प्रति ईमानदार होने की बुनियादी शर्त की बदौलत ही लालित्य ललित की यह कविताएँ किसी स्वप्निल, कोमल और वायवीय संसार में नहीं भटकती बल्कि वह इच्छा और परिस्थिति के विकट द्वंद को साकार करती हैं। यही वजह है कि अति सहज भाषा में वे बहुत बड़ा फलसफा सामने रख देते हैं। 'नींद में लोग' में वे कहते हैं:

नींद में सोते हुए लोग, किसी बादशाह से
कम नहीं होते।

इसी तरह एक कविता में वे कहते हैं :

जो न धूप देखता, न बारिश देखता
न अंधड़ देखता, देखता है केवल और केवल
प्रेम की मौलिकता।

दरअसल यह अनूठा शिल्प लालित्य ललित की चेतना और प्रतिबद्धता के विस्तार को उजागर करता है। यह शिल्प कविता को महज भावुक, एकांगी, और सरल पाठ बन जाने से रोकता है और उसे वस्तुनिष्ठ, बहुआयामी और जटिल यथार्थ में ले जाता है। व्याख्या और किस्सागोई का यह निराला अंदाज बहुत आश्वस्तकारी है क्योंकि इसी में कविता की पारंपरिक भूमि और भूमिका भी निहित है। यह स्वप्नशील नहीं, यथार्थ की खुरदरी जमीन का सच है।

लालित्य ललित इसी सच के सबसे बड़े पैरोकार हैं। यह कविताएँ इस बात की गवाही देती हैं।

अपनी जमीन निर्मित करती काव्याभिव्यक्तियाँ

प्रेम जनमेजय

अक्सर बुजुर्ग पीढ़ी, युवा पीढ़ी को, या तो लतियाने के मूड में होती हैं अथवा परामर्शों का पिटारा खोल, माल को मुफतिया बेचने की शैली में अजस्त्र स्त्रेत-सी सावधानियों को बिखेर देती है। यदि मुझे किसी युवा लेखक को लेखन संबंधी कोई परामर्श देना हो तो मैं उसे एक ही परामर्श दूँगा कि वो किसी भी शिकायती परामर्श को न सुने। क्योंकि यदि वो सुनेगा भी, तो भी उससे शिकायत ही होगी कि वो 'ये' तो सुनता है पर 'वो' नहीं सुनता।

ऐसे में वह केवल सुनता रह जाएगा और उसकी युवा सोच पिछड़ जाएगी। युवा मन की छाती में किसी भाप के इंजन-सी ऊर्जा और गति होती है। उसकी सोच वर्तमान की सभी सीमाओं को भेदकर सुदूर भविष्य के रहस्य खोलना चाहती है।

'गिरते है शहसवार ही मैदाने जंग' की शैली में वह दुर्गम पर्वतों को लांघने की तीव्र इच्छा से युक्त होता है। वह समय से तेज दौड़कर,, भविष्य के स्वर्णिम स्वरूप को वर्तमान में साकार करना चाहता है। उसके युवामन की तीव्र आकांक्षाएँ ही जीवन के नए रहस्य खोलती हैं, नई उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत करती हैं एवं मानवीय समाज की बेहतरी के लिए अनुसंधान के द्वार खोलती हैं।

लालित्य ललित युवा कवि हैं और मैं, वय की दृष्टि से, एक बुजुर्ग रचनाकार, परंतु मैं ललित के लेखन पर बात करते समय न तो उसे लतियाउँगा और न ही कोई परामर्श दूँगा। मैं तो जो उसने लिखा है उस पर अपनी तुच्छ राय प्रकट करूँगा। यह राय ललित के लिए या तो इतनी तुच्छ बूँद-सी हो सकती है जो किसी बदबूदार कीचड़ में पड़ी किसी सूअर को तो सुख दे सके पर किसी संभ्रांत के लिए त्याज्य हो और या फिर ऐसी तुच्छ बूँद हो सकती है जो विशाल सागर का सीना भेद किसी सीपी में पड़ जाए और...। लालित्य ललित सकारात्मक, रचनात्मक, एवं ऊर्जापूर्ण सक्रिय व्यक्तित्व के युवा वए वए रचनाकार है। वे संचार माध्यमों का सदुपयोग बिना किसी किंतु-परंतु की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में करते हैं। नवीन योजनाओं में संलग्न हो उन्हें कार्यान्वित करना एवं वातावरण में एक सक्रियता का निर्माण करना उनकी दिनचर्या का अंग है।

वे अत्याधिक संचार संसाधनों का बखूबी प्रयोग करते हैं। आधुनिक युग में अभिव्यक्ति के एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित, फेसबुक के सबंध में बहुत कुछ लिखा गया है, इस अभासित दुनिया को कथ्य बनाकार अनेक कहानियाँ एवं लेख भी लिखे गए हैं पर इसका साहित्यिक माध्यम के रूप में उपयोग कर इसके पन्नों पर छंद नहीं रचे गए हैं। लगभग प्रतिदिन इसके असीम पृष्ठों में से कुछ पृष्ठों को साहित्य की दुनिया का हिस्सा बनाना एवं आज की दुनिया के समक्ष खड़े सवालों को चिंतन देना, निश्चित ही प्रशंसनीय प्रयास है।

किसी भी वर्तमान का जीवन बहुत अधिक दीर्घायु नहीं होता है। वह बहुत जल्दी या तो अतीत हो जाता है या फिर भविष्य की योजनाओं में संलग्न हो जाता है। किसी भी युग का वर्तमान इस अर्थ में तो एक-सा होता है कि वह युवा होती पीढ़ी के सामने आधुनिक होते जीवन के प्रति आकर्षण पैदा करता है।

आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नवीन परिवेश एवं विज्ञान द्वारा प्रदत्त दैनिक जीवन को सुविधा प्रदान करने वाले नए उपकरणों के प्रति निडर आकर्षण पैदा करता है। जहाँ पुरानी होती पीढ़ी, नए उपकरणों को लगभग सावधानी के साथ बच-बच कर नाक भौं सिकोड़ते हुए स्वीकार करती है वहीं युवा पीढ़ी उसे

चुनौती के साथ निडर होकर स्वीकार करती है। मैंने अपनी माँ को बिजली के स्विच को हाथ लगाने से भयभीत होते और काफी दिनों तक घर में गैस के चूल्हे से डरकर स्टोव पर काम करने को विवश देखा है।

मैं आज को देख रहा हूँ और अपने लालित्य ललित जैसे युवा मित्रों के माध्यम से अपने वर्तमान को समझने और उसकी चुनौतियों से निपटने का प्रयत्न कर रहा हूँ। तकनीक से मैं धबराता नहीं हूँ अपितु उसे समझकर उसका सदुपयोग करने का प्रयत्न करता हूँ और इस कारण निरंतर अपने युवा मित्रों की ओर सहायतार्थ दृष्टि से देखता रहता हूँ। मेरे युवा मित्रों ने पल प्रतिपल मेरी सहायता भी की है।

मेरे कंप्यूटर फ्रैंडली होने, मोबाईल के नए मॉडल प्रयोग करने और फेसबुक पर सक्रिय होने का यही कारण है। हम अक्सर अपनी संकुचित दृष्टि के चलते किसी एक व्यक्ति के अपराध के चलते पूरी जाति, धर्म, समुदाय को दोषी बना देते हैं। इसी संकुचित दृष्टि के चलते फिल्म, मंच, दूरदर्शन आदि को साहित्य की तुलना में बहुत घटिया सिद्ध करते हैं। अनेक बार तो हमारी दृष्टि यह होती है कि इनका नाम भर लेने मात्र से हमारी पवित्रता पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा और हमें गंगा स्नान करना पड़ेगा।

मेरा मानना यह है कि ये सब तो माध्यम हैं। माध्यम कोई बुरा नहीं होता , बुरा या अच्छा होता है उसका दुर्पयोग अथवा सदुपयोग। इसी प्रकार फेसबुक अभिव्यक्ति का एक सशक्त सामाजिक मंच है। इसका सदुपयोग कम हो रहा है दुर्पयोग अधिक होता है।

लालित्य की साहित्यिक विकास यात्रा को मैं लगभग आरंभ से देख रहा हूँ और मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ललित ने निरंतर विकास ही किया है। संकोच शब्द ललित के शब्दकोश में ही नहीं है तो उसके बारे में कुछ कहते समय मेरे आलेख में ही क्यों हो। ललित के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं उसके भौतिक व्यक्तित्व में कोई विशेष अंतर नहीं है।

बेबाकी, निसंकोच अपनी बात कहने का साहस, रिश्तों में खुलापन, मानवीय संवेदनाएँ, नारी सौंदर्य के प्रति युवकोचित नैसर्गिक आकर्षण, शहर में गाँव की स्वाभाविकता, भीनी गंध और गाँव में शहर की मानवीय विकास के लिए हितकर प्रगति को खोजता मन आदि अनेक संदर्भ हैं जो ललित के भौतिक और साहित्यिक व्यक्तित्व में एक समान हैं। यदि कोई शोधार्थी ललित को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता है तो वो ललित की रचनाओं के माध्यम से उसे बखूबी जान सकता है।

रचनाकार की रचना और उसके व्यक्तित्व का साम्य बहुत कम लोगों में मिलता है। अक्सर रचनाकार को नजदीक से जानने वालों की शिकायत होती है कि रचनाकार के लेखन और उसके व्यक्तित्व के बीच अनेक विसंगतियाँ हैं। ललित से यह शिकायत नहीं हो सकती है। उसके लिए लेखन से अधिक महत्वपूर्ण आपका साथ है। इसलिए वह कहता है-मैं लिखता हूँ/इसलिए/कि/मुझे लिखना है/यदि/नहीं लिखूं/तो/क्या/होगा/कुछ नहीं/कोई दूसरा दिखेगा/और/मैं/वहीं दिखूंगा/शब्दों में/एहसास मेरा ही होगा / यदि /आपको लगे / कि / मैं आपके साथ हूँ / आपका हमदम हूँ /आपको समझता हूँ / तो / यही मेरी जीत है/ जो / आपसे जुड़ी है/ हमेशा/और/मुझे आपका साथ पसंद है/हमेशा।' ललित को जुड़ना पसंद हैं, उसे संवाद पसंद है और उसे पसंद है निश्छल संबंध।

ललित अपनी कविताओं में निरंतर ऐसे 'सज्जनों' का विरोध करते दृष्टिगत होता है जो संबंधों का लाभ उठाने में विश्वास करते हैं और संबंधों को उनके प्राकृतिक रूप में नहीं जीते हैं।

ललित संबंधों को उनके स्वाभाविक, संवेदनशील एवं प्राकृतिक रूप में जीना चाहता है। वैसे तो उसकी पूर्ववर्ती कविताओं में सबंधों की एक भूख निरंतर दृष्टिगत होती है परंतु उसकी इस संग्रह कविताओं में मैं वह और अधिक तीव्रता एवं शिद्दत के साथ आई है।

ललित अपनी कविता 'गाँव का खत शहर के नाम' में अभिव्यक्त संवदेनशीलता, सहजता एवं भोलेपन की

अभिव्यक्ति के लिए प्रशंसित किए जाते हैं। इस संग्रह में वे अपनी इस कविता से और अधिक आगे बढ़ गया है।

उसके इस संग्रह की 'हमारे माँ-बाप', 'पिता' 'बिटिया' जैसी कविताएँ ललित के इन संदर्भों में विकास को दर्शाती हैं। और यह भी दर्शाती हैं कि ललित की कविताओं में ललित झाँकता है। 'बिटिया' में ललित कहता है- हम अचानक/ बड़े हो गए/क्या समय बलवान है / कब काले बालों से / सफेदी झरने लगी / कब बिटिया बड़ी हो गई / कब पिता जी / बूढ़े हो गए / ''पापा आप तो बूढ़े हो गए'' / देखो तो जरा / कलम सफेद दिखने लगी / युवा बिटिया /बताती है / बुजुर्ग पिता / सोच रहा है / क्या वाकई सफेदी / झरने लगी है /यानी / बिटिया बड़ी / हो गई'' । यही कारण है कि ललित को अपनी कविताओं के विषयों को तलाशने के लिए भटकना नहीं पड़ता है। उसके इर्द गिर्द ही इतने विषय बिखरे पड़े हैं।

ललित की कविताओं में माँ-बाप, बेटी, बहू, पड़ोस आदि जीवन मूल्यों से जुड़े परंपरागत संदर्भ हैं तो आधुनिक होती दुनिया के—एस. एम. एस, फेसबुक, इंटरनेट, मोबाइल, मॉल, चुलबुली लड़कियां आदि भी हैं। वह क्षय होते मानवीय मूल्यों के प्रति चिंतित है तो जलेबी, पकौड़े, चिकन, ढाबे की चाय, आदि में मस्त भी है।

इस संग्रह में वैसे तो अनेक कविताएँ हैं जो ललित के सामाजिक सरोकारों एवं उसके चिंतन की दिशा को व्याख्यायित करती हैं। इस दृष्टि से मैं चहूँगा कि उसकी 'शन्नो अब्बा का संवाद' कविता अवश्य पढ़ी जाएँ यदि आपको युवा ललित से यह शिकायत है कि उसमें खिलंदड़ापन है तो इस कविता में ललित एक बुजुर्ग मन की परिपक्वता के साथ जीवन को व्याख्यायित करता दृष्टिगत होगा। मेरी इच्छा है कि ललित इस शेड की कविताएँ और लिखे।

ललित की कविताओं में विसंगतियों को लक्षित कर उन पर व्यंग्यात्मक प्रहार करने की प्रवृति आरंभ से है। उसके पास विसंगतियों को पहचानने की सजग दृष्टि है। अपनी इस शैली के कारण ही उसकी कविताएँ दुरुहता की शिकार नहीं हैं। इस संकलन में भी उसकी व्यंग्यप्रधान कविताओं का प्रतिशत अत्यधिक है। इस संकलन की कविताओं में व्यंग्य कहीं क्षणिका के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है तो कहीं 'विश्व हिंदी सम्मेलन' जैसी लंबी कविताओं के माध्यम से। ललित आजकल गद्य-व्यंग्य लेखन में अपने हाथ आजमा रहा है और अभी ठीक से तुतलाया भी नहीं है। उसका पद्य, उसके गद्य से कहीं अधिक सशक्त है। पर उसके पास व्यंग्य का मुहावरा है। यह एक ऐसा मुहावरा है जो आत्म व्यंग्य तो करता ही है, कबीर की तरह आपकी विसंगतियों को लक्षित कर आपसे ऐसा सवाल पूछ लेता है कि आप असंतुलित हो जाते हैं। उसका यह व्यंग्यात्मक प्रश्न देखिए—

वेश्याएँ
तन बेचती हैं
और
नेता ईमान
और
आप?

ललित अपनी जमीन खुद तलाश करते हुए साहित्य के क्षेत्र में गिरते- संभलते हुए गतिशील है। वह अपना शिक्षक स्वयं है। उसके अंदर गजब का आत्मविश्वास है। यही आत्मविश्वास उसे बंद दरवाजों को खोलने, राह रोकती चट्टानों से भिड़कर उन्हें चकनाचूर करने एवं बिना किसी बैसाखी के गतिशील

लालित्य ललित की कविताओं में यथार्थ अपने प्रखर रूप में है। जीवन की छोटी-छोटी बातें जिन्हें हम अक्सर अनदेखा कर देते हैं। लालित्य ललित उन्हें महसूस करता है। और बिना किसी लाग-लपेट के अभिव्यक्त करता। ललित को जीवन से प्यार है। वह उसे यथावत नहीं देखना चाहता है। उसे बदलना चाहता है। उजलाना चाहता है। उसे बेहतर स्थितियों में लाने का इच्छुक है। इस संबंध में उसके संकेत अर्थपूर्ण हैं।

वेद राही

होने का साहस देता है। यही कारण है कि वह चुनौतियों को स्वीकार करता है, न कि उनसे पलायन करता है। यही कारण है कि वह बुजुर्ग पीढ़ी को आवश्यक सम्मान तो देता है परंतु उनकी गलत बात पर उँगुली उठाने का साहस भी रखता है। उसमें विरोध करने का साहस और चुनौतियों से अकेले निबटने की ताकत है। वह किसी दुर्गम राह पर चलने के लिए आपको निमंत्रण तो देगा परंतु आपकी किंतु परंतु वाली मुद्रा को देखते ही अकेला भी चल देगा। अब आपको आना है तो या तो पीछे-पीछे आईए या फिर अपनी गति बढ़ाई, और उसे पकड़कर उसका साथ ले लीजिए। ललित की सोच में किंतु-परंतु बहुत कम है। वह संभवतः प्लेटो की इस बात को जानता है– Every heart sings a song, incomplete, until another heart whispers back. Those who wish to sing always find A song...और यही असली युवा सोच है। इसी के कारण वह निरंतर प्रगति कर रहा है।

मुझे ललित की कविताएँ पसंद हैं क्योंकि मुझे वे समझ आती हैं। उसकी कविताएँ उस विशेष कवि की कविताएँ नहीं हैं जो लिखता तो आम आदमी के लिए है परंतु जिन्हें मुझ जैसा साहित्यिक आम आदमी भी समझ नहीं पाता है। ललित बलात् बौद्धिक होने का न तो प्रयत्न करता है और न ही दिखावा। अंत में ललित की कविताओं को समझने और पहचानने के लिए उसी की कविता के माध्यम से कहना चाहूँगा–दिल की गहराई से / चाहो / फूल को पत्ती को/और फुदकती कूदती तितली को/कुछ देर फूल को/ सहलाओ/पत्ती को पुचकारो/देखोगे तुम/आहिस्ता से आ बैठेगी/तुम्हारी हथेली पर तितली/बिलकुल वैसे ही/जैसे किसी अनजान अजनबी/बच्चे की ओर/निष्कपट भाव से देखो/मुस्कुराओ/तो पाओगे/बच्चा भी तुम्हें भाव से/देखेगा /तो मेरे दोस्त/एक दूसरे को इसी भाव से/देखो/तो कटुता मिट जाएगी...।'

फेसबुक के मंच पर प्रस्तुत ये छंद आधुनिक बोध, आज के समय की विसंगतियों, पारिवारिक रंग, नेतिक चिंताओं आदि को अभिव्यक्त करते हैं। फेसबुक के माध्यम का प्रयोग करने के बावजूद इस संकलन की कविताएँ विषय की दृष्टि से फेसबुक तक कतई सीमित नहीं हैं। अपितु यदि ये कहें कि इस विषय की कविताएँ न के बराबर हैं। कवि आप से हर क्षण सवाल करता है।

क्षरित होता जीवन मूल्यों के प्रति चिंतित है। आज आप कही नज़र दौड़ाओ/आप को लगेगा शायद/आप किसी दूसरी दुनिया में आ गए हो हर तरफ आपा-धापी/मार-काट चाहे संबंध हो या भाईचारा हो/किसी को किसी से कोई मतलब नहीं रहा दोस्ती अब टिकी है नोटों पर/नोटों की चिंता में लगे सब दुनियावासी/आप को लुभाते यह विज्ञापन कि यह ले लो या वह ले लो/और आप मारे जाते हैं हर बार/आप ने कभी सोचा है कि/आपकी जेब का असली चोर कौन है/नहीं ना/अक्सर हम सोच नहीं पाते/और वह चोर अपना काम करता रहता है हौले-हौले जी हाँ आप अब समझ रहे हैं यह विज्ञापन ही है।

ललित वय से चाहे युवा हैं पर उनका चिंतन किसी बुजुर्ग का है। किसी दिशाहीन युवा से वे उच्छृंखल नहीं हैं। उनकी चिंताओं का स्वर किसी बुजुर्ग का है। वे आधुनिक होते युग और अतीत हुए वर्तमान में एक संतुलन चाहते हैं। न वे आधुनिकता के बहाव में अतीत को नकाराना चाहते हैं और न ही अतीत के मोह में आधुनिकता से किसी कबूतर की तरह आँख मूदना चाहते हैं। कहीं उनकी पीढ़ी मूल्य विहीन न हो जाए और उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद के आकर्षण में व्यक्तिवादी न हो जाए इसलिए उसे वे चेताते रहते हैं और कभी-कभी तो डाँटते हुए भी लगते हैं।

बुढ़ापे में बेटे/बुजुर्गियत को मारने में लगे हैं/नए-नए फोन को बदलने में अव्वल/ऐसा ही प्रयोग अपनी गर्ल फ्रेंड के साथ भी करते हैं/इन लड़कों का प्रेम एक पखवाड़े का होता है/बहुत जल्द हार मान लेते हैं और जिनकी एक भी लड़की दोस्त ना हो/उसको उसके मित्र प्रेम में/पिछड़े वर्ग का मान लेते हैं या फिर सीधे-सीधे ललित की यह कठोर अभिव्यक्ति अगर दे सकते हो तो अपनों को सुख देकर

देखो/और याद करो कि जब तुम छोटे थे तो इन्हीं बुजुर्गों ने तुम्हें संभाला था/तुम्हारी टट्टी-पेशाब साफ़ की थी और जब यह बीमार है तो तुम को उबकाई आती है/ लानत है तुम पर और तुम्हारी जवानी पर क्या जवानी लालित्य ललित की इन कविताओं का परिदृश्य व्यापक है।

उनकी एक और खूबी जो मुझे आकर्षित करती है, वह है विसंगतियों की पकड़ और उन पर बेबाक प्रहार। इस प्रक्रिया में किसी को नहीं बख्शते हैं। अनेक बार तो वे स्वयं को भी लक्षित कर लेते हैं। विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए, हमारे अन्य अधिकांश युवा रचनाकारों की तरह राजनीतिक विसंगतियां उनकी सीमा नहीं हैं। वे बाजारवाद, अनैतिक होते समाज, हिंदी भाषा के व्यापारियों, आदर्शहीन डॉक्टरों आदि पर सीधा आक्रमण करते हैं। इसके लिए जिस सचेत दृष्टि, व्यंग्य के मुहावरे एवं चेतना की आवश्यक्ता है, वह ललित में दृष्टिगत होती है।

डॉक्टरी पेशे पर आक्रमण करते हुए वे लिखते हैं—आम डिलीवरी में पंद्रह हजार/सिजेरियन में पैंतीस हजार/और/आज की आई.बी.ऐफ टैक्नोलॉजी (इन विट्रो फर्टीलाईजोन...)/का खर्चा /लगभग दो लाख रुपए /जिसे डॉक्टर आपसे नगद लेता है/और इस पर टैक्स भी नहीं देता.../यानी /चुनौती आपके सामने हैं/आपने अपना बैंक बैलेंस बढ़ाना है या/अपना परिवार बसाना है यह विज्ञापन नहीं तो और क्या है महंगा फोन, मंहगे चश्मे/अब तो महंगी बीमारियों का चलन भी हो गया है,/शुगर, किडनी, फेलियर, बायपास सर्जरी, आँख में दिक्कत/या कैंसर/फिर मेडिकल पॉलिसी इत्यादि समस्याओं से आपको जूझना पड़ेगा/आपको तैयार कराते विज्ञापन मेरा विचार है कि आभासित दुनिया का छंदात्मक अभिव्यक्ति के मंच के रूप करना प्रशसनीय है पर इसी पर केंद्रित रहकर इस कृति की चर्चा न की जाएँ इस आधार पर ललित को वाह वाह देकर, या उसकी टाँग खींचकर अपने दायित्व से मुक्ति न प्राप्त की जाए अपितु इन कविताओं का जो कथ्य है, उस पर क्रेंदित बात हो तो बेहतर होगा। फेसबुक तो एक माध्यम है और यदि हम माध्यम में उलझ कर रह जाएँगे तो उसके माध्यम से प्रस्तुत मुख्य विषय से भटक जाएँगे। ऐसे में हम अपने नेताओं (साहित्यिक एवं राजनैतिक) के अनुयायी अधिक होंगे जो अक्सर विषय से भटके रहते हैं ओर मुँह देखी अधिक करते हैं।

अभिव्यक्ति सभ्य मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यक्ता है। इसके लिए वह विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करता है। वह चाहे जितना स्वांतः सुखाय अभिव्यक्त करता हो, उसकी अभिव्यक्ति समाज का हिस्सा बनती ही है। आज की दुनिया में ई-मेल, एस. एम. एस, आदि अनेक अभिव्यक्त के माध्यम उपलब्ध हैं।

फेसबुक तो ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके माध्यम से आप अपनी अभिव्यक्ति को कुछ ही क्षणों में हजारों लोगों के साथ बांट सकते हो। मुझे याद है 1968 का वह समय जब लेखन की दुनिया में मैंने कदम रखा था। उन दिनों कंप्यूटर की तो क्या कहें हिंदी की टाईप, फोटोकॉपी आदि की सुविधाएं या तो नहीं थी या बहुत दुर्लभ थीं। पहले फाउंटेनपेन से रचना लिखते, उसकी काँट छाँट करते, फिर उसकी पत्रिका में भेजने के लिए प्रति तैयार करते। ऐसे में गर्मियों के समय किसी पृष्ठ पर पसीने की बूँद गिर जाती तो उस बूंद को दोबारा लिखते।

वापसी के लिए टिकट लगा लिफाफा भेजते और अक्सर रचना इस हालात में, कभी बड़े से क्रॉस के साथ वापिस आती, जिसका पुनः प्रयोग नहीं हो सकता था। रचना के निर्णय को जानने के लिए पोस्टमैन की उतनी व्यग्रता से प्रतीक्षा जितनी अपनी प्रेमिका की।

मेरा यह अतीत जानता है कि लेखकीय मन अपने सृजन को समाज का हिस्सा बनाने के लिए कितना उत्सुक एवं व्यग्र रहता है। इस दृष्टि से फेसबुक एक सशक्त माध यम है। ललित ने आभासित दुनिया के इस माध्यम का साहित्यिक मंच के रूप में प्रयोग का न केवल नया मार्ग प्रस्तुत किया है अपितु उसे साहित्य की दुनिया के साथ जोड़कर एक सार्थकता भी प्रदान की है।

अर्थ अमित आखर अति थोरे

गंगाराम राजी

समाज की रूचियों में जैसे जैसे परिवर्तन होते गए हैं वैसे ही कविता के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। यही कारण रहा है कि जो स्वरूप कविता का आदिकाल में था वह भक्तिकाल में नहीं, जो भक्तिकाल में था वह रीतिकाल में नहीं और जो रीतिकाल में था वह आधुनिक काल में नहीं और अब तो कविता, कहानी साहित्य की हर विधा में एक दशक में परिवर्तन दिखाई देता है। लेकिन इतना तो मानना होगा कि हर युग में कविता निरूद्देश्य नहीं रही है। हर युग के साहित्य, कविता में उस समाज का रूप देखने को मिलता है। वास्तव में साहित्य उस समय का वास्तविक इतिहास होता है।

'लोग हैं लागि कवित बनावत
मोही तौ मेरे कवित बनावत'

घनानंद का यह दोहा हमें स्वछंद कवित की ओर इंगित करता है और आधुनिक युग में जहाँ कवि ने तोड़ छंद के बंध नई कविता को जन्म दिया 'दो टूक कलेजे के करता वह आता,' निराला ने अपने कविता के बंधन सब तोड़ डाले छंद रहित कविता पर आ पहुंचे।

वर्तमान की कविता इसी आधार पर रची जा रही हैं।

'जब कविता बाह्य संसार से हट कर आत्मपरक होने लगती है तो वहीं से उसके अनुसार पतन आरम्भ हो जाता है।' ऐसा बहुत से विचारकों का मानना है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं आज श्रेष्ठ कविताएँ 'मैं' से ही लिखी जा रही हैं।

स्वच्छंदतावादी कवि अपनी व्यक्ति, काल्पनिक अनुभूति के माध्यम से संसार के उन अप्राप्य तथा गोप्य साधनों एवं तत्वों की अभिव्यक्ति करता है जिनके सुलभ होने से मानव जीवन के श्रेष्ठतर होने की सम्भावना रहती है।

आदिकाल से चले आ रहे वाद-विवादों की प्रक्रिया से कविता आगे बढ गई है। आज उसका संसार की भाषाओं में अपना अलग अस्तित्व है अपनी अलग पहचान है और उतना ही आकर्षण भी। हिन्दी में इसका दायरा इतना विस्तृत है कि अभी तक इसको किसी एक वाद में ढाला नहीं जा सका है यह इसकी लोकप्रियता के कारण ही है। कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी कविता का प्रयोगवाद की संकुचिता से ऊपर उठकर अधिक उदार और व्यापक बनना।

आज की हिन्दी कविता न तो भारतीय और नही पाश्चात्य दर्शन किसी भी दर्शन से बंधी हुई है, परन्तु वह जीवन के सभी यथार्थ के पहलुओं पर नई भाषा के साथ नई शैली में प्रस्तुत होते हुए भी अपनी कलात्मकता की अभिव्यक्ति को कायम रखे हुए है, यही उसकी विशेषता है जिससे वह कविता ही बनी हुई है जबकि कुछ प्राचीन विचार धारा के लोग अपनी नाक सिकोड़ते हुए इस कविता के रूप को देखते हुए इसे कविता की धारा में डालने का प्रयास भी करने लगे हैं।

दूसरी ओर वादों की प्रक्रिया में कवि को बांधा नहीं जा सकता, जब उसके अंदर के कवि मन में विचार उमड़ने लगते हैं तो कविता फूटती है। जब हृदय अंह की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मार्तरह जाता है, तब मुक्त हृदय होकर अंतर्मन से शब्दों में पिरोए गए विचारों का लय में जो प्रस्फुटन होता है वही कविता है। कविता मनुष्य को स्वार्थ संबंधों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मकता संबंध जोड़ने में सहायक होती है। यही सच्चे कवि का धर्म है। उसकी कलम से मानवीय संवेदनाएँ प्रफुटित होती है।

कविता कवि और पाठक को आलौकिक आनंदानुभूति कराती है जिससे हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवम् सुंदरम की भावना निहित होती है। जिस

काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वही काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में माना जाता है। वही कालजयी रचना की ओर अग्रसर होता है।

'अर्थ अमित आखर अति थोरे' के उदाहरण आज कम ही मिलते हैं। लालित्य की अपनी कला है और वे थोड़े ही शब्दों में अधिक कहने की क्षमता रखते हैं यही उनकी कला भी है।

लालित्य का प्रस्तुत काव्य संग्रह 'मेरी इक्यावन कविताएँ' में अधिकांश कविताएँ वर्तमान में समाज में आई आपदा करोना पर आधारित हैं। हो भी क्यों नहीं कवि हमेशा ही अपने युग में जीता है और अपने आस पास के वातावरण को अपनी लेखनी का विषय बनाता है। आदि काल से ही समाज पर आई विभिन्न प्रकार की आपदाओं को हमेशा ही सामाज का सामान्य प्राणी, सबसे निचले स्तर पर रहने वाला इंसान ही झेलता आया है फिर चाहे वह आपदा प्राकृतिक हो जैसे कई प्रकार की महामारी या फिर मनुष्य निर्मित।

चाहे अंग्रेजों के समय का बंगाल का अकाल हो जिसे उस समय के कवि नागार्जुन ने अंकित किया अकाल और उसके बाद' में या अभी का करोना हो कवि से साधारण मानव की पीड़ाएं नहीं देखी जातीं और उसका अंदर का मन चीत्कार कर उठता है लालित्य का काव्य संग्रह भी इसी का परिणाम है।

फिर भी इनकी कविताओं में कविता के आधार के सब गुण परिपूर्ण हैं, कवि वर्तमान की पीड़ा में भी सौंदर्य के पल को झांक ही लेता है उनके काव्य की एक सौंदर्य झलक कवि को अपने आस पास जो सौंदर्य की अनुभूति होती है वह देखते ही बनती है और मन में कई संवेदनाओं के प्रश्न उठने लगते हैं।

'बड़ा मुश्किल होता है उन दिनों'

यही नहीं आगे कवि का हृदय उन गरीब मजदूरों की मासूमियत पर टिक जाती है

'एक बात बता दूँ कट टू कट/तुम साथ होती हो न/
यही है रोशनी दिलों के बीच की/

ये रास्ता ये मंजिले और ये मायूसियाँ बड़ी हसीन लगती है'

एक सौंदर्य यह भी कवि उसे पैसे वाले मालिक जिसमें संवेदना नाम मात्र को नहीं है इस कविता में उस पूंजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करता है जो मानवीय संवेदनाएं भूल चुका है एक उदाहरण एसी की गैस भरता हुआ मिस्त्री सामान्य आदमी के मन में इतनी संवेदनाएं भरी पड़ी होती हैं जबवह अपने और अपने परिवार के पेट भरने के लिए बाहर काम पर जाता है तो वह पक्षियों का भी ख्याल रखता है भले ही उसे अपने काम के लिए मालिक की झिड़कियां क्यो न खानी पड़ी हों जब पैसे वाला, गरीब मिस्त्री के ए सी में ठीक होने का देरी लगने का कारण पूछता है तो मिस्त्री का उत्तर देखते बनता है

'कबूतरों ने अपना घोसला बना रखा है/किसी को किसी के घर से/
निकालना भी गहरे पाप की तरह है'

कवि की दृष्टि कहाँ भावी दृश्य देख लेती है उसकी संवेदनाएँ सात समुद्र पार भी हिलोरे लेने लग जाती हैं मानवीय संवेदना का यह दृश्य जो लालित्य ने अपनी कविता के माध्यम से जताया वह दूर दराज में भी दिखाई दिया लेकिन अभी हाल ही में दुबई के प्रिंस की बहुमूल्य मर्सडीज़ में जब एक पक्षी ने अपने अंडे और फिर बच्चे दे दिए तो प्रिंस ने वह गाड़ी नहीं चलाई वह उस पक्षी के लिए ही छोड़ दी जिसने वहाँ अंडे दिए थे। यहाँ कवि का हृदय भी इसी भाव को पढ़ता है और इस महान उदारता से पहले ही अपने काव्य में रच डालता है।

वहीं पर इसी व्यवस्था पर विचरित कर रहे फिल्मी कलाकार सोनू की संवेदना पर भी कवि की पैनी नजर पड़ जाती है तो वह उसका गुणगान करना भी तो नहीं भूलते कैसे उसने दस श्रमिकों को/विमान से पटना पहुँचाने का बीड़ा उठा लिया/समाज में ऐसे ही सम्पन्न और सोनू सूद की आवश्यकता है/जो निस्वार्थ भाव से अपनी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

'सबसे परे' कविता में प्रेम का संदेश जहाँ हमारा भारत राजनीति से दूर बसता है आज के समय में जिस एकता का होना आवश्यक है कवि उसके बारे में वर्णन करना नहीं भूलता

चमन और रहमान अली को देख कोई कह नहीं सकता
कि इनमें से हिन्दू कौन और कौन मुसलमान
दोनों में प्रेम बसता है और वह भी बेपनाह।
सबसे परे है चमन और रहमान अली।

आर्थिक एवं सामाजिक बदलाव ने समाज को वेदना से भर दिया है, कवि को जीवन में हर ओर गतिरोध दिखाई दे रहा है। मुक्तिबोध की नजर भी यही देखती थी।

''सामने मेरे सर्दी में बोरे ओढकर/कोई एक अपने/हाथ पैर समेटे/कांप रहा/हिल रहा/वह मर जाऐगा।'

वहीं पर कवि लालित्य उस मजदूर की अंदर की संवेदनाओं को छूते हैं।

'दौड़ते भागते ये दिन' में पिता के पास अम्माँ के पास, बच्चों के पास जल्द से जल्द/दौड़ रहे है वे बिना चप्पलों के/बिना जूतों के/गमी में लगातार चल रहे हैं बेधड़क/

वे लौटेंगे भी की नहीं/उनका जवाब नहीं है/अभी उनके पास बस घर जाना है
दौड़ते भागते ये दिन
कला पक्ष

लालित्य की यह कला रही है कि वे अपने आस-पास की प्रत्येक वस्तु को गहरे से देखते हैं और उसे सौंदर्य की परिधि में समेट लेते हैं इसलिए थोड़ा सुंदर असुंदर का घाल मेल कर उनका भावुक मन उसे सौंदर्य का रूप देने में कोई कुताही नहीं बरतता।

उनकी आभा कलिष्टता के उस जंजाल से दूर है जिसमें पाठक को कविता समझने में माथा पच्ची करनी पड़ती है या किसी शब्दकोश का सहारा लेना पड़ता है। उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी के साधारण शब्दों से अपनी कविता का ताना-बाना पिरोते हैं जिससे कविता कोई बोझिल नहीं बनती, उसे यथार्थ की भाषा ही कहा जा सकता है इसलिए पाठक को अपनी ही कविता का आभास होने लगता है।

मुझे तो उनकी भाषा और शैली कुंवर नारायण जैसी लगती हैं एक उदाहरण देखिए

पार्क में बैठा रहा कुछ देर तक/अच्छा लगा/पेड़ की छाया का सुख
डाल से पत्ता गिरा पत्ते का मन
''अब चलूँ'' सोचा,
तो यह अच्छा लगा
लालित्य की कविता
'नाई ने कहा' की भाषा

फोन लगाया/पड़ोसी नाई कुरेशी जी बोले/आ जाऊगां/बुधवार को सुबह दस बजे/बेचारे मोहन बाबू सोमवार से देख रहे हैं/बुधवार कब आएगा!

इन कविताओं में आस्था, अनास्था, संत्रस, बौद्धिकता के साथ सौंदर्यभाव के जो दर्शन होते हैं जो आज की कविता में कहीं ही नजर आते हैं और इससे बड़ी बात इन कविताओं की भाषा का सरलीकरण, साधारणीकरण जो इस संग्रह की अपनी मौलिकता है पाठक को अपनी ओर आकर्षित तो करती ही हैं कई दिनों तक पाठक के दिमाग में एक प्रभाव छोड़ जाती हैं।

कविता समाधान की वह वाणी है जो कवि की गहन मौन अनुभूति को मुखर करती है। जीवन की सम्पूर्णता की अनुभूत अभिव्यक्ति ही कविता है।' यही लालित्य की कविता से सिद्ध हो जाता है।

लोकजीवन को उजागर करने की नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में मिलती हैं, उसकी कोशिश लालित्य ललित में भी नजर आती है। वे लोकजीवन की पहचान करते हुए अपने समय की आहटें, ध्वनियाँ तथा स्थिति दर्ज करते हैं और भारतीय आम आदमी के संघर्ष के काराणों की पड़ताल करते हैं। इस मायने में वे संघर्ष और निरंतर आत्ममंथन की प्रक्रिया से उपजने वाले संत्रासों का उत्तर टटोलने वाले कवि हैं। कविता में सामाजिक संघर्ष को स्थित कर एक आत्मविश्वास भरे माहौल को पैदा करने में उनकी भूमिका और गहरी है।

शतानंद श्रोत्रिय

कवितामय जीवन या जीवनमय कविता

डॉ. हरिसुमन बिष्ट

लालित्य यह भलीभांति जानते हैं कि आजकल बाहर लाकडाउन है हम अपने-अपने कोप भवन में चले गए हैं। हम यहाँ अपने एकांत को जी नहीं रहे हैं, बल्कि अपनी आशाओं और आकांक्षाओं को बुन रहे हैं कैकई की तरह यह जानते हुए भी यह सामान्य रूप में स्वीकार्य किया जानेवाला एकांत जैसा नहीं है, भीतर का एकांत है यहाँ जीवन और मृत्यु के बीच डोलती पीड़ा, घुटन और भय है।

आजकल भाग्य हमारे साथ है तो दुर्भाग्य भी जीवन है तो मरण भी विचित्र किस्म की श्मशानी चुप्पी है तो उतनी ही भयावहता भी है। वही भयाक्रांतता जिसे दुनिया भर के कवि कथाकार रचते गुनगुनानते नहीं थकते आजकल वे भी मोक्ष की लौ लगाये, अपनी बाहर से कहीं भीतर की बड़ी दुनिया में मौन हैं।

आजकल किसी के मौन को तोड़ना गलत नहीं, उसे यथार्थ की भावभूमि में लाना जैसा है। यहाँ स्पष्ट करना जरुरी है कि यहाँ कवि कथाकार का मौन अवसाद में जीना नहीं है बल्कि अपनी सृजनात्मक लेखन के लिए एक नयीं उपजाऊ भूमि तैयार करना है। बहरहाल ललित उसी भूमि को तैयार करने में जुटे हैं, और हरेक से अपनी-अपनी वैचारिक भूमि को जोतने की उम्मीद भी रखते हैं। यह अच्छी बात है खैर! यह दुरूह समय भी बीत जायेगा।

इधर मैं देख रहा हूँ, ललित का 'प्रेम' कम होने लगा है, वह प्रेम से कहीं अधिक 'समय' को समझने लगे हैं शायद यह उनकी उम्र की मांग हो, लेकिन अभी प्रेम से उन्मुक्त होने का समय नहीं हैं, जीवन में प्रेम को न करने में आज की तकनीक की बड़ी भूमिका है। हम 'आई लव यू!' कहने में संकोच कर रहे हैं गज़ेट से प्रेम करने लगे हैं।

इससे प्रेम का उत्स कम हुआ या नहीं वह उसके प्रकटीकरण में सुविधाजनक जरुर हो चुका है। ललित लिखते हैं 'मुझे, अपना ई-मेल दे दें' मित्र से कभी नहीं पूछ सकता किस लिए, या फिर तुम्हारे पास नहीं है? अब मित्र ने माँगा है, तो उसी रास्ते तत्काल भेजना भी है। पलक झपकते ही देखता हूँ बहुत कुछ मुझ तक पहुँच गया है जिसमें अनुनय विनय नहीं कोई लागलपेट नहीं सिर्फ प्रेम है वही प्यार जिसमें वह उलझे और रंगे रहते हैं बाहर भी और भीतर भी इस संग्रह में इक्यावन कविताएँ हैं।

अलग-अलग रंग की हैं। मूड बदला है, तो नयापन है तो उतनी ताज़गी भी है। इससे पहले भी ललित ने अपना कविता संग्रह दिया था, तब हम कोपभवन में नहीं थे हिमालय की वादियों और चत्काल की पहाड़ियों का आनंद लेते थे। उस समय प्रेम था, उसी प्रेम से कविताये ओतप्रोत थीं। मेरे लिए प्रेम को समझना और लिखना बड़ा कठिन था। मैं उस प्रेम को समझ नहीं पा रहा था।

मुझे लगा इन कविताओं पर लिखना आसन नहीं, कठिन है मित्र की कविताओं पर लिखना अपने बारे में कहने और लिखने से कहीं अधिक कठिन है। मैंने बार-बार अपने भीतर झाँका एक कोने में दबा रूठा सा जैसे स्पंदन कर रहा था।

मुझे रूठना मानना नहीं आता, मैंने यह खेल कभी खेला नहीं फिर भी तब उस पर लिखा एजितना मैं अपने बुद्धि और विवेक से लिख सकता था, जिसमें भरपूर प्यार की अनुभूति का प्रकटीकरण नहीं हो सकता थाय क्योंकि मैंने जीवन में प्यार नहीं किया हुआ था, यदि किया होता, तो उसको शाम मिलकर अनुभव से लिख सकता था। यहाँ पर भी मुझ से चूक हो रही थी, मुझे उन कविताओं को समझने के लिए अनुभव के बजाय अनुभूति की जरूरत थी, जिसे मुझे बाहर से नहीं अपने भीतर से ही बाहर लाना था। तब यह अन्दर बाहर का खेल भी बड़ा विचित्र लगा था। आज इस संग्रह में बड़ी सहूलियत है, इसमें प्यार कम है, अनुभूति की उतनी दरकार भी नहीं है, जितनी अपने समय को पकड़ने की। समय को पकड़ना आसान नहीं, अब मुझे तो कोपभवन में प्रेम की प्रतीक्षा थी।

मैंने इस संग्रह की कविताओं को सिलसिलेवार उसी दृष्टि से पढ़ना आरम्भ किया। मुझे न मालूम क्यों लगा कि जहाँ मेरी कहानियाँ समाप्त होती है, वहां से ये कविताएँ आरम्भ होती हैं।

क्या मुझे ललित से इतने ही प्रेम की प्रतीक्षा थी दरअसल जहाँ ललित की कविताएँ ख़त्म होती हैं वहीं पर मेरी कहानियों को ख़त्म होना था परन्तु ऐसा संभव नहीं हुआ।

अब समझने लगा हूँ कि कहानी और कविता का अंत एक जैसा नहीं हो सकता या दोनों का अंतत हो भी सकता है या नहीं भले ही एक वर्ग मुंह बजाते थक नहीं रहा है, कविता का अंत हो रहा है और कहानी भी मैं जब कहानी लिख रहा होता हूँ एक तरह से कविता को गझिन बुन रहा होता हूँ और जब ललित कविता का सृजन कर रहे होते हैं, तो अपने समय और समाज के महीन तंतुओं को भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से रच रहे होते हैं।

हम दोनों जीवन की सभी सम्भावनाओं और सरोकारों को जी रहे होते हैं फिर भी ऐसा क्यों लगता है कि कविता का रचाव कहानी से भिन्न होता है, जबकि दोनों में अपना समय भी होता है और सच भी भिन्नता तो केवल रूपाकार में होता है।

श्रीमद भगवद गीता में जिसे श्रीकृष्ण आत्मा कहते हैं। जीवों की भौतिक अवस्था में भिन्नता है, जीवात्मा में नहीं, आत्मा एक है वह अज़र और अमर है और वह मैं हूँ मैं कविता हूँ और मैं ही कहानी हूँ।

मैं सूक्ष्म पदार्थ हूँ चेतना हूँ, मैं अदृश्य हूँ पर मैं हूँ और मैं कविता हूँ, कहानी हूँ, कविता और कहानी को लेकर अपने अंतर्द्वंद्व को समझने का प्रयास मुझे यह सन्दर्भ महत्वपूर्ण और प्रासंगिक लगा पर मैं कविता को समझ रहा हूँ यह कहना मेरे लिए बहुत कठिन है और समय सापेक्ष्य भी ललित की कविता 'वक्त' में एक ओर मानव के लघु जीवन की क्षण भंगुरता है तो दूसरी तरफ सीमित समय की गतिशीलता एवं अस्थिरता "कैसे दौड़ जाता है वक्त/चुटकी में रेत की मानिंद/अरे! कल की ही तो बात है/कितने सुनहरे दिन थे/कितने सहेजकर रख छोड़े थे/कैसे वे नजदीक आए और/झट से यों गए कि/कोई क्या बितायें/रंग अपनी कहते हैं और/समय अपनी/दोनों का रूप अलग/रंग अलग और चाल अलग इसी बात को गोस्वामी तुलसी दास कहते हैं "समय जात नहीं लागहिं बारा" समय जिस तीव्रता से भागता कविता भी उसी गति से भागती है एक तरह से समय को पकड़ना कविता का सृजन है।

कविता का कोई देस और समाज नहीं होता वह भौगोलिक सीमाओं में तो बांध कर रह नहीं सकती उसे किसी पासपोर्ट और वीजा की जरुरत नहीं पड़ती ण्वह उस आसमानी पाखी की तरह है, जिसके लिए जमीन से अधिक आसमान का महत्व होता है जिसमें बेरोक टोक अपने पंख फैलाती है और निर्बाध गति से बुलंदियों को छू जाती है।

जब मैं यह सब सोचता हूं तो कविता अकविता का द्वंद्व मुझे चिढाने लगता है। इस द्वंद्व ने मुझे मुग्ध नहीं विचलित जरुर किया है मुझे कैद में न इन्सान का रहना पसंद है और न कविता का इनमें एक आत्मा बसती है जो प्रकृति से ही मुक्त रहती है।

कुछ रचनाकारों को लगता है जो हम लिख रहे हैं वह कविता है जब वह कहते हैं और लिखते हैं तो उसमें ठसक होती है कि कलम चलाई तो समृद्ध हो गए, अमूमन यह सोच प्रारंभ में होती है जब हम जीवन को समझ रहे होते हैं या समझाना होता है।

एक तरह से परोक्ष रूप में कविता को समझाना होता है, जब कविता को होना होता है तब कोई भी दिन/कैसा भी दिन/यूँ आता है और सर्र निकल जाता है/जैसे समंदर की हवा ने/गलों को हौले से स्पर्श किया हो। 'दिन तो दिन है 'कविता की ये पंक्तियाँ हलकी फुलकी नहीं हैं जो हवा के साथ उड़ जाएँ।

ये परिपक्कव हैं इनमें न हलकापन है, न बचपना और न ही बचकानापन, पूर्ण रूप से परिपक्कवता की आंच में पक्की हुए हैं। इसमें कविता के प्रति विश्वास है दंभ नहीं है "कसम से/झूठ कभी बोला नहीं/एसा ही हूँ/न बातें आती हैं बनानी/और न जलेबियाँ।"

कविता में यह सहजता नहीं उनका खरापन है यह विशेषता

ललित की एक और महत्वपूर्ण कविता "खोखले लोग" में समझ आती है जब वह रचते हैं "समझ लो/ये आखिरी चेप्टर है दोस्त/फिर से इसमें एडमिशन नहीं मिलेगा/जानते हो न/कैसे मुस्कराते हो/भोले मानुष को पागल बनाते हो/बहुरूपिए समाज में/आजकल" ललित को जो कहना है उसे कह देते हैं जिसमें न भय है और न भयाक्रांत करने की मंशाव्यवस्था पर प्रहार करते हैं तो हमारी कमजोरियां भी गिना देते हैं "एक बात समझ नहीं आती /जहाँ अस्पताल रहता है/वहां बोर्ड भी रंगा है/उस पर लिखा है नो हौन्किंग/फिर भी हार्न बज रहा है/फिर भी कुत्ते भौंक रहे हैं/लेकिन काटने की खबरें कम आतीं हैं।

"कुत्ता" कविता की ये पंक्तियाँ हमारी कथनी और करनी को बड़ी खूबसूरती से सामने रखती हैं। यह कविता हमारे समय की है इसमें कोई और नहीं हम हैं। हमारा समाज है और हमारे द्वारा तैयार की गयी व्यवस्थाएं हैं। जिनमें प्रेम है, लाड है, दुःख-सुख है, वह सब ऊँचाई और नीचाई है के बहुत बड़े-बड़े प्रश्न हैं, जिन्हें अनुतरित रहने को अभिशापित किया हैं। "ये समय का चक्र है/जो कभी न थमा है/न थमेगा।"

समय भाग रहा है 'समय का चक्र' भाग रहा है। यह कविता सहजता से कह जाती है "अभी आप चक्र में हैं/उसको समझिए /अंदाज लगाइए/और ताज़ी हवा से रूबरू हो जाइए/अभी जरुरी है /प्रदूषित समाज में लगने लगा है/कि हर दूसरी इकाई प्रदूषित है/इसमें फेक्टरी के साथ/मनुष्य भी शामिल है और पशुओं का जखीरा भी समय को दर्ज करती एक और कविता 'मौसम' है, जिसमें कहते हैं, "वक्त से पहले और भाग्य से अधिक/किसी को कभी मिला है! एक बार समझाते हैं/दूसरी बार भी/जब तक बच्चे समझते हैं/या समझाना चाहते हैं/तब तक मुर्गी हलाल हो चुकी है यानि हम हाथ मलते रह जाते हैं।

अंत में एक और कविता 'दुआ' को देखें कवि आंखिर कैसी दुनिया चाहता है "मैंने कभी इत्ती बड़ी दुनिया को चाहा ही नहीं (कवि के मन में संतोष का भाव है)/दुनिया उत्ती हो/जिनसे निभा सकें/बस/तुम हो/मैं हूँ/इत्ती सी कवि मनाता है की हमें ऐसा पशुविक समाज नहीं चाहिए, उसके विशाल जखीरे की जरुरत नहीं हैण्मुझे तो ऐसा समाज चाहिए जिसमें खुशहाली और लेकर आयेंगे /पशु-पक्षियों की टोलियाँ/ताकि हमारे नन्हे देख सकें/कि अभी भी किस्से न/कहानियां ख़त्म हुई हैं/और न फुदकती कूदती/चिड़ियों की बस्ती" मैं पूरे मनोयोग से इन इक्यावन कविताओं को पढ़ गया।

इन कविताओं पर अधिकारिक रूप से कहने में असमर्थ होने के बावजूद थोडा सा कहने का साहस जुटा भी लिया। इन कवितों में कवि लालित्य ललित ने अपने समय को पकड़ने, समझने और समझाने का प्रयास किया है। उम्मीद है पाठकों के बीच भी ये कविताएँ सराही जाएँगी।

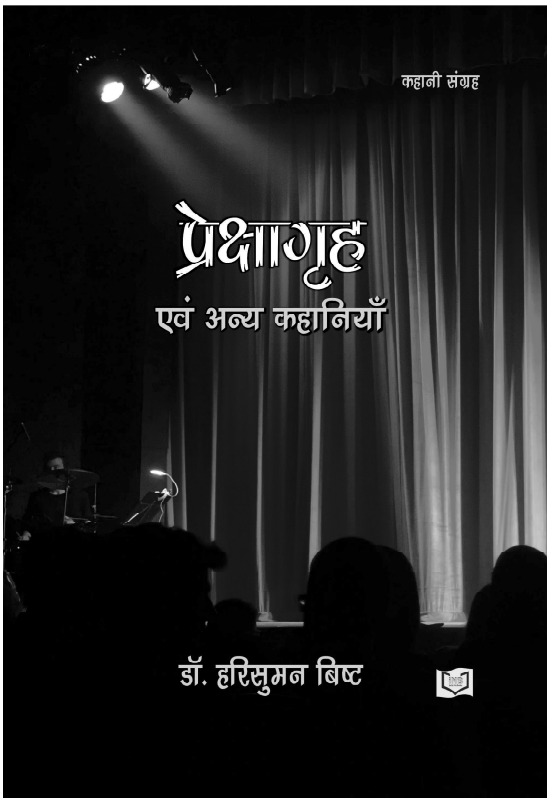

आकर्षित करता है ललित का काव्य-लोक

गिरीश पंकज

लालित्य ललित की हिंदी कविताओं का मैं नियमित पाठक हूँ। फेसबुक पर उनकी कवितायें तो अभी नज़र आ रही है, लेकिन फेसबुक की दुनिया से पहले भी ललित की कवितायें पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपना लालित्य दिखती रही हैं, जो लोग ललित की कविताओं को ध्यान से पढ़ते रहे हैं, वे मेरी इस बात से सहमत होंगे कि ललित की कविताओं में ऐसा ललित बोध है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता, इनकी कविताएँ संवाद करती है, जीवंत होकर बोलती बतियातीं हैं।

इन कविताओं का विन्यास बोझिल नहीं, 'इजी' है, सहज है, अतुकांत होने के बावजूद ये कविताएँ बेतुकी नहीं, बिलकुल तुक में लगती हैं। ललित की कविताओं पर किसी कवि की कोई छाप नहीं है, वे विशुद्ध रूप से मौलिक है और अपनी बनाई लीक पर चलती है। कविता के सामाजिक सरोकार है ललित की कविताएँ लिखने के लिए ही नहीं लिखी गयी, इनमें प्रतिबद्धता है। परिवर्तनकामी सोच है इसीलिये ललित की कवितायें जन मन के ज्यादा निकट है।

इधर की अनेक हिंदी कवितायें चमत्कार के नाम पर इतनी कलावादी होकर रह गयी है कि उनका पाठ दुरूह सा लगने लगता है, कविता कविता नहीं, गद्य का एक टुकड़ा भर लगती है इन कविताओं में विचारों की उलझी सघनता कविता को अलोकप्रिय बना देती है, मगर लालित्य की कविता में ऐसे कोई दुरूहता नहीं हैं, उसका पाठ सम्प्रेषणीयता के निकष पर खरा साबित होता है, हर पंक्ति पाठक के ज़ेहन में प्रवेश करती है।

सही कविता की पहचान ही यही है कि वह समझ में आ जाये, बेशक सपाट बयानी कविता नहीं हो सकती, लेकिन सच तो यही है कि सपाट बयानी के आलावा कोई रास्ता भी नहीं हैं ललित की कविताओं में सपाट बयानी के साथ कविता की कलात्मक संरचना भी है, यही कारण है कि ललित का काव्य-लोक आकर्षित करता है, उसका भावलोक दिल को छूता है। ऐसा इसलिए भी है कि लालित्य ललित में व्यंग्य विनोद बोध भी है। वे गम्भीर विमर्श भी परिहास के सहारे कर लेते हैं। तीखा व्यंग्य भी जैसे यहे कवितांश देखे कच्ची शराब की पार्टी/गंदे तेल में अधपका मुर्गा बिरयानी/और जी भर गाली-गलोच/बस बिंदास/अब कोई नेता कुछ भी करे/ कोई परवाह नहीं/गरीब के वोट की कीमत/गाँधी जी वाला एक हजारी नोट/कोई भी पार्टी आये खिलाये पिलाये। और नोट दे जाए/अपनी दिहाड़ी पक्की/हिच्च हिच्च/ज्यादा तो नहीं चढ़ी सुभाष भाई/बहुत पिला देते हो/कसम से/सच्ची बात कहता हूँ/हिच्च-हिच्च' ऐसी अनेक कवितायें है जो सच कहती हैं। कविता वही बड़ी होती है, जो सच के सहारे खड़ी होती है। ऐसी कविता टिकाऊ भी होती हैं। ललित का कविता संसार टिकाऊ कविताओं का संसार है। यहाँ शब्दों का बौद्धिक खिलवाड़ नहीं है वरन शब्दों का सहज संप्रेषण है। मुझे पूरा विशवास है कि ललित का यह संग्रह भी पसंद किया जायेगा और ऐसी कविताओं से जुड़ कर पाठक नई कविताओं से भी अपना जुड़ाव महसूस कर सकेंगे।

—गिरीश पंकज

इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशित
गिरीश पंकज की दो महत्वपूर्ण कृतियाँ

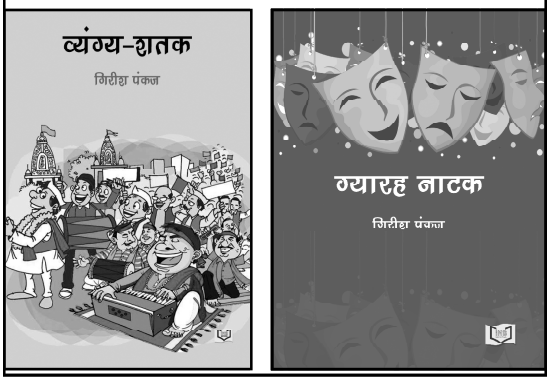

अलग तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न करती कविताएँ

पंकज सुबीर

लालित्य ललित बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं, वे व्यंग्य लिखते हैं, वे कविताएँ लिखते हैं और कभी-कभी उनके निबंध भी पढ़ने में आते हैं। इन दिनों जब व्यंग्य विधा में प्रतिभावान लेखकों की कमी महसूस की जा रही है तब लालित्य ललित लगातार लिखकर अपनी सार्थक और प्रभावी उपस्थिति व्यंग्य में दर्ज करवाते रहते हैं। व्यंग्य और कविता ये लगभग दो विपरीत विधाएँ हैं, जिनके शिल्प में, जिनकी भाषा में जिनके गठन में बहुत भिन्नता पाई जाती है।

ऐसे में कविता और व्यंग्य दोनों पर समान अधिकार से काम करना, यह ज़रा मुश्किल होता है। लेकिन लालित्य ललित ने न केवल व्यंग्य में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करवाई है बल्कि उनकी कविताओं को भी पाठकों ने समीक्षकों ने खूब सराहा है। एक और प्रमुख बात ये है कि लालित्य ललित की कविताएँ उनके व्यंग्य लेखों के अंदर भी पाई जाती हैं। उनके व्यंग्य में अक्सर अचानक उनकी कविताओं का भी प्रवेश हो जाता है और वे कविताएँ व्यंग्य के गद्य के साथ अपने आपको एकाकार करते हुए चलती हैं।

इस प्रकार एक विधा से दूसरी विधा में अपने आप को बहुत आसानी के साथ शिफ़्ट कर लेना किसी भी रचनाकार के लिए थोड़ा मुश्किल होता है लेकिन लालित्य ललित जिस कुशलता से नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले का लेखक मंच संभालते हैं उसी कुशलता के साथ वे यह काम भी कर लेते हैं। मैंने नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले का ज़िक्र इसलिए किया क्योंकि जिस लेखक मंच को लालित्य ललित संभालते हैं, वह उन्हीं के बूते की बात है।

लेखक मंच के जो गिनती के कुछ चुनिंदा स्लॉट्स होते हैं उनके लिए बहुत मारामारी होती है और निश्चित रूप से जिनको स्लॉट्स नहीं मिलते हैं उनकी नाराज़गी और उनकी जो भी कड़वाहट होगी वो नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के आयोजकों के प्रति नहीं होगी बल्कि लालित्य ललित के प्रति ही होगी। और उस पर यह भी कि हरेक कार्यक्रम समयबद्ध तरीक़े से पूरा हो जाएए वो दुष्कर काम है जो लालित्य ललित बहुत कुशलता से करते रहते हैं। इसीलिए मैंने कहा कि व्यंग्य विधा से कविता के बीच और कविता से वापस व्यंग्य के बीच की ये जो आवाजाही है यह लालित्य ललित ही कर सकते हैं।

लालित्य ललित की कविताएँ मैंने पढ़ी हैंए इन कविताओं में भी व्यंग्य है। जिस तरह से उनकी उनके व्यंग्य लेखों में कविताएँ है उसी तरह से उनकी कविताओं में व्यंग्य है। जैसे कविता है ष्लेखक की ज़िंदगी और उसका टशनष् इसमें उन्होंने लेखकों की तुलना सब्ज़ी मंडी में रखी हुई सब्ज़ियों से की है और सब्ज़ियों के बहाने लेखकों के संसार के अंदर घुसकर पड़ताल की है।

न केवल लेखकों की बल्कि आलोचकों की, समीक्षकों की और यह पड़ताल बहुत जमकर की गई है, यहाँ किसी को क्षमा करने का अंदाज़ आपको देखने को नहीं मिलेगा। यहाँ हिंदी सेवा की बात है, यहाँ सम्मानों की बात है, यहाँ हवाई यात्राओं की बात है और यहाँ अख़बारों की बात है।

उन सब के बहाने लेखकों की पूरी दुनिया की एक तरह से झाँकी हमारे सामने लालित्य ललित प्रस्तुत कर देते हैं। या जैसे हम उनकी एक और कविता की बात करें "खाँसते पिताजी" की बात ये घरों में असहज महसूस कर रहे वृद्धजनों की कहानी है और उसके बहाने ललित जी ने हमारे समाज और हमारे समय का एक बहुत अच्छा खाका हमारे सामने खींचा है।

खाँसते हुए पिताजी द्वारा टीवी का वॉल्यूम बढ़ा देना और बहु द्वारा वॉल्यूम को घटा देना, इस अंतर्द्वंद के बहाने उन्होंने बहुत सारे दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं। अगर हम "शब्दों से खेलते शब्द शिल्पी की बात करें" तो उसमें एक लेखक के अंदर जो लेखकीय प्रक्रिया चलती है उसको बहुत अच्छे से दिखाया गया है। एक और कविता है "ये कैसा

ज़माना है" इस कविता में जो समय चल रहा है उसके बारे में एक बुज़ुर्ग के माध्यम से बहुत अच्छे से लालित्य ललित ने बात की है। आने वाले समय का भी एक बहुत भयावह दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जैसे कोई चलचित्र सा हमारे सामने चल रहा हो। लालित्य ललित की कविता ज़िंदगी नाटक नहीं दोस्त इसमें दर्शनशास्त्र और कविता का बहुत अच्छा तालमेल देखने को मिलता है, हर हाल में खुश बने रहने की बात यहाँ की जाती है। ये शायद ललित जी के अपने मन की बात है।

ऐसे ही एक छोटी सी कविता है "जुड़ना" इस कविता में जुड़ाव को लेकर बहुत अच्छी बात की गई है किसी एक से जुड़िए वह आपको दो और से जोड़ देगा, जो मज़ा जुड़ने में है वह कटने में नहीं, इसलिए मैं जुड़ा हूँ तुमसे। बहुत अच्छी कविता है। हमारे समय का एक और बड़ा संकट है टेलीविज़न और टेलिविज़न पर दिखाए जा रहे समाचार, लालित्य ललित ने "टेलिविज़न कहता है" कविता में इसकी भी ख़बर ली है और बताने की कोशिश की है कि अगर स्वस्थ रहना है तो टेलिविज़न पर आपको क्या देखना है और क्या नहीं देखना है। जैसे एक और कविता है उनकी "तुम्हें", इस कविता में प्रेम है लेकिन प्रेम नए तरीक़े से दिखाई देता है, यह प्रेम उस तरह का प्रेम नहीं है, जो इन दिनों होता है, लेकिन ये प्रेम एक दूसरे के साथ बाँटने का प्रेम है तुम ही मेरा स्नेह, मेरी धड़कनें, मेरा प्रेम, मेरा लेखन, मुबारक मेरी तमाम चुप्पियाँ, मेरा सारा एकांत, मेरा स्नेहिल स्पंदन,। इसी प्रकार की एक कविता है "खुशियों भरी चिट्ठी" ये कविता दो समयों की पड़ताल करती है, एक वो समय जब चिट्ठी पत्री से सारा काम किया जाता था और एक ये समय है जब इंटरनेट के माध्यम से सोशल मीडिया के माध्यम से ही संवाद किए जाते हैं।

दोनों की गति में अंतर है, दोनों की प्रकृति में अंतर है और इसी का ज़िक्र इस कविता में किया गया है। एक और कविता है इलास्टिक से लोग इस कविता में लोगों की तुलना बहुत सुंदर तरीके से इलास्टिक से की गई है। इलास्टिक खींच जाती है, ढीली हो जाती है, एडजस्ट हो जाती है, उससे लोगों की जो लोगों की तुलना की गई है वो बहुत अच्छे से की गई है। दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए कविता आगे बढ़ती है। कविता "तुम्हारे बिना" इस कविता में नए ज़माने का प्रेम है, नए ज़माने का प्रेम मतलब बहुत स्पष्ट रूप से अपने आपके बारे में बताने वाला प्रेम। लालित्य ललित की कविताओं में गंभीर बात करते-करते अचानक एक खिलंदड़ापन भी सामने आ जाता है और वो इस खिलंदड़ेपन के साथ अपनी कविताओं में नज़र आते हैं। जैसे कविता है "उनकी शपथ" इस कविता में वे शुरुआत में गंभीर बात करते-करते और फिर अचानक यू-टर्न लेकर और उन सब चीज़ों पर मिट्टी डालते हुए हँसते हुए आगे बढ़ जाते हैं।

जैसे उनकी कविता है "सड़क" रये कविता बहुत सारे बिंबों को लेकर आगे बढ़ती है। ये सड़क बनाने वाले ठेकेदार की भी बात करती है, उस बुज़ुर्ग की भी बात करती है जो कि उस सड़क पर चल रहा है, और उस ड्राइवर की भी बात करती है जो उस सड़क पर गाड़ी चला रहा है।

लालित्य ललित अपने आस-पास जो कुछ चल रहा है उस पर अपनी नज़र रखते हैं। और इस पैनी दृष्टि के ही कारण यह होता है कि हमें "चुगलाता मोहल्ला", कुछ होते हैं खोखे और कुछ होते हैं खोखले, (तुमने सीखा ही क्या" और "दीवाली के दीये" जैसी कविताएँ पढ़ने को मिलती हैं। इन कविताओं में बहुत सूक्ष्म ऑब्ज़र्वेशन दिखाई देता है। हर रचनाकार को बहुत अच्छा आब्ज़र्वर भी होना चाहिए। जो कुछ देखेगा वही तो लिखेगा।

जितना सूक्ष्म देखेगा उतना ही सूक्ष्म रचेगा। जितना सूक्ष्म रचेगा, रचना उतनी ही मुकम्मल होगी। जीवन हमारे चारों तरफ़ बिखरा होता है और हमें रचनाओं के लिए विषय देता रहता है। यदि हम ठीक प्रकार से देख सकें तो। लालित्य ललित के पास वह ऑब्ज़र्वेशन है जो उनको जीवन से और लोक से जोड़ता रहता है। लालित्य ललित प्रेम को लेकर भी जब कविताएँ रचते हैं तो वो कविताएँ भी अलग ही तरह की होती हैं। ये कविताएँ घिसी-पिटी प्रेम कविताएँ नहीं होती हैं। इनमें बिलकुल नए तरह के बिम्ब होते हैं। "उसके होने का मतलब", "उसके शब्द गूँजते हैं", "प्रेम के मायने", "एक उम्र के बाद", "तुम और केवल तुम", "किसी

एप्लीकेशन की तरह तुम" ये कविताएँ हैं तो प्रेम की ही कविताएँ लेकिन इनका शिल्प और भाव बिलकुल अलग हैं। इन कविताओं में प्रेम की अभिव्यक्ति बहुत अलग तरीके से की जाती है। यह प्रेम बहुत गहरे तक उतर कर आनंद देता है। लालित्य ललित की कविताओं में प्रेम से लेकर जीवन तब सबको देखने का अपना ही नज़रिया है। यह नज़रिया उनका अपना ही है। वे पहले से तय किए गए किसी चश्मे से चीज़ों को नहीं देखते हैं। वे देखने के लिए अपनी दृष्टि का उपयोग करते हैं, इसीलिए उनका नज़रिया अलग होता है।

इन दिनों जब सोशल मीडिया पर कवियों की भारी भीड़ दिखाई दे रही है, ऐसे में यूँ लग रहा है मानो कवियों कि इस भीड़ के पीछे कविता कहीं छिप गई है। इन दिनों कवि बहुत हैं लेकिन कविता बहुत कम है। कविता के इस कठिन समय में प्रचार-प्रसार से दूर बैठे किसी कवि की अच्छी कविताएँ पढ़ने को मिल जाएँ, तो मन को तसल्ली होती है कि कविता के बहुत बुरे दिन नहीं हैं। कविता को लोक की आवाज़ कहा गया है, जो जन-जन की पीड़ा को अपना स्वर प्रदान करती है। कहा जाता है कि कविता और कवि हमेशा विपक्ष की भूमिका में होते हैं, वो हमेशा जनता के पक्ष में खड़े रहते हैं। जो कविता वंचित और शोषित वर्ग की पीड़ा में सहभागिता नहीं करती है, उस शोषण के खिलाफश आवाज़ नहीं उठाती है, उसे शब्दों का संयोजन तो कहा जा सकता है लेकिन कविता नहीं कहा जा सकता। लालित्य ललित की कविताओं में यह चिंता दिखाई देती है कि समय के कुचक्र के सामने इन्सान कितना हताश होकर खड़ा हुआ है। लालित्य ललित "दीवाली के दीये" जैसी कविताओं में उसी शोषित और पीड़ित की बात करते हैं। वे उस ग़रीब बच्चे की बात करते हैं, जो दीवाली पर अपने माता-पिता की ही तरह ख़ामोश बैठा है। वे बुज़र्ग जिनको परेशानी हो रही है, उनकी बातें कविता में की जाती हैं। या फिर "सौंपना" जैसी प्रेम कविताएँ जिसमें वे नए बिम्बों का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। कब का मैं मैं रहा, तुम्हारा हुआ, कब का, अपना कुछ भी नहीं, देखो नए शब्द मेरे, वह भी शाब्दिक हुए, तुम्हारी व्याख्या करने में, अपने पास कुछ भी नहीं, न अर्थ, न आर्थिक व्यवस्था, केवल धरती अपनी, और उसका सुख भी, तुम्हें खुद को सौंप कर, मैं अर्थवान हुआ।

ललित ललित कि यह कविताएँ बहुत अलग अलग तरह की कविताएँ हैं, हर एक कविता एक नए विषय को लेकर सामने आती है और नए तरीक़े से अपनी बात कहती है। कुल मिलाकर ये कविताएँ एक पूरा संसार हमारे सामने रचती हैं। यह संसार कुछ देखा हुआ है और कुछ बिलकुल अनदेखा है। अनदेखा इसलिए क्योंकि यह लेखक द्वारा देखा हुआ और अनुभूत किया हुआ संसार है। इस संसार में जो कुछ रचा गया है वो लेखक द्वारा ही रचा गया है। लालित्य ललित की ये कविताएँ इसीलिए बहुत अलग तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न करती हैं। किसी भी कवि द्वारा लिखी गई एक-एक कविता उसका एक बयान होता है कि उसने अपने समय में क्या देखा। यह बयान जितना सुस्पष्ट होता है, कविता की धार उतनी ही तेज़ होती है। जब प्रतिरोध की बात करनी हो तो आवाज़ में वह गर्जन हो, जो आवश्यक है और जब प्रेम की बात करनी हो तो स्वर में मृदुलता हो। यह संतुलन साधने का नाम ही शायद कविता है। ठीक प्रकार से सुर लगाया जाना कविता की सबसे आवश्यक शर्त है। लालित्य ललित की ये कविताएँ इसी ठीक सुर की कविताएँ हैं, ये न तो अनावश्यक रूप से लाउड होती हैं और न बहुत फुसफुसा के बात करती हैं। इसीलिए ये कविताएँ धीरे-धीरे पढ़ने वाले के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं। जो रचना पाठक के साथ जुड़ जाए बस वही असल रचना होती है। लालित्य ललित की यह कविताएँ जुड़ाव की कविताएँ हैं।

—पंकज सुबीर

कैसे कोई आपकी आदत में शामिल हो जाता है।
पता ही नहीं चलता
जो भी कराता है वह वक्त है
सबका खुदा...
बहुत ही खूबसूरत अभिव्यक्ति।

—पारुल तोमर

बोलती बतियाती कविताएँ

रामस्वरूप दीक्षित

मौजूदा समय में जब छांदिक रचनाएँ जीवन का छंद पकड़ने में असफल हो रही हैं और समकालीन कविता अपने कहन की एकरसता, दुर्बोधता व बौद्धिकता के भार के कारण पठनीयता का गुण लगभग खो चुकी हैं ऐसे में लालित्य ललित की सहज, बोधगम्य व अपने शिल्प में लगभग अनगढ़ सी दिखने वाली कविताएँ पाठकों को आकर्षित कर रही हैं। अगर कृतित्व को व्यक्तित्व का आईना माना जाए तो मेरी इक्यावन कविताएँ संग्रह की कविताएँ अपने रचयिता के सहज, सरल, सौम्य व निर्विकार व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। ललित कैरियरिस्ट नहीं हैं। उन्होंने कविता को अपने कैरियर बनाने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जैसा कि बहुतों ने किया या कर रहे हैं। कविता उनके लिए अपने मन की बात को सबके मन की बात बनाकर कहने का एक रचनात्मक जरिया है।

उनकी कविताएँ शब्दों के प्रवाह में बहती, उछलती कूदती, उठती-गिरती सीं एक अजीब सी अल्हड़ता व फकीराना अंदाज लिए हुए पाठकों से आत्मीय संवाद करती हैं। कभी पाठक के गले में हाथ डाले, कभी उसकी पीठ पर धौल जमातीं, कभी उसका हाथ अपने हाथ में लेकर चल पड़ती हैं उसे अपने साथ लेकर और बोलते बतियाते अपना सफर तय करती हैं। वे न तो पाठक को बीच में उबासी लेने देती हैं, न सर पकड़कर सोचने को मजबूर करती हैं। वे उससे कुछ इस अंदाज व अदा में संवाद करती हैं कि उसे लगता है कि अरे यह तो उसी की बात उसी से की जा रही है। वह बिना ऊबे बिना थके उनके साथ चलता रहता है।

ललित की कविता शाब्दिक क्रीड़ा का उत्सव न होकर जीवन का त्यौहार है। मनुष्य जीवन से जुड़ी प्रायः सभी तरह की घटनाएँ व भावनात्मक आवेग वे अपनी कविताओं में बड़ी बारीकी से उकेरते हैं।

वे एक सजग, सचेत वा सावधान कवि हैं। वे अपने दुनियावी कामों पर निकलते समय भी अपने कवि को अपने साथ लेकर चलते हैं और यह कवि चलते-चलते एकदम ठिठक जाता है इन आँखों को/देखता हूँ/देखता ही रह जाता हूं/ठिठकने का मन करता है/मन की बात मान लेता हूँ /मुझे ठिठकना अच्छा लगता है/बड़ी-बड़ी आँखों को भी लगता होगा/लोग रुकें/रुककर चलें? बिना ठिठके, बिना रुके, बिना रुक कर देखे पाठक के जेहन में उतरने वाली रचनाएँ नहीं लिखी जा सकतीं।

मौसम की हवाओं जैसे जारी प्रेम को, खुशियों को करीब से देखने, पहाड़ों को देखकर किसी की यादों में खो जाने, कोरोना काल में प्रेमालाप करते व अपने एकांत को साझा करते प्रेमी युगल को देखने, इश्क की घड़ी के साथ टिक टिक करती हसरतों को महसूस करने के लिये पल दो पल कहीं न कहीं ठिठकना तो पड़ेगा। जहाँ आज वक्त की कमी से जूझते और अपनी ओढ़ी गईं प्रतिबद्धताओं के चलते दूसरे कवि अपने समय में घटित हो रहे इन दैहिक, दैविक और भौतिक संचरण को अदेखा कर अपने विचारों को ही ढोते रहते हैं, वहीं ललित यहाँ ठिठककर इन्हें शब्दबद्ध कर लेते हैं और यही बात उन्हें अपने समय के दूसरे कवियों से अलग खड़ा कर देती है।

बड़ी-बड़ी आँखों के बीच से गुजरना शीर्षक की प्रारंभिक पंक्तियाँ उसे किसी भावुक प्रेम कविता का सा आभास कराती हैं, मगर आगे चलकर यह कविता आँखों के रास्ते धीरे-धीरे मनुष्यों की उस दुनिया में जा पहुंचती है, जिसे लोगों ने रहने लायक न छोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यहाँ उम्मीदों से भरा कवि कहता है दुनिया इतनी बुरी नहीं /जितना बुरा लोगों ने समझ लिया है/देखो न/बगिया में कितने पुष्प हैं/कितनी खुशबू है/महसूस करो न/लगेगा कि एक बहुत ही सुंदर दुनिया/आपके इर्द-गिर्द ही है।

आज जबकि दुनिया को उम्मीद की नजर से देखने का

यह माद्दा दिनोंदिन छीजता जा रहा है, उन विकट दिनों में यह उम्मीद भरी कविता पाठक के भीतर दुनिया को देखने, समझने व महसूस करने की एक सकारात्मक दृष्टि विकसित करती है, जो कि किसी भी कविता का पहला और अंतिम ध्येय है। बता देना ठीक है, लाइव हो रहा हूँ, दौड़ते भागते लोगों का नजरिया, वक्त रहते बदल लीजिएगा, सच को देखने का चश्मा घर बंद है, शुक्रिया, सॉरी हम बचा नहीं सके, नियति, नींद, उसको लगता है, बदलती नहीं आदतें, एक अलग तरह की जिंदगी, लगता है जीना ही होगा, एक बात कहनी है, वह उसको कुछ नहीं कहती, महिलाओं को सब याद रहता है, ये बारिशें और यादों का सिलसिला, कल ढाबे वाले ने पूछा, वर्कशॉप वाले तेजी में हैं, मेहंदी वाले को इंतजार है आदि कविताओं में कवि जीवन के तमाम अछूते पहलुओं पर बहुत संजीदगी के साथ अपनी बात रखते हुए अपने समय से संवाद करता जान पड़ता है।

कोरोना काल में तरह-तरह की विभीषिकाओं से जूझते वंचित वर्ग की चिंताओं को ललित जी ने बहुत मार्मिक ढंग से पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। 'खट्टी इमली की कसम' खाकर जब कवि कहता है कि देखना तुम्हारे भीतर भी/सैकड़ों मछलियाँ कल्लेल करने लगेंगीं, तो प्रेम को व्यक्त करने का उसका यह शिल्प चमत्कृत करता है। शब्दों के प्रति कवि का व्यवहार देख ताज्जुब होता है।

वह कहता है शब्द मुझे बाहों में भर लो /अचानक से बहुत सारे शब्द/पुस्तकों से निकल निकलकर /मचलने लगे/बाहों में भर लिया। वे मेरी भाषा समझते हैं /मैं उनका हाल। कवि इस बात को लेकर चिंतित है कि इन दिनों/कोई भी आदमी/जरूरत से ज्यादा खुल गया है/और इसलिए भी कि अब उसको चुप कराना मुश्किल है।

वह चाहता है कि बुजुर्ग से कोई सच बोलना सीख सीख ले। कवि की ऐसी ही सहज चिंता, उसे एक बड़ा कवि बनाती हैं। सावधानी भरे समय में सोचकर चलने की हिदायत देता कवि जब कहता है कि माँ भी तो बहती है /घर की परिधि में/बच्चों के साथ/बाजार में/पार्क में/किचैन में/शादी की तैयारियों में/बहू के आगमन में, तो माँ के इस बहाव के साथ हम भी अपने को बहता हुआ महसूस करते हैं। कविता के अंत में जब यही बहती हुई माँ कोरोना ग्रस्त होकर काल के गाल में समा जाती है, तब अकेले रह गए पति की अंतर्वेदना के चित्रण में यह बेहद मर्मस्पशी हो जाती है। इस कोरोना काल में यद्यपि "प्रेम में भी इन दिनों डिस्टेंसिंग जरूरी है" पर कवि को विश्वास है कि यह वक्त भी एक दिन चला जाएगा। "शब्दों से बाहर आने की कवायद" करता कवि आह्वान करता है कि "जीना ही होगा" उसका दिन ऐसे ही निकल जाता है, कुछ खट्टी कुछ मिट्ठी बातों के सफर में।

कोरोना को लेकर सोचता और हैरान होता वह कहना चाहता है कि हर बात आसान नहीं होती। बादलों की गड़गड़ाहट जारी रहते जब वह कहता है कि जनाब हम बेहद स्वार्थी होने के साथ ही बहुत बहानेबाज भी हैं। तब उसके सामाजिक सरोकार साफ समझ आते हैं। जीवन के विविध रंग और गंध अपने में समेटे इस संग्रह की कविताएँ अपने पढ़ने वालों से बेहद अपनेपन व भरोसे के साथ बोलती बतियाती उन्हें अपने साथ आत्मीयता से जोड़े रखती हैं। कवि को लगता है, और इन कविताओं के भीतर से गुजरते हुए मुझे भी बार-बार लगा कि "लौटना ही होगा हमें एक बार फिर अपने वजूद में।" अपने वजूद में लौट कर ही कोरोना काल के इस आतातई समय से पार पाया जा सकता है। समय की शिला पर खुद को पूरी शिद्दत के साथ दर्ज करती इस संग्रह की कविताएँ जहाँ हमें मनुष्य के भीतर दिनोंदिन चुकती जा रही संवेदना को देख विचलित करती हैं, वहीं दुनिया के बगीचे में खिल रहे फूलों को देख एक आश्वस्ति भी देती हैं। मेरे विचार से कविता का नया मुहावरा गढ़तीं ये कविताएँ उसी इत्मीनान, उसी सहजता और उसी अंदाज में पढ़ी जानी चाहिए, जिस सहज धैर्य और अनूठे अंदाज में इन्हें लिखा गया है।

—रामस्वरूप दीक्षित

बहुत कुछ बाकी है अनकहा

डॉ. नीरज दइया

व्यंग्य, कविता और संपादन के क्षेत्र में डॉ. लालित्य ललित निरंतर आगे बढ़ रहे हैं। उनकी यह विशेषता है कि एक पहचान बन जाने के बाद भी वे निरंतर सक्रिय है। कहना होगा कि साहित्य का जुनून उनके सिर पर सवार है।

रोज बहुत कुछ लिखना और पढ़ना उनकी दिनचर्या में शुमार है। नियमित कॉलम लिखना कोई सरल काम नहीं है, जिसे वे लंबे अरसे से बखूबी लिख रहे हैं। व्यंग्य और कविता की उनको लत लग गई है। जैसे किसी दौड़ में कोई सबसे आगे निकल जाने को दौड़ता है, वैसे ही उनका किताबों का सिलसिला हो रहा है। इसी जुनून में वे अब तक अनेक कीर्तिमान बना चुके हैं, और अनेक बनाने वाले हैं।

यह अचंभित और हर्षित करने वाली बात है कि वे अपनी सभी जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभाते हुए, साहित्य में इतनी सक्रियता से इस बार एक साथ 25 कविता-संग्रह पाठकों को दे रहे हैं।

किसी भी रचना के साथ आलोचना का भाव पहले पहल स्वयं लेखक कवि के मन में रहता है, जिसके चलते वह रचना को सँवारता है और नए आयाम छूने का प्रयास करता रहता है। यहाँ यह भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि कवि लालित्य की कविताओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय समकालीनता और कोरोना काल है।

वे अपने वर्तमान को जिस ढंग से देखते समझते हुए कविता की निर्मिति करते हैं, उसमें सरलता, सहजता और संवादप्रियता व्यापक तौर पर स्थाई भाव के रूप में है। वे जिस अनुभव और जीवन को अपनी कविताओं के माध्यम से साझा करते हैं, उनका सीधा सरोकार हमारे जीवन से है। जीवन स्वयं में एक कविता है। जीवन कविता की एक बड़ी किताब है, जिसे कवि अपनी कविताओं में अंश-दर-अंश प्रस्तुत करता रहा है। यह संग्रह भी उसी समेकित जीवन की झलक है, जो कवि के चारों तरफ फैली सकारात्मकता और नकारात्मक के साथ वह पाता है और उसे अपने ढंग से देखता परखा है।

यह भी सच है कि उनका अपना एक विशाल पाठक समुदाय है। डॉ. लालित्य को चाहने और पढ़ने वालों का बड़ा वर्ग है और इसी में कुछ ऐसे भी हैं जो कहीं किसी कोने से नकारने का भाव भी रखते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बिना पढ़े भी नकार सकते हैं, कारण इतना लिखा है और अधिक लिखना उनकी नजर में अच्छा नहीं होता है। यह आवश्यकता से अधिक सावधानी पूर्वाग्रह का रूप ले लेती है तो रचना के मूल्यांकन की बात छूट जाती है।

जो व्यक्तिगत रूप से कवि लालित्य को जानते है और उनके द्वारा कविता पाठ का आनंद ले चुके हैं, वे इस बात पर सहमत होंगे कि कविता में आए तमाम ब्यौरे और विवरण ऐसे होते हैं कि उन्हें यदि स्वयं कवि के श्रीमुख से पाठ सुना जाए तो एक नया आस्वाद सम्मिलित होता है।

कवि की मुद्राओं, आरोह अवरोह और भाव-भंगिमाओं के साथ टिप्पणियों द्वारा इन कविताओं की रसात्मकता मूल पाठ में वृद्धि करने वाली कही जा सकती है। वैसे इन कविताओं के मूल पाठ में अनेक मार्मिक स्थल देखे जा सकते हैं।

कुछ कविताओं के अंश अपने आप में स्वतंत्र कविता की गरज सारने वाले हैं। जैसे इन पंक्तियों को देखेंगे तो लगेगा यह पूरी कविता के विन्यास में तो अपनी अभिव्यंजना के साथ व्यस्थित है ही, किंतु यह एक स्वतंत्र कविता के रूप से भी प्रभावित करती है 'अब प्रेम वैसा रहा नहीं/सब समझती हैं ये आंखें/कि सामने वाले के मन में कितना जल है/और कितना सजल है वह खुद भी!'

हिंदी कविता और खासकर इक्कीसवीं शताब्दी की कविता में काव्य-भाषा में जो बदलाव हुआ है, वह यहाँ भी देखा जा सकता है 'समय हर सवाल को अपने हिसाब से/हल कर देता है/तुम सवाल हो/मैं समय हूं/खुश रहने की आदत डालें' कविता का सौंदर्य जो पहले विभिन्न युक्तियों के बल पर होता था, वह अब सादगी और सरलता में भी संभव होता दिखता है 'यही जीवन है/जहाँ कुछ अपने हैं/कुछ पराए हैं/एक उम्र में/आदमी जी लेता है/कई कई जिंदगी एक साथ' इसका कोई विशेष कारण यदि हम समझना चाहे तो वह है पूर्वाग्रह सहित जीवन और सपाट बयानी। जैसे 'जिंदगी इत्ती बुरी भी नहीं/जित्ता हम/सोच लिया करते हैं बाबू' इसलिए कवि लालित्य को जीवन के लालित्य को खोजने समझने का कवि कहना चाहिए।

वे कहीं कहीं तो सीधे आह्वान की मुद्रा में कहते हैं 'अरे!/अभी फायदे की दुनिया से/बाहर निकल कर देखो' और जैसा कि मैंने महसूस किया कि कवि पूर्वाग्रह से युक्त होकर भी, वह जिस मुक्तिकामी दृष्टि से जीवन की बात करता है वह उल्लेखनीय है 'मन में आया तो सोचा कह दूं/ मानना न मानना तुम्हारा काम/हमें तो कहना था कह दिया/ नमस्कार!'

कवि लालित्य का विश्वास जीवन के सौंदर्य को कविताओं में अभिव्यंजित करने में रहा है। वे 'गुलदस्ते' जैसी कविता में वाट्सएप और मैसेंजर में आने वाले अनचाहे संदेशों के बारे में खीज प्रकट करते हैं।

यह असल में ऐसा यथार्थ है जिससे हमारी भी भेंट होती रही है। ऐसी रचनाओं को कुछ मित्र कविता की श्रेणी में रखने से गुरेज कर सकते हैं, क्योंकि किसी घटना की सीधी-सीधी प्रतिक्रिया अथवा प्रत्युत्तर कविता हो यह कठिन साध्य है। किंतु यह कविता को लेकर अपनी-अपनी अवधारणा और कविता के क्षेत्र में स्वतंत्रता का मुद्दा भी है।

असल में कविता क्या है या क्या नहीं है, इसका कोई सीधा-सीधा सूत्र अथवा जाँच उपकरण निर्मित ही नहीं किया जा सका है। यह फैसला समय का होता है और यह फैसला भी समय का ही होगा कि 'प्रेम शब्द है ही ऐसा जो/किसी को भी आवाज दे सकता है' इसी तर्ज पर कहें तो कविता जब किसी को आवाज देती है और वह कवि जब उस आवाज को सुन लेता है, तब वह ऐसा फैसला लेता है 'ऐसा कुछ लिख दो/जिससे अंधेरे घर में रोशनी हो जाए।' संग्रह की अधिकांश कविताएँ वर्तमान समय और समाज पर रोशनी डालती हैं।

कोरोना काल में लेखक और प्रकाशक के साथ कवि अपने पाठकों, घर-परिवार के साथ सभी रिश्ते-नातों के गणित को खोलता हुआ हमें एक ऐसे लोक में ले जाता है जो हमारा अपना जाना-पहचाना है।

अपने जाने-पहचाने को कवि की आँख से देखना निसंदेह हमें ऊर्जा और उत्साह देने वाला है। प्रेम के विविध रूप भी संग्रह में प्रभावित करने वाले हैं। कवि मित्र लालित्य को मैं बहुत-बहुत बधाई देते हुए उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि बहुत कुछ बाकी है अनकहा और उस बहुत कुछ को सतत् रूप से वे कविताओं में सहेजते रहेंगे।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ आशा करता हूँ कि एक साथ इतनी संख्या में कविता-संग्रह आने का यह कीर्तिमान पाठक मित्रों को जरूर पसंद आएगा और इस उपक्रम से समेकेतिक रूप से कवि लालित्य-ललित के कवि-कर्म पर चर्चा हो सकेगी।

—नीरज दइया

ललित जिन शब्दों से पार पाने में लोगों को शताब्दियाँ लगती हैं, तुम कैसे आनन फानन में से शब्दों के पार उतर जाते हो। तुम यह जो पुल अरसे से बनाने में लगे हो, यह फ्लाईओवरों में बदल जाए जिससे शब्दों की दुनिया नए सिरे से गुलजार हो। बाकी तो यही कहना है कि

शब्दों में लालित्य वही लालित्य जहाँ हैं
पूछ रहे हैं लोग बंधु, लालित्य कहाँ हैं?

—ओम निश्चल

त्वरा के साथ स्वरा का वरण

डॉ. राजरानी शर्मा

अपने विकास के क्रम में आदर्शों का स्वस्ति गायन करता साहित्य एक लंबी और सार्थक यात्रा तय कर चुका है! आज समाज इक्कीसवीं सदी के दो दशक व्यतीत कर, तीसरे दशक में प्रवेश करने की तैयारी कर रहा है! इस दशक के प्रवेश द्वार पर ही समाज को वैश्विक महामारी से सामना करना पडा है! स्पष्ट है कि चेतना अपने नये संदर्भों से साक्षात्कार करते हुए समायोजन के प्रसंग और प्रयोजनों की तलाश में है!

समय अधिक सचेत हो गया है! इस सचेत समय में सृजनधर्मी अपने को एक विभ्रम में पाते हैं ये विभ्रम है यथार्थ, अतियथार्थ और वांछित आदर्श मूल्यों के साथ संतुलित समायोजन का! हम सभी जानते हैं कि रचनाधर्मिता एकांतिक नहीं होती उसमें समाज का हर रंग होना ही रचना की सार्थकता की पुष्टि करता है! इसीलिये आज जो कविता, व्यंग्य, कहानी, नाटक या अन्य विधाएँ रची जा रही हैं सब में मनुष्य की इयत्ता की कहानी प्रतिध्वनित है! आज का मनुष्य सफल तो होना चाहता है पर सार्थक होने की अधिक परवाह नहीं कर पाता क्योंकि गहन चिन्तन और वितंडावादों में पडने का उसके पास समय नहीं है!

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के मुहाने पर खडा मानव संश्लिष्ट होते हुए भी सरल है! वैज्ञानिक होते हुए भी धर्मभीरू है! शास्त्रीय ज्ञान रखते हुए भी व्यावहारिक है! इन सब विरोधाभासों का एक कारण है कि उसकी महानगरीय सीमायें हैं! आज के मनुष्य की वैश्विक पहचान उसे व्यापक बना कर भी उसकी अस्मिता के संकट को काट नहीं पा रही! ऐसे में सृदनधर्मी को आम आदमी की इस संश्लिष्ट चेतना को काव्यभाषा का जामा पहनाना बहुत दुष्कर कार्य है! इसी कठिनाई के चलते आज सृजन के सामने दुविधा है यथार्थ से लड़ते हुये आदर्श मानव को शब्दायित करने की! इतनी भूमिका बनाने के पीछे का प्रयोदन यह है कि आज के इस उलझे हुए समाज की एक सादा तस्वीर शब्दों में पिरोना कुछ कम कलाकारी का काम नहीं है! आज का मनुष्य वीर रस को करुण रस की तरह जीने को विवश है! उपलब्धियों का आनन्द नहीं ले पाता क्योंकि प्रभावों की छाया रहती है!

ऐसे अन्तर्द्वन्द्व में डूबे समाज का चित्रण करना अग्निपरीक्षा देने के समान है! इसीलिये हम देखते हैं कि कम से कम कविता तो लक्षणा व्यंजना को भी अभिधा में बुन लेने की युक्ति निकाल चुकी है! मेरा कथन जटिल लग सकता है पर है नहीं! वस्तुतः अभीष्ट अभिप्राय ये है कि कविता जटिल परिस्थितयों में जीते हुए सरल मन का अक्स बनती जा रही है!

लालित्य ललित की लेखनी त्वरा के साथ स्वरा का वरण करती अपनी तरह के अद्‌भुत सृजन में निरत है! दिनोंदिन जीवन के अनगिनत कार्यों और राष्ट्रीय दायित्वों के सफल निर्वाह के साथ लालित्य ललित इतने सूक्ष्मदर्शी मन को जीती हुई उसी भाग दौड भरी जिन्दगी में से मोती चुनती रहती है! सृजनधर्मिता की अनेकानेक चुनौतियों को चुटकी में हल करता यह कवि, सफल व्यंग्य लेखक भी है, सफल संपादक, सफल सेतु निर्माता और सफल संवादी है! शायद इतने संश्लिष्ट व्यक्तित्व का समाधान कवि लालित्य ललित ने हल्की फुल्की हँसी के साथ मानव मन के गहरे सृजन में ढूँढ लिया है! लगता है कवि की साँस ही कविता है य दृष्टि ही चरित्रांकन है और रोजमर्रा की घटनाओं से मर्म चुन लेने की अपूर्व क्षमता ही उनके प्रचुर काव्य संग्रहों व्यंग्य संग्रहों का नेपथ्य है!

साहित्य की औपचारिकताओं को नीरस और बोझिल आवरण से हटाकर लालित्य ललित मानों एक अट्‌टहास करते मैदान में ला खड़े करते हैं! प्रस्तुत संग्रह 'मेरी इक्यावन कवितायें' कवि मन का निष्कलुष दर्पण है! शीर्षक के चयन

से ही कवि की मंशा स्पष्ट हो जाती है कि कृत्रिम बौद्धिकता में कवि को कोई रुचि नहीं! संग्रह है तो जितनी कविता हैं वे अपने आप में सब शीर्षक ही हैं! ये शीर्षक चयनभी कवि मन के खुलेपन का सूचक है! कथ्य का जहाँ तक प्रश्न है वे कठिन जीवन के सरल चितेरे रहे हैं! सडक पर आते जाते क्षणों पर कविता बुन देना वहीं व्यक्ति कर सकता है जिसकी जीवन पर स्वाभाविक पकड हो! जो आदमी के मन में बसे दर्द की तस्वीर उसके चेहरे से पढ सके!

विदेश में बसे भारतीयों पर तंज कसते लालित्य कहते हैं

"तनेजा जी रहते थे बरसों पहले
पर सुना है उनके बेटे ने
किसी बिल्डर को घर बेच दिया है...!
वो सब बेच कर कनाडा चला गया है!
तनेजा जी रो रहे होंगे
ऊपर से ये देख कर
कि उनकी जमा पूँजी का घर
अब बिक गया है!

देखने में बात छोटी लगती है और लगता है कि ये क्या कथ्य है पर सही मायने में बड़ी बात को निश्छल ढंग से व्यक्त कर देना बिना किसी कृत्रिमता के बडी बात है! मुख्य बात है संप्रेषित होने की!

आज के मशीनी दौर के सच को यांत्रिकता से बचाकर पेश कर देना! जीवन के सामान्य से क्षणों पर कविता बुन देना दरअसल हमारे अनौपचारिक हुए समाज की दास्तान सुना देने जैसा है! लालित्य ललित ही ऐसे कवि हैं जो बिना शिल्प के अपने कथ्य को संप्रेषित कर पाते हैं! आज जब इतनी अधिक उलझी हुई भाषा लिखी जा रही है कविता में कि पठनीयता का संकट पैदा हो गया है ऐसे विकट समय में जुमलेबाजी से बचते हुए बिना किसी वाद में उलझे कोई अपनी बात पाठकों के विशाल समुदाय तक निरापद पहुँचा सके ये बडी बात है!

—डॉ. राजरानी शर्मा

घर कहता है

लेखक : डॉ. संजीव कुमार

घर में रहोगे
तो
बचोगे
जिम्मेवारियाँ कहती है
बाहर निकलो
सावधानी से दूध, मसाला और दालों के साथ
आटा, चावल भी ले आओ
नींबू, पुदीना से लेकर टमाटर, मैथी, पालक के साथ
केले, तरबूज, खरबूजे जो समझ में आया
ले आया।
श्रीमती ने पूछा कि कौन सा सामान कितने का
कुछ बता पाया
कुछ भूल गया
इतना कहा कि घर के लिए लाया
इसलिए यदि उसने कमा भी लिया होगा
दस पांच रुपये
कमाने दो न!
अगला मंडी जाता है
दो चार रुपए कमाएगा न
आखिर उसका भी परिवार है
घर है
बच्चे है
मेरे बच्चों ने मुझे देखा
कहा ग्रेट पापा
हमें आप पर गर्व है।
समझा नहीं मैं
आखिर सरकारी स्कूल में पढ़ा हूँ॥
शब्दावली जरा आराम से समझता हूँ।

(पुस्तक मजदूर कहता है से)

समग्रता और समसामयिकता

डॉ. तबस्सुम जहां

लालित्य ललित हिंदी में एक कहावत है नाम बड़े और दर्शन छोटे। पर लालित्य ललित के संदर्भ में 'नाम बड़े और दर्शन भी बड़े' कहावत चरितार्थ होती है। ऐसा इसलिए क्योंकि बहुत ही कम समय में इन्होंने साहित्य जगत में न केवल अपनी पहचान बनाई है अपितु अनेक पुरस्कारों से भी सुशोभित हुए हैं। नेशनल बुक ऑफ ट्रस्ट के संपादक लालित्य ललित किसी परिचय के मोहताज नहीं है। किरोड़ीमल कॉलेज से शिक्षित ललित जी न केवल सरल सौम्य व्यक्तित्व के धनी हैं अपितु एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार, आलोचक और सहृदय कवि भी हैं। समय-समय पर इनके अनेक काव्य संग्रह, व्यंग्य संग्रह, आलेख आदि प्रतिष्ठित प्रकाशनों से प्रकाशित होते रहे हैं।

आज जबकि हिंदी साहित्य में चँहु ओर विमर्शों की भरमार है। साहित्य जगत अलग-अलग ख़ेमों में बँटा नज़र आता है।

ऐसे विषम समय मे भी उनकी कविताएँ किसी एक विमर्श से नहीं बांधी जा सकती हैं। बल्कि कहा जाए तो सभी विमर्श उनके हैं और सभी विमर्शों के वे स्वयं। लालित्य ललित ने अपनी कविताओं को किसी खास विमर्श तक केंद्रित नहीं किया है। इनकी कविताएँ अविरल नदी की वे धाराएँ हैं जिसमे सभी विषयों और विमर्शों को अपने भीतर समाहित करने की अथाह शक्ति है। व्यक्ति जीवन का शायद ही कोई कोना ऐसा होगा जहाँ उनकी कविताएँ न झाँकती हों। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में आम आदमी की आवाज़ बनकर पाठकों के सामने आये हैं। इनकी कविता आम आदमी की कविता कही जा सकती हैं जिसमें एक आम आदमी अपनी पूरी जिजीविषा के साथ प्रस्तुत हुआ है! लालित्य जी की यह विशेषता है कि वह अपनी बात लाग लपेट के अंदाज़ में भारी-भरकम शब्दों का सहारा न लेकर बहुत ही सीधे और सरल शब्दों में करते हैं या यूँ कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगा की वो आम आदमी की समस्त पीड़ा आम आदमी की जुबानी ही बयान करते हैं। लालित्य जी की कविताओं पर बात करें तो कहा जा सकता है कि उन्होंने जीवन के सभी छुए-अनछुए पहलुओं पर अपनी कलम चलायी है! आज जब चारों ओर स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री देह मुक्ति की बात की जा रही है वही उनकी कविता 'औरत' में एक स्त्री के जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं का चित्रण किया गया है!

"सब कुछ होना ही है औरत होना"

वह सब कुछ है इसलिए औरत है एक ज़िम्मेदार औरत जिसका जीना और मरना अपने परिवार के लिए ही है, जो अपनी इच्छाओं को मारकर केवल पति और बच्चों की खुशियों के लिए जीती है! सच तो ये है कि आज भी एक स्त्री ही परिवार की वह धुरी है जिस पर उसकी पूरी पारिवारिक व्यवस्था टिकी हुई है वह सभी रिश्तों को बखूबी निभाती है। एक माँ रूप में वे सदा अपनी पुत्री की चिंता करती है ख़ास कर जब पुत्री बड़ी होकर प्रेम में पड़ती है। इस चिंता को कवि ने अपनी कविता "लड़की प्रेम में है" में बड़ी सुंदरता के साथ व्यक्त किया है।

"इस आशंका से घबराती है
हर वह माँ।
जिसकी बेटियाँ बड़ी हो रही हैं।
माँ का दिल काँप उठता है
जिसकी लड़की प्रेम में होती है।"

समय के साथ आज मनुष्य में मानवीय नैतिक सामाजिक मूल्यों का निरन्तर लोप हो रहा है। आज व्यक्ति ही व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु बन गया है। इसका यथार्थ चित्रण लालित्य जी ने अपनी कविता 'वहशी' में किया है।

"बदला है जानवर
समय के साथ

अब मनुष्य बन गया है
अपराध की नई भाषा।"

आज मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इंसानियत को लगातार कुचल रहा है स्वार्थ सिद्धि के लिए वह कुत्ता तक बनने को तैयार हैं हालांकि कुत्ता अपने मालिक के प्रति वफादार होता हैं किन्तु मनुष्य कुत्तों से भी बदतर होता जा रहा है जो अपने स्वार्थ के लिए नित्य नए-नए रूप बदलता है ऐसे ही रूप बदलकर गन्दी राजनीति करने वालों पर उनकी व्यंग्यात्मक कटाक्षपूर्ण कविता 'कुत्तों का असामाजिक होना' प्रशंसा योग्य है!

"कुछ कुत्ते होते हैं
कुछ कुत्ते जैसे होते हैं
कुछ कुत्ते सरीखे होते हैं
और कुछ कुत्ते जैसे दिखते हैं!"

आज मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए सबसे अधिक खिलवाड़ प्रकृति के साथ किया है! जाने अनजाने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में हम जीव जंतुओं पक्षियों के संहार का कारण बन रहे हैं। आधुनिकता और स्वार्थपरता के कारण विभिन्न जीव जंतुओं की प्रजातियाँ संकट में हैं अथवा लुप्त हो रही हैं ऐसे ही चिंताजनक विषय पर लिखी कविता 'चिड़िया' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं! लालित्य ललित कवि सहृदय होने के साथ प्रकृति प्रेमी भी हैं। वह न केवल स्वयं प्रकृति को महसूस करते हैं अपितु दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करते हैं। प्रकृति प्रेम से जुड़ी उनकी कविता "फूल पत्ती और तितली" में यह झुकाव देखा जा सकता है।

"कुछ देर फूल को
सहलाओ
पत्ती को पुचकारो
देखोगे तुम
आहिस्ता से आ बैठेगी
तुम्हारी हथेली पर तितली।"

भारत में अधिकतर लोग काम धंधों के लिए शहरों की ओर पलायन करते हैं। अपने पीछे छोड़ जाते हैं गाँवों में अपना परिवार। जो दिन रात शहर गए अपने लोगों की चिंता में मग्न रहता है। ऐसे ही अपने पति की चिंता करती एक पत्नी की व्यथा कविता–

"गावँ का खत : शहर के नाम" में देखी जा सकती है।

"सच ढेर सारी बातें लिख छोड़ी थी तुमने
समय से काम पर जाना
ठीक वक्त पर खाना खाना
और सबसे ज़रूरी शहरी साँपिनों से दूर रहना
कितना ख्याल रखती हो मेरा।"

आज की दौड़ भाग वाली जिंदगी में साधरण मनुष्य का कोई स्थान रह गया। सुबह से शाम तक वह जीवन के लिए संघर्ष करता है। इस आपा-धापी में आदमी स्वयं अपनी पहचान खोकर मात्र एक नम्बर बन कर रह गया है। जिसका वर्णन ललित जी ने अपनी कविता 'नम्बरों में तब्दील आदमी' में बखूबी किया है

"एक उमर के बाद आदमी
अपना नाम भूल जाता है
अस्पताल की लाईन
डिस्पेंसरी की लाईन
में आप कब नंबर में तब्दील हो जाते हैं
यह आपको पता तब चलता है
जब कोई बुज़ुर्ग आपसे थपथपा कर
कहता है
भाई साहब आपका कितना नंबर है!"

आज जबकि कोरोना महामारी ने समूचे विश्व को काल कल्वित कर लिया है शायद ही कोई ऐसा वर्ग होगा जो इससे उपजी विसंगतियों की चपेट में न आया होगा। लॉकडाउन ने देश मे बेरोज़गारी को भयंकर तौर पर बढ़ा दिया। लोगों के बैठे बिठाए काम धंधे चौपट हो गए। इसी त्रासदी को झेलते एक साधरण हलवाई के दर्द को भी लालित्य ललित ने बड़ी मार्मिकता के साथ उकेरा है। ये मात्र एक व्यक्ति की व्यथा नहीं अपितु जनमानस की पीड़ा है।

"कह रहा है
काम ठप्प है साब
कोई कस्टमर आता नहीं

हम्म।

उसके दुख को साझा किया।"

वक्त बदल गया या उसकी परिभाषा कविता में मनुष्य अपने जीने के लिए असंख्य जतन करता है। बेशक वह कोरोना महामारी हो अथवा कोई प्राकृतिक आपदा। ये जतन ही मनुष्य में उसकी जिजीविषा को बनाए रखती है। इस जतन में भी अमीर ग़रीब का जतन अलग-अलग होता है। दोनों ही अपनी हैसियत अनुसार जीवन सामग्री जुटाते हैं। जिसका सुंदर चित्रण कविता में किया गया है। एक बानगी देखिए

"कितने दिनों का दाना पानी लेकर रखा जाए
यह गरीब सोचता है
उधर अमीर
अभी भी गल्ले में नोटों की गड्डियाँ सहेज कर रखता है
किस से कितना कमीशन आना है
किसको कितना देना है।"

लालित्य ललित मानते हैं कि यह दुनिया झूठी है। झूठे लोग आपके इर्द-गिर्द ही मंडराते रहते हैं। वे दिन रात झूठी प्रशंसा करके आपको चने के झाड़ पर चढ़ाते रहते हैं। इससे बचना चाहिए। अतः व्यक्ति को अपने भीतर साक्षात्कार करना चाहिए। बाह्य छद्म दुनिया से इतर अपने व्यक्तित्व को बनाए रखना चाहिए। वह कहते है

"क्योंकि आपकी ज़िंदगी से असलियत
एक सिरे से नदारद हो चुकी है
इसकी जगह नकलीपन ने ले ली है
अजी सुख तो वह है जो खुद महसूस किया
अपने भीतर
सेरोगेट वाले क्या जाने वह पीड़ा।"

इसी प्रकार जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं वा परिवेशगत यथार्थ को उजागर करने वाली कविताओं की फेहरिस्त बहुत लम्बी है जिसमें 'जिंदगी का मेला', 'शब्द जिसे रचा जाना था पहले', 'जिंदगी में यह भी', 'प्रेम में कविता होना', 'रोटियाँ', 'बलात्कृत लड़की का पिता', 'बलात्कार के पीछे का सच', 'बैठे ठाले का आदमी चिंतन', 'देह विमर्श का खेल', 'पुरुष वेश्या की आत्मकथा' आदि का नाम प्रमुखता से लिए जा सकता हैं। लालित्य ललित की कविताएँ कहीं धारदार व्यंग्य करती हैं तो कहीं मानवीय संवेदनाओं को झकझोर कर रख देती हैं। ये कविताएँ नहीं अपितु समाज का वह आईना है जिसमें समाज से जुड़ा हरेक पक्ष अपना सीधा सच्चा अक्स देख सकता है। भारी भरकम शब्दों से इतर इनकी कविताओं में सरलता, सहजता और आम बोलचाल की शब्दावली की भरमार है। इनकी कविताएँ पांडित्य प्रदर्शन में विश्वास नहीं करतीं बल्कि व्यक्ति की नस पकड़ती हैं। व्यक्ति के सूक्ष्म मनोभावों पर कवि की पैनी दृष्टि है। व्यक्ति जीवन का कोई पक्ष इनसे अछूता नहीं है। नये बिम्ब, संवाद शैली, छंद से मुक्ति आदि इनकी कविताओं को और भी अधिक रोचक बनाती हैं। धाराप्रवाह कविता कहने की प्रवृत्ति लालित्य ललित की खास विशेषता है जो इन्हें समसामयिक कवियों से अलग करती है।

—तबस्सुम जहां

ललित की कविताएँ ताजा हवा के झोंके की तरह संभावना जगाती हैं। विश्वास है समकालीन हिंदी कविता में अपनी कुछ अलग खासियतों की वजह से लालित्य ललित की कविताएँ उल्लेखनीय साबित होंगी।

—मिथिलेश्वर

ललित की कविताएँ हमारे समय के वास्तव की कविताएँ हैं। ये जमीन की ओर लौटने की कविताएँ हैं। प्रेम के प्रथम-स्पर्श की सौंधी महक के आरम्भ होकर ये कविताएँ गाँव-परिवार की ऊष्मा से सराबोर हमें वहाँ लाती हैं जहाँ आज एक छटपटाहट है। विवशता है, शोषण है और है एक अंतहीन भटकाव। आज के क्रूर यथार्थ और आदमी के जटिल होते जीवन से दो-चार होती ये कविताएँ आपकी ही कविताएँ हैं, बिलकुल आपकी, आपके साथ चलती हुई, आपसे कुछ कहती हुई।

—डॉ. अमरेंद्र मिश्र

मेरी कविता समझदार किसिम के लोगों पर

विपिन कुमार शर्मा

समकालीन कविता में लालित्य ललित का नाम कतई अनजाना नहीं है कुछ लोग शौकिया कवि होते हैं जो एकाध संग्रह के बाद थककर बैठ जाते हैं, किंतु यह लगातार और धुआँधार लिखने वाले कवि हैं जिसका प्रमाण है इनके आधे दर्जन कविता संग्रह हाल के वर्षों में लालित्य ललित और इनकी कविताओं की चर्चा भी खूब रही है। लालित्य ललित की दूसरी विशेषता है इनका व्यंग्यकार होना। इसका प्रमाण आप प्रस्तुत संग्रह के नाम में भी बखूबी देख सकते हैं 'समझदार किसिम के लोग'।

इस शीर्षक में आम लोगों के लिये दिये गये 'समझदार किसिम' के विशेषण में ही पर्याप्त व्यंजना छुपी हुई है। इनका व्यंग्यकार रूप इनकी कविताओं में खुलकर सामने आता है और कुछ ऐसी बातें भी बेझिझक कह जाता है जिसे कलात्मक या काव्यात्मक अंदाज़ में कहने मे बहुत सारे तामझाम जुटाने पड़ जायें! इसके अलावा एक तीसरी विशेषता है कविताओं का संवाद करते हुए आगे बढ़ना।

कवि अपनी ज्यादातर कविताओं में किसी न किसी से या खुद से ही मुखातिब होता है और उससे बातचीत के क्रम में ही कविता विकसित होती चली जाती है।

इस शैली के कारण इनकी भाषा और शिल्प, दोनों में अत्यधिक सहजता बनी रहती है। ये विशेषताएँ लालित्य ललित की लगभग सारी कविताओं के संदर्भ में रेखांकित की जा सकती हैं, न कि सिर्फ़ प्रस्तुत संग्रह की कविताओं के लिये।

इस संग्रह की सौ से अधिक संकलित कविताओं में काफ़ी विविधता है जो किसी भी कवि के लिये ईर्ष्या का विषय हो सकती है। निम्न मध्यवर्ग का आम आदमी, भ्रष्टाचार, स्त्री, पति, बुज़ुर्ग, पिता, माँ, बेटी, लड़की, बॉस, पड़ोसी, दफ़्तर की ज़िंदगी आदि जाने कितने ही विषय और मुद्दे हैं जो लालित्य ललित की कविताओं के केंद्र में हैं। एक कविता 'किन्नर' पर भी है जिस पर कवियों की दृष्टि बहुत मुश्किल से ही जाती है।

इसके अलावा कुछ छोटी-छोटी प्रेम कविताएँ भी हैं जो इस संग्रह को खास बनाती हैं। इन कविताओं की भाषा में ऐसा प्रवाह है मानो कवि के लिये कविता लिखना साँस लेने की तरह सहज हो। हाँ, कहीं-कहीं भाषा बहुत सपाट भी लगने लगती है। वे कविता में कुछ कहने के लिये किसी तरह की भूमिका न बनाते हैं और न ही उसकी परवाह करते हैं, वे कहीं से भी शुरु हो जाते हैं और अपनी बातें कहकर कहीं पर भी समाप्त कर देते हैं।

कई बार कविताओं की बड़ी असहज़ सी शुरुआत होती है और कई बार असहज़ सा अंत भी, किंतु इसका समाधान वे व्यंग्य में बहलाकर कर देते हैं।

कवि लालित्य ललित की कविताओं के केंद्र में हमेशा से आम निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति रहा है जो हर छल प्रपंच के बावजूद कुछ हासिल नहीं कर पाता है और अंततः बेचारगी में जीवन जीने को मज़बूर होता है।

ललित उसके छल को भी उघाड़ते हैं और उसकी बेचारगी को भी। उदाहरण के लिये इस संग्रह की पहली ही कविता से कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं "क्या सीखा हमने/जाते हुए साल से/कुछ भी तो नहीं/ना तुम राम बने, ना वो रहीम/ना अन्ना बन सके, ना ही समर्थक/ना समर्थन ही जुटा पाये/चालाकियाँ ज़रूर बढ़ गईं/दुश्मनों की बढ़ोतरी भी हुई/गाहे बगाहे हमने नहीं चाहा किसी का नुकसान/लेकिन सफ़र ही ऐसा है/कुछ खुश हुए तो कुछ नाराज़...सब चलता है, सब चलेगा/आप में दम हो अगर/तो रुकवा के देख लो!

उपर्युक्त पंक्तियों में देख सकते हैं कि कवि आम आदमी की नियति, चालाकी और मज़बूरी, सबको एक साथ

देख पा रहा है। यह बेचारगी ही तो है कि वह कहता है ". ..सब चलता है, सब चलेगा/आप में दम हो अगर/तो रुकवा के देख लो!" वह बहुत आसानी से परास्त होकर उसे ही अपनी नियति मान लेता है और उसे लगता है कि चाहे लाख कोशिश वह कर ले किंतु कुछ भी बदलने वाला नहीं है।

लालित्य ललित की कविताओं का नायक बहुत आशावादी नहीं है, न ही इन्कलाबी है, वह दुनिया बदलने के सपने नहीं देखता बल्कि खुद को ही बदल देने में विश्वास रखता है। अलबत्ता वह आदर्श की कुछ छोटी-मोटी बातें ज़रूर सोचता है जिसमें ज्यादा कुछ गँवाने या करने का जोखिम नहीं हो।

बेशक यह आम निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का मूल चरित्र है जो लालित्य ललित की कविताओं के केंद्र में है "सान्निध्य में मिलती हैं/खुशियाँ/अपनापन, आत्मीयता/और सरोकारों का ताना-बाना/ज़रा मुड़कर देखो/खुश होकर देखो/बिखरे हुए को जोड़कर देखो/परस्पर देखो/परंपरागत देखो/हर पल पुरस्कृत हो जाता है" अब यहाँ देख सकते हैं कि इन बातों को सोचने या करने में कुछ जोखिम नहीं है, न कुछ गंवाना है और न कुछ खास पाना है, बस जीवन को आसान बनाये रखने की जुगत है।

इस वर्ग के सामान्य चरित्र को और खोलते हुए कवि 'साहब और बड़े साहब' शीर्षक कविता में लिखता है "साहब/और बड़े साहब क्या होते हैं/एक मक्खन की छोटी टिक्की/और/दूसरी आधा किलो की/दोनों को चापलूसी पसंद है/किसी को कम/किसी को ज्यादा/यदि आप इस पवित्र व्यंग्य की/परिभाषा से परिचित हैं/तो वर्षभर में/आपकी अनगिनत यात्राएं/होंगी/और यदि आप इस/पुराण प्रक्रिया से/अनभिग्य हैं तो/आप बैठे रहेंगे कतार में...तो यह है इस वर्ग का चरित्र, कुछ क्षुद्र-सी सुविधाओं और लालसाओं के लिये वह कहीं भी गिरने और किसी की भी चापलूसी करने से परहेज़ नहीं करता।

कवि यह स्पष्ट कर देता है कि अगर आप चापलूसी नहीं करेंगे तो ऐसा नहीं है कि आप भूखे मर जाएँगे कि आपका अपमान होगा या आपके और परिवार के लोगों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। ऐसा कुछ भी नहीं होगा, किंतु क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये यह वर्ग कुछ भी करने को और अपना आत्मसम्मान भी दांव पर लगाने को तैयार रहता है।

इस संग्रह की ज्यादातर कविताएँ इसी वर्ग के चरित्र को कई कोणों से दिखाता-परखता है। यह स्वाभाविक ही है कि इस संग्रह का शीर्षक भी उसी की ओर इशारा करता है "मकान बनाओ तो रिश्वत/लाइसेंस बनाओ तो रिश्वत/और तो और/डेथ सर्टिफ़िकेट के लिये भी/'घूस' माँगते हैं/क्या ज़माना है यारो।

ठस्स होती ज़िंदगी, इसी बात को और भी साफ़ तौर पर इस कविता में देखा जा सकता है "हर रोज़ वही/अपहरण, बलात्कार/रोड रेज़, मक्कारी/चालाकी.../कब आयेगा वह दिन/जब साफ़ सुथरा अखबार होगा/कहीं कुछ नहीं घटेगा/सौम्या विश्वनाथन काम से/घर पहुँच जाएगी/अस्पताल के गेट पर/जच्चा जन्म नहीं देगी/आपकी शिकायत पर/कार्रवाई होगी/आपकी किताब बिना/सिफ़ारिश के छप जाएगी/आपको नौकरी/आपकी योग्यता से/मिल पाएगी/कब-कब होगा/यह सपना/हम सबका अपना!

(कब होगा सपना,) उपर्युक्त पंक्तियों में देखा जा सकता है कि व्यक्ति किसी संघर्ष में शामिल होने से बचता है, अपनी क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये किसी के भी तलवे चाटने को तैयार रहता है और बैठे-बैठे एक बेहतर दुनिया के सपने देखता है।

इस वर्गचरित्र को कवि उसके पारिवारिक संबंधों के पाखंड में भी खोलता है जब वह पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र या बेटी-बहू के प्रसंगों की जटिलता को अभिव्यक्त करता है।

वह दिखाता है कि व्यक्ति के रागात्मक संबंध भी लाभ-हानि की तुला पर रख दिये गये हैं। किसी भी संबंध में प्यार, विश्वास या समर्पण नहीं रह गया है "छलावा दर

छलावा/घिर चुका है आदमी/घिर चुकी है औरत/आपसी छलावे का/शिकार/वार पर वार जारी है/बचना/अब मुश्किल है। (छलावा) इसी तरह माता-पिता के साथ इस लाभ-हानि के रिश्ते के बीच कितना-सा लगाव बच गया है इसे भी कवि ने अपनी कई कविताओं में बहुत अच्छी तरह दिखाया है। माता-पिता अब बेटे के लिये बोझ बन गये हैं जिनसे वह किसी भी तरह पीछा छुड़ाना चाहता है। आज के उपभोक्तावादी समय में व्यक्ति किस प्रकार अपनी मानवीय संवेदनाएँ छोड़कर एक उपभोक्ता में तब्दील होता जा रहा है इसे यहाँ बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है। इस संग्रह का एक विशेष आकर्षण है छोटी-छोटी कुछ प्रेम कवितायें, खासतौर पर 'अनुभूति यह भी', 'रहेंगे हम ऐसे ही', 'वसंत', 'उसी मोड़ पर', 'एहसास', 'उलझन' आदि। इन कविताओं में प्रेम के कुछ हल्के-फुल्के अहसास या स्मृतियाँ पिरोई हुई हैं जो हमें अंदर तक छू जाती हैं।

लालित्य ललित अपनी कविताओं में प्रेम को ज्यादा विस्तार नहीं देते, न ही उसकी जटिलताओं में प्रवेश करते हैं, बस एक सुखद अहसास या कोई सुखद याद को ज्यों का त्यों रख देते हैं। यही कारण है कि इनकी प्रेम कवितायें विस्तृत नहीं हैं किंतु रोचक हैं।

उदाहरण के लिये 'वसंत' शीर्षक कविता पूरी ही उद्धृत है "तुम्हारी/एक/मुसकुराहट/से/मैं जी लेता हूँ/कई-कई सदियाँ एक साथ/और/मेरे भीतर/उतर आता है/वसंत/अपनी नई सौगात के साथ।

वर्तमान समय में बहुत कम कवि हैं जो एक साथ इतने मुद्दों को अपनी कविता का विषय बना पाते हैं। लालित्य ललित के इस संग्रह में आज के दौर की लगभग सारी बड़ी समस्याएँ मुँह बाये दिखती हैं।

दूसरी बात कि ये सारे मुद्दे कवि अपने खिलंदड़े अंदाज़ में कह जाता है जो पढ़ने में जितना सरल प्रतीत होता है उतना सरल रचना के स्तर पर नहीं है। हम इस संग्रह को पढ़ने के बाद यही उम्मीद करते हैं कि ऐसे समझदार लोग हमारी दुनिया में कम से कम हों और वे फ़िर से एक संवेदनशील इन्सान में तब्दील हो जाएँ। इस पठनीय संग्रह के लिये कवि को शुभकामनाएँ!

—विपिन कुमार शर्मा

दिन कट रहे हैं, तुम बिन

लेखक : लालित्य ललित

सोचो तो
तस्वीर का रुख अलहदा है
न रंग है
न कूची है
कैनवास भी तो नहीं
सब डिजिटल
हवा-हवाई
लोगों को लॉगिन करना आ गया
पीना भुला दिया
न ब्लडप्रेशर
न तनावपूर्ण माहौल
बेचारे वाइन शॉप वाले
लॉकडाउन के बाद कहीं धार्मिक वस्तुओं
की दुकान न खोल लें
कुछ भी हो सकता है
हो सकता है
कइयों को भूलने की बीमारी हो जाएं
कुछ दफ्तरों का नाम उसकी लोकेशन भूल जाए
कुछ ड्राइविंग ही करना
है राम!
क्या-क्या दिन देखना लिखा था!
इनसे तो कुछ होता नहीं सुनिए एक
काम किया करो
घर के सारे मोबाइल चार्ज किया करो
आपका यूं खाली बैठना हमें बड़ा अखरता है
भुन-भुनाती हुई श्रीमती किचेन में चली गई।

(पुस्तक मजदूर कहता है से)

ध्यान आकर्षित करने वाली दीवाली में सन्नाटा

सूर्यबाला

लालित्य ललित की कविता हो या व्यंग्य लेखन, उसके प्रवाह और संप्रेषण को लेकर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाये जा सकते। लालित्य ललित को छुट-पुट ही सही जितना भी पड़ा है ध्यान से पड़ा है। मैं युवा स्वर को उतना ही ध्यान से पढ़ने की आदि हूँ जितना प्रेम जनमेजय 'व्यंग्य यात्रा' में युवा स्वर को ध्यान देते हैं।

'दीवाली में सन्नाटा', शीर्षक व्यंग्य रचना को जब मैंने पढ़ा तो इसने मेरा ध्यान आकर्षित किया और आज तक यह रचना मेरे साथ है।

इसे, पढ़ना प्रारंभ करें तो लेखक की कलम पहले वाक्य के साथ हमें पकड़ लेती है जब पैर और चादर के बीच संतुलन बिठाने में लस्त पस्त मध्यवर्गीय गृहस्थ की मशक्कश्त हमारे सामने व्यंग्याकार हो जाती है। इस सच की विडंबना हर पाठक की बहुत जानीबूझी और महसूसी हुई होने के बावजूद व्यंग्यकार की कलम प्रत्येक संभावित कोण से उसका कोलाज रचती है।

रचना जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, विद्रूप के नये नये वर्क खुलते जाते हैं। पत्नी से लेकर बच्चों तक की मनुहारें, अनुहारें और ज़िद से लेकर धमकियाँ तक ऐसी कि बड़े बड़े योद्धा थर्रा जायें। इसके लिये भाषा शिल्प की अनूठी व्यंजकता और शब्दों की गुगली रचना को निखारती सँवारती चलती है। कहीं-कहीं तो चुटकी लेते छोटे, क्रिस्प, जुमले नक्काशी का काम करते हैं। यथा

जब से वोट देने लायक़ हुए हैं, आश्वासन लेने देने की भाषा आ गई है।

अथवा

पांडेय जी का चिंतन, विमर्श कर रहा था।

या

बापू के बंदर के से बंद कान से सुन लेते हैं और भी कि पांडेय जी का अपने पिता से संबंध वैसा ही था जैसे केन्द्र सरकार का विरोधी पार्टी की राज्य सरकार से लालित्य जितने संवेदनशील कवि हैं, व्यंग्य लेखन के उतने ही मँजे हुए खिलाड़ी भी।

मुहावरेदानी का सटीक प्रयोग और गझिन रूपक योजना उनके लेखन में साथ जुड़ी चलती है। बुढ़ापे में चुनाव हारे नेताओं से यादों की तुलना, मध्यवित्तीय निरीह व्यक्ति की जीवन भर मुर्ग़ा बने रहने की नियति तथा बाज़ार के सेल के साथ कैसी भी मिली फ्री चीज़ों को झेलने की विवशता, जैसे प्रयोग यह दिखाते हैं कि लालित्य कभी अभिधा में होते ही नहीं।

उदाहरण के लिये "विलायती राम पांडेय की बीबी बच्चों का लिस्ट अभियान उसी तरह चालू हो जाता है जैसे शांतता कोर्ट चालू आहे।"

आगे चलें तो

"आजकल पांडेय जी की आँखों से नींद उसी तरह ग़ायब है जैसे किसी ग़रीब लेखक की रायल्टी।"

या फिर चादर के पैर से लंबी हो जाने की बात को जीवन में बंसत छा जाने से जोड़ देने वाला शिल्प कौशल।

कुल मिला कर कथातत्व सा कुतूहल जगाये रखने वाली यह व्यंग्य रचना अपनी मौलिक व्यंग्योक्तियों के प्रयोग की वजह से आद्यांत पठनीय और रम्य बनी रहती है।

व्यंग्य सदैव परिहासी व्यंजना के नेपथ्य से सम्प्रेषित होता रहता है। सबसे महत्वपूर्ण, सारी कठहुज्जतियों के बीच से भी, रचना के आगे बढ़ने के साथ-साथ पाठक का कुतूहल और जिज्ञासा भी चरम की तरफ़ बढ़ती जाती है।

रचना अंत है भी ऐसा अर्थात कंम्पलीट सरप्राइज़ से भी ज़्यादा, शाकिंग किस्म का। कम से कम मुझ जैसी पाठिका को इसकी ज़रा भी अपेक्षा नहीं थी।

प्रश्नाकुलता की यह गुंजाइश यहाँ बनती है कि व्यंग्य रचना की गुणवत्ता की असंदिग्धता को स्वीकारने के बावजूद, सारी सनसनी और कुतूहल का अंत हठात् दुखांतकी में क्यों? यद्यपि करुणा और विसंगतियाँ व्यंग्य की अपरिहार्य सहचरियां हैं किंतु व्यंग्यकार का कवि, कथात्मकता का निर्वाह करते हुए व्यंग्य रचना को इतना दुखद कर देगा, इसकी हम अंत से ज़रा पहले तक कल्पना नहीं कर पाते। नहीं कर पाते तो न सही, रचनाकार स्वतंत्र है अपनी विधा रचना को मनचाहा स्वरूप, चरम और अंत देने के लिये।

सच पूछा जाये तो जीवन का सच्चा व्यंग्य और विडंबना यही है भी। तब फिर अपनी इस व्यंग्य रचना की नैया उन्होंने दुखांतकी के ही घाट लगानी चाही तो ग़लत क्या! वैसे भी व्यंग्य के मूल स्वर तो आक्रोश और करुणा ही ठहरे।

भारत भारती सम्मान सूर्यबाला जी को
'अनुस्वार' की हार्दिक बधाई

पिछले दिनों सूर्यबाला जी को उनके समग्र लेखन पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के भारत भारती सम्मान की घोषणा हुई। सूर्यबाला जी ने इस सम्मान की घोषणा पर लिखा—'भारत भारती इस तरह आई...जैसे मायके से चिट्ठी आई हो, बेटी के नाम...।' अनुस्वार की बधाई।

सूर्यबाला हिंदी कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। जीवन को देखने का उनका दृष्टिकोण एक सजग एवं सकारात्मक सोच के रचनाकार का है। चाहे वे एक कथाकार के रूप में अपने अंतर्मन को अभिव्यक्ति देती हैं अथवा विसंगतियों के विरुद्ध अपना आक्रोश करती हैं उनका संवेदनशील मन वंचित का पक्षधर दृष्टिगत होता है। उनके अंदर एक सहज करुणा विद्यमान् है जो रचना के माध्यम बेहतर मानवीय समाज के लिए अभिव्यक्त होती है।

उनका कथाकार रूप उनके व्यंग्यकार रूप पर हावी रहता है। यही कारण है कि वे अपनी बात कथा, चरित्र एवं संवादों के माध्यम से कहती हैं। व्यंग्य रचना का सृजन करते समय उनका रचनाकार जैसे एक अलग मूड में आ जाता है अथवा यह कहूँ कि उनका रचनाकार जब अलग मूड की रचना का सृजन करने लगता है तो फैंट्सी आदि तत्वों के साथ अपने हथियार पैनेकर मैदान में उतरता है।

ऐसे में वे सीधे अपनी बात कम कहती हैं किसी अन्य अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए मासूम से लगने वाले सार्थक शब्दों को बुनती हैं। कथा शिल्प में सिद्धहस्त होने के कारण उनकी व्यंग्य रचनाओं में एक ऐसा प्रवाह है जो आदि से अंत तक पाठ को बांधने की क्षमता रखता है। व्यंग्य लिखना उनके लिए व्यंग्य लिखने के लिए व्यंग्य लिखने जैसा नहीं है। एक सहज अभिव्यक्ति है। अपनी इसी प्रकृति के कारण वे व्यंग्य रचनाओं में अधिक सावधान दृष्टिगत होती हैं एवं व्यंग्य नामक हथियार का सावधानी से प्रयोग करती हैं।

—अतिथि संपादक

लालित्य ललित की व्यंग्य यात्रा

नीरज दहिया

"किसी पर ऐसे मजाक कर जाना, जो किसी को चुभे भी नहीं और अपना काम भी कर जाएँ यह आत्मकथन हमें लालित्य ललित के पहले व्यंग्य संग्रह के लिए लिखे उनके आरंभिक बयान 'मेरी व्यंग्य यात्रा' में मिलता है। उनके दोनों व्यंग्य संग्रह 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग' (2015) और 'विलायतीराम पांडेय' (2017) इस आत्मकथन पर एकदम खरे उतरते हैं। यह कथन उनकी इस यात्रा की संभवानाओं और सीमाओं का भी निर्धारण करने वाला है।

यहाँ यह भी उल्लेख आवश्यक है कि दोनों व्यंग्य संग्रह की भूमिका प्रख्यात व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने लिखी है। जनमेजय ने प्रशंसात्मक लिखते हुए अंत में रहस्य उजागर कर दिया कि वे नए व्यंग्यकार लालित्य ललित के प्रथम व्यंग्य संग्रह का नई दुल्हन जैसा स्वागत कर रहे हैं।

'उसकी मुँह दिखाई की, चाहे कितनी भी काली हो, प्रशंसा के रूप में शगुन दिया और मुठभेड़ भविष्य के लिए छोड़ दी। ललित यदि इस प्रशंसा से कुछ अधिक फूल गए तो यह उनके साहित्यिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होगा।' जाहिर है कि अब मुठभेड़ होनी है और यह भी देखा जाना है कि उनका साहित्यिक स्वास्थ्य फिलहाल कैसा है क्योंकि उनका दूसरा व्यंग्य संग्रह भी आ चुका।

दूसरे संग्रह 'विलायतीराम पांडेय' में भूमिका लिखते हुए प्रेम जनमेजय ने 'दिवाली का सन्नाटा' व्यंग्य रचना को लालित्य ललित की अब तक की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ कहा है। पहले व्यंग्य संग्रह को अनेक आरक्षण दिए जाने के उपरांत दूसरा संकलन जिस कठोरता और किंतु परंतु के साथ परखे जाने की कसौटी के साथ ही आलोचना के विषय में भी अनेक संभावनाएँ और सीमाओं का उल्लेख करते हुए मेरा काम आसान कर दिया है। साथ ही व्यंग्यकार लालित्य ललित ने अपने बयान में अपने व्यंग्यकार के विकसित होने में अनेक व्यंग्य लेखकों का स्मरण और आभार ज्ञाप्ति करते हुए पूरी प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वहीं पहले संग्रह के फ्लैप पर ज्ञान चतुर्वेदी, यज्ञ शर्मा, डॉ. गिरिजाशरण अग्रवाल, सुभाष चंदर, हरीश नवल और गौतम सान्याल की टिप्पणियों को देख कर बिना व्यंग्य रचनाएँ पढ़े ही लालित्य ललित को महान व्यंग्यकार कहने का मन करता है।

मन को नियंत्रण में लेते हुए दोनों पुस्तकों में संग्रहित 66 व्यंग्य रचनाओं का गंभीरता से पाठ आवश्यक लगता है। यह गणित का आँकड़ा इसलिए भी जरूरी है कि दोनों व्यंग्य संग्रह में रचनाओं का जोड़ 67 हैं पर एक व्यंग्य 'पांडेयजी की जलेबियाँ' दोनों व्यंग्य संग्रहों में शामिल है।

यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि इन दोनों व्यंग्य संग्रह में लालित्य ललित ने व्यंग्य के नाम पर कुछ जलेबियाँ पेश की हैं।

वैसे भी व्यक्तिगत जीवन में आप स्वाद के दीवाने हैं और संग्रह के अनेक व्यंग्य आपके इसी स्वाद के रहते जरा स्वादिष्ट हो गए हैं। जाहिर है कि आपकी इन जलेबियों में आपके अपने निजी स्वाद की रंगत और कलाकारी है जो आपको अन्य व्यंग्यकारों से अलग सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। कलाकारी इस अर्थ में कि लालित्य ललित कवि के रूप में जाने जाते हैं और संख्यात्मक रूप से भी आपकी कविताओं की किताबों का कुल जमा आँकड़ा डराने वाला है। अपनी धुन के धनी ललित का 32 वां कविता संग्रह "कभी सोचता हूँ कि" आ रहा है।

ऐसे में बिना पढ़े-सुने उन्हें कवि व्यंग्यकार मानने वाले बहुत हैं तो जाहिर है उनके व्यंग्यकार की पड़ताल होनी चाहिए जिससे वास्तविक सत्य उजागर हो सके। उनके कवि की बात फिर कभी फिलहाल व्यंग्यकार की बात करे

तो गद्य को कवियों का निकष कह गया है। निबंध गद्य का निकष कहा जाता है, इसमें व्यंग्य को भी समाहित ही नहीं विशेष माना जाना चाहिए। अस्तु कवि कर्म को कसौटी व्यंग्य भी है।

लालित्य ललित के व्यंग्य की तुलना किसी अन्य व्यंग्यकार से इसलिए नहीं की जा सकती कि उन्होंने स्वयं की एक शैली विकसित करने का प्रयास किया है। उनके व्यंग्य किसी अन्य व्यंग्यकार या हिंदी व्यंग्य की मुख्य धारा से अलग अपने ही तरह के व्यंग्य लेखन का परिणाम है। उनकी यह मौलिकता उनकी निजता भी है जो उन्हीं के आत्मकथन मजाक करने में उनकी अपनी सावधानी थी किसी को चुभे नहीं और अपना काम कर जाए की कसौटी के परिवृत में समाहित है।

उनकी रचनाओं का औसत आकार लघु है और कहना चाहिए कि आमतौर पर दैनिक समाचार पत्रों को संतुष्ट करने वाला है। जहाँ उन्होंने इस लघुता का परित्याग किया है वे अपने पूरे सामर्थ्य के साथ उजागर हुए हैं। साथ ही यह भी कि वे व्यंग्यकार के रूप में भी अनेक स्थलों पर अपने कवि रूप को त्याग नहीं पाए हैं। सौंदर्य पर मुग्ध होने के भाव में उनकी चुटकी या पाँच जिसे उन्होंने मजाक संज्ञा के रूप चिह्नित किया है चुभे नहीं की अभिलाषा पूरित करता है। व्यंग्य का मूल भाव 'दिवाली का सन्नाटा' में इसलिए प्रखरता पर है कि उन्होंने करुणा और त्रासदी को वहाँ चिह्नित किया है।

इस व्यंग्य के आरंभ में पैर और चादर का खेल भाषा में खेलते हुए वे चुभते भी हैं और अपना काम भी करते हैं। मूल बात यह है कि उनका यह चुभना अखरने वाला नहीं है। उनकी व्यंग्य यात्रा में कुछ ऐसे भी व्यंग्य हैं जहाँ उनका नहीं चुभना ध्यनाकर्षक का विषय नहीं बनता है। यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि इसी व्यंग्य का बहुत मिलता जुलता प्रारूप इसी संग्रह में संकलित अन्य व्यंग्य 'महंगाई की दौड़ में पांडेयजी' में देखा जा सकता है। जाहिर है मेरी यह बात चुभने वाली हो सकती है पर अगर इसने अपना काम किया तो आगामी संग्रहों में ऐसा कहने का अवसर किसी को नहीं मिलेगा। सवाल यहाँ यह भी उभरता है कि विलायतीराम पांडेय ने क्या सच में अपने परिवार की खुशी के लिए किडनी का सौदा कर लिया है। यह हो सकता है कहीं हुआ भी हो किंतु यहाँ मूल भाव ऐसा किया जाने में जो करुणा है वह रेखांकित किए जाने योग्य है। आधुनिक जीवन में घर-परिवार और बच्चों की फरमाइशों के बीच पति और पिता का किरदार निभाने वाला जीव किस कदर उलझा हुआ है।

लालित्य ललित की विशेषता यह है कि वे इस पिता और खासकर पति नामक जीव की पूरी ज्यामिति वर्तमान संदर्भों स्थितियों में उकेरने की कोशिश करते हैं।
उनका मुख्य पात्र विलायतीराम पांडेय दोनों संग्रहों में सक्रिय है और दूसरे में तो वह पूरी तरह छाया हुआ है। धीरे-धीरे उसकी पूरी जन्म कुंडली हमारे सामने आ जाती है। नाम विलायतीराम पांडेय, पिता का नाम बटेशरनाथ पांडेय, माता का नाम चमेली देवी, पत्नी राम प्यारी यानी दुलारी और दोस्त अशर्फीलाल जैसे कुछ स्थाई संदर्भ व्यंग्यकार ने अपने नाम करते हुए विगत चार-पांच वर्षों का देश और दुनिया का एक इतिहास इनके द्वारा हमारे समाने रखने का प्रयास किया है।

यहाँ दिल्ली और महानगरों में परिवर्तित जीवन की रंग-बिरंगी अनेक झाँकियाँ हैं तो उनके सुख-दुख के साथ त्रासदियों का वर्णन भी है। पति-पत्नी की नोक-झोंक और प्रेम के किस्सों के साथ एक संदेश और शिक्षा का अनकहा भाव भी समाहित है। कहना होगा कि लालित्य ललित मजाक-मजाक में अपना काम भी कर जाते हैं। यहाँ व्यंग्य का मूल केवल कुछ पंक्तियों में निहित नहीं है, वरन व्यंग्य का वितान जीवन के इर्द-गिर्द दिखाई देता है।

स्वार्थी और मोलभाव करने वाले प्राणियों के बीच इन रचनाओं का नायक विलायतीराम पांडेय कहीं-कहीं खुद व्यंग्यकार लालित्य ललित नजर आता है तो कहीं-कहीं उनके रंग रूप में पाठक भी स्वयं को अपने चेहरों को समाहित देख सकते हैं। आज का युवा वर्ग इन रचनाओं में

विद्यमान है। उसकी सोच और समझ को व्याख्यायित करते हुए एक बेहतर देश और समाज का सपना इनमें निहित है।

यहाँ लालित्य ललित की अब तक की व्यंग्य यात्रा के सभी व्यंग्यों की चर्चा संभव नहीं है फिर भी उनके दोनों संग्रहों से कुछ पंक्तियाँ इस आश्य के साथ प्रस्तुत होनी चाहिए कि जिनसे उनके व्यंग्यकार का मूल भाव प्रगट हो सके। पहले व्यंग्य संग्रह से कुछ उदाहरण देखें 'आप भारतीय हैं यदि सही मायनों में, तो पड़ोसी से जलन करना, खुन्नस निकालना आपका जन्मसिद्ध अधिकार है।' 'जमाना चतुर सुजानों का है।

मक्खन मलाई का है, हां जी, हां जी का है, अगर आप यह टेक्नीक नहीं सीखोगे तो मात खा जाओगे, दुनियादारी से पिछड़ जाओगे।' 'मगर यह बॉस किसिम के जीव जरा घाघ प्रजाति के होते हैं, जो न आपके सगे होते हैं और संबंधी तो बिल्कुल नहीं।' 'सांसारिक लोगों का हाजमा होता ही कमजोर है।' 'इन दिनों बड़ा लेखक छोटे को कुछ नहीं समझता तो छोटा लेखक बड़े को बड़ा नहीं समझता, हिसाब-किताब बराबर।'

'जो लेते हैं मौका, वही पाते हैं चौका।' 'यह हिंदुस्तान है, यहाँ कुछ भी हो सकता है। अंधे का ड्राइविंग लाइसेंस बन सकता है। मृत को जीवित बनाया जा सकता है।' 'यही तो भारतीय परंपरा है हम एक बार किसी से कुछ उधार लेते हैं तो देते नहीं।' आदि कुछ उदाहरण दूसरे व्यंग्य संग्रह से 'विलायतीराम पांडेय ने सोचा पल्ले पैसा हो तो साहित्यकार क्या, मंच क्या, अखबार क्या कुछ भी मैनेज किया जा सकता है।'

'घूस देना आज राष्ट्रीय पर्व बन चुका है। अपने दिए आपकी फाइल चल पड़ी और नहीं दी तो आपका काम अटक गया, भले ही आप कितने बड़े तोपची हों।' 'एक वो जमाना था, एक अब जमाना है। बच्चे पहले तो सुन लेते थे, पर अब लगता है जैसे हम भौंक रहे हैं और वह अनसुना करने में यकीन करते हैं।'

'कामवाली बाई भी वाट्सअप पर बता देती है, आज माथा गर्म है, मेमसाब, नहीं आ पाऊंगी, बेशक पगार काट लेना। 'बाजार में नोटबंदी के चलते कर्फ्यू-सा माहौल था।' 'अब देश के नेता बाढ़ में जाने के बजाय अपना दुःख ट्विटर पर व्यक्त कर देते हैं। 'मंदी ने बजाया आज सभी का बाजा, लेकिन राजनेताओं का कभी नहीं बजता बाजा, पता नहीं वो दिन कब आएगा।' 'नंगापन क्या समाज के लिए, अनिवार्य योग्यताओं में शामिल एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। कितने पोर्न पसंदीदा हो गए हम।'

आदि उदाहरणों से जाहिर है कि उनके यहाँ विषय की विविधा के साथ समसामयिक स्थितियों से गहरी मुठभेड भी है। वे साहित्य और समाज के पतन पर चिंतित दिखाई देते हैं और साथ ही जनमानस की बदलती प्रवृतियों और लोक व्यवहार को रेखांकित करते हुए कुछ ऐसे संकेत छोड़ते हैं जिन्हें पाठकों को पकड़ना है। वे अपनी बात पर कायम है कि उनका कोई भी मजाक हिंसक नहीं है वरन वे अहिंसा के साथ उस रोग और प्रवृत्ति को स्वचिंतन से बदलने का मार्ग दिखलाते हैं।

लालित्य ललित के पास गद्य का एक कौशल है जिसके रहते वे किसी उद्घोष की भांति अपनी बात कहते हुए आधुनिक शब्दावली में अपने आस-पास के बिम्ब विधान के साथ नए रूपकों को निर्धारित करने का प्रयास करते हैं। काफी जगहों पर हम व्यंग्य में कवि के रूप में 'यमक' और 'श्लेष' अलंकारों पर उनका मोह भी देख सकते हैं। एक उदाहरण देखें 'बॉस यदि शक्की है तो आपको 'ऐश' हो सकती है, बच्चन वाली 'ऐश' नहीं।

नहीं तो अभिषेक की ठुकाई के पात्र बन सकते हैं।' ('जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग', पृष्ठ 35) वे व्यक्तिगत जीवन में खाने और जायकों के शौकीन हैं तो उनके व्यंग्य में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ उनकी इस रुचि के रहते हमें मजेदार परांठों और पकौड़ों के बहुत स्वादिष्ट अनुभव ज्ञात होते हैं।

नमकीन और मिठाई पर उनकी मेहरबानी कुछ अधिक मात्रा में है कि वे अपनी पूरी बिरादरी का आँकलन भी प्रस्तुत करते हैं 'शुगर के मरीज लेखक लगभग अस्सी पर्सेंट हैं पर

मुफ्त की मिठाई खाने में परहेज कैसा!' ('विलायतीराम पांडेय',) विलायतीराम पांडेय उनके लिए सम्मानित पात्र है और वे उसे यत्र तत्र 'नत्थू' बनने की प्रविधियों में बचाते भी हैं। भारतीय पतियों और पत्नियों के संबंधों में मधुरता होनी चाहिए इस तथ्य की पूर्ण पैरवी करते हुए भी पतियों और पत्नियों की कुछ कमजोरियों को भी वे बेबाकी के साथ उजागर भी करते हैं।

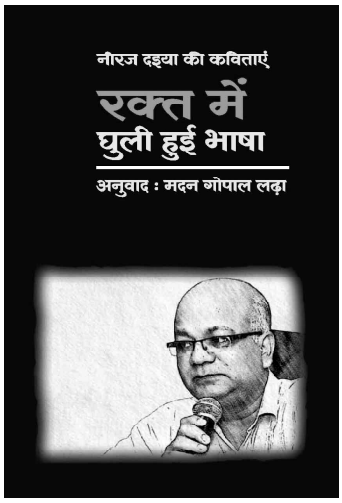

जैसे संग्रह 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग' के दो उदाहरण देखिए 'अधिकतर मर्द जिनकी प्रायः बोलती घरों में बंद रहती है, यहाँ नाई की दुकान पर उनकी जबान कैंची की तरह चलती है।' 'शादीशुदा है यानी तमान बोझों से लदा-फदा एक ऐसा आदमी, जिसकी न घर में जरूरत है और न समाज में।'

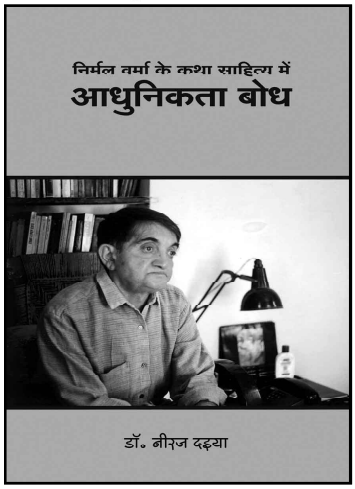

दूसरे संग्रह 'विलायतीराम पांडेय' से 'जिंदगी में क्या और किस तरह एक पति को पापड़ बेलने पड़ते हैं यह पति ही जानता है, जो दिन रात खटता है।' 'हे भारतीय पुरुष! तू केवल खर्चा करने को पैदा हुआ है। खूब कमा, पत्नियों पर खर्चा कर। बच्चों के लिए ए.टी.एम. बन।' 'हद है यार, महिला दिखी नहीं कि छिपी हुई सेवा भावना हर पुरुष की उजागर हो जाती है।' लालित्य ललित के व्यंग्यों में प्रयुक्त अनेक उपमाएँ रेखांकित किए जाने योग्य है। वे परंपरागत उपमानों के स्थान पर नए और ताजे उपमान प्रयुक्त करते देखे जा सकते हैं। यह नवीनता बाजार की बदलती भाषा और रुचियों से पोषित है।

वे एक ऐसे युवा चितेरे हैं जिन्हें अपनी परंपरा से गुरेज नहीं है तो साथ ही अति आधुनिक समाज की बदलती रुचियों और लोक व्यवहार से अरुचि भी नहीं है।

हालाँकि वे कुछ ऐसे शब्दों को भी व्यंग्य में ले आते हैं जिनसे आमतौर पर अन्य व्यंग्यकार परहेज किया करते हैं अथवा कहें बचा करते हैं। 'मेरा भारत महान, जहाँ मन हो थकने का और जहाँ मन हो मूतने का, कही कोई रूकावट नहीं है।' ('जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग', ये अति आवश्यक और सहज मानवीय क्रियाएँ हैं। सभी का सरोकार भी रहता है फिर भी उनके यहाँ शब्दों की मर्यादा है और वे संकेतों में बात कहने में भी सक्षम है 'हम भारतीय इतने प्यारे हैं कि अपने शाब्दिक उच्चारण से किसी का भी बी.पी. यानी रक्तचाप तीव्र कर सकते हैं या आपकी चीनी घटा सकते हैं।'

'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग', पृष्ठ 17) अंत में यह उल्लेखनीय है कि लालित्य ललित के व्यंग्य अपनी समग्रता और एकाग्रता में जो प्रभाव रचते हैं, वह प्रभावशाली है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि वे संभवतः पृथक-पृथक अपनी व्यंजनाओं से हमें बेशक उतना प्रभावित नहीं करते भी हो किंतु धैर्यपूर्वक पाठ और उनकी सामूहिक उपस्थिति निसंदेह एक यादगार बनकर दूर तक हमारे साथ चलने वाली है। विविध जीवन स्थितियों से हँसते-हँसते मुठभेड करने वाला उन्होंने अपना एक स्थाई और यादगार पात्र रचा है।

अब आप ही बताएं कि हिंदी व्यंग्य साहित्य की बात हो तो कोई भला विलायतीराम पांडेय को कैसे भूल सकता है।

ललित के व्यंग्य : ज़िंदगी का कोलाज

अरविंद तिवारी

मैं लालित्य ललित को एक कवि के रूप में ही जानता आया हूँ। उनके तीस से ऊपर काव्य संग्रह आये हैं, जो रोजमर्रा की ज़िंदगी को व्याख्यायित करते हैं। कई वर्ष पूर्व उन्होंने एक काव्य संकलन "चूल्हा उदास है" मुझे भेंट किया था जिसमें आम आदमी का जीवन व्यक्त हुआ है।

मैं उन्हें शौकिया व्यंग्यकार मानता रहा हूँ, पर शिकोहाबाद की शब्दम संस्था के कार्यक्रम में जब उन्होंने "विलायती राम पांडेय और सरकारी डिस्पेंसरी" शीर्षक व्यंग्य पढ़ा तो श्रोताओं से खूब सराहना मिली। इस व्यंग्य में सरकारी चिकित्सा व्यवस्था पर कड़े प्रहार हैं। मैं भूमिका लिखने और लिखवाने के कतई पक्ष में नहीं हूँ और न आज तक किसी से भूमिका लिखवाई है। कृष्ण कुमार आशु के एक व्यंग्य संग्रह को छोड़कर मैंने आज तक कोई भूमिका नहीं लिखी है, इसलिए जब ललित जी ने बहुत आग्रह किया तो टालने की कोशिश की पर आत्मीय आग्रह ने निर्णय बदलवा लिया।

हर व्यंग्यकार का अपना अलग तेवर होता है। ललित के व्यंग्य लेखन की विशेषता यह है कि वह अपने परिवेश और निजी ज़िंदगी को लेकर व्यंग्य का ताना-बाना बुनते हैं। जो है सो है भले ही व्यंग्य में कोई चमत्कार पैदा न करे पर वह जीवन की विसंगतियों को इस ढब से पकड़ता है कि लोग तिलमिला उठते हैं।

कहीं-कहीं ललित के व्यंग्यों की प्रहार क्षमता उल्लेखनीय है। उनके व्यंग्य लेखन की सबसे महत्वपूर्ण बात जीवन से व्यंग्य की संपृक्तता है। उनके इस व्यंग्य संग्रह से गुजरते हुए पांडेय जी, चिलमन, लपकूराम, रामखेलावन, राधेलाल, मधुवाला, पुनिया आदि पात्रों से बार-बार मुलाक़ात होती है। दरअसल इस संग्रह के सभी व्यंग्य इन्हीं पात्रों का आलम्बन लेकर लिखे गए हैं। शायद यही कारण है कि ये बेहद रोचक है। किसी व्यंग्य को पढ़ते हुए लगता है, जैसे जीवन को दार्शनिक अंदाज में पढ़ रहे हों! हालाँकि इन व्यंग्यों में फेंटेसी नहीं है, पर पाठक को उसकी प्रतीति होती है। शीर्षक, विषयवस्तु, विसंगति, सामाजिक सरोकार, प्रहारा क्षमता, भाषा शैली कुल पांच व्यंग्य तत्वों में से ज्यादातर का निर्वाह ठीक-ठाक हुआ है। केवल प्रहार पक्ष थोड़ा कमज़ोर दिखता है, पर यह शुरुआती संकलनों के हिसाब से ही है। भविष्य में ललित जी से और बेहतर संकलनों की उम्मीद है।

"मौसम की बेरुखी" व्यंग्य में लेखक कहता है "बारिश किसी बेरुखी प्रेमिका की तरह है...वह कोई मेट्रो थोड़ी है जो सबको मिलाती हुई चली आती है।" मेट्रो लाइनों पर लिखते हुए लेखक कहता है अच्छा है, लाइनों में घिरा आदमी केलक्युलेटिव रहता है।

'पांडेय जी और घर की जिंदगी' में लेखक पत्नी के मुँह से कहलवाता है "आप जो हिंदी वाले हैं, सब एक दूसरे को अम्बानी अडानी बनाते रहते हो। जब लेखक कहता है" हालात इतने विकट हैं कि किसी का बस चले तो मुर्दे से भी आप पैसे माँग लो तो देश की रिश्वतखोरी की भयावहता का पता चलता है।

फेसबुक के बारे में लेखक कहता है आदमी किसी को ब्लॉक क्यों करता है, या तो उसके अस्तित्व को ख़तरा है या वह इतना विक्षिप्त हो चुका है कि उसकी सोचने समझने की शक्ति चूक गयी है।

सियासत को थोड़ा कचोटते हुए व्यंग्यकार कहता है सत्ता पक्ष के गलियारे में यह सवाल उठाया कैसे जाए, कौन सुनेगा। सबके कानों में इयरफ़ोन लगा हुआ है, मद का। कहीं- कहीं ललित की उपमाएँ अनूठी और रेखांकित किये जाने योग्य हैं पंखा चल रहा है, जैसे किसी प्रौढा स्त्री का प्रेमी उसे सुंदरकांड की चौपाइयां सुना रहा हो। और प्राउड फील करती हुई प्रौढा भी ऐसे सुन रही है, जैसे उसके सामने मोहम्मद रफ़ी के गीत तलत अज़ीज सुनाने की कोशिश कर रहे हों।

किसी किसी व्यंग्य में लेखक ने शब्द चित्रों को बड़ी बारीकी से उकेरा है। हाँ तो मैडम नमस्कार! मैं सीधी बात से रामखेलावन।

यह बताइए आप कितनी देर से ट्रैफिक और जल-भराव में फंसी हुई हैं। क्या कहना चाहती हैं।

उक्त महिला ने पहले पर्स खोलकर लिपिस्टिक लगाई और फिर आई लाइनर लगाने के बाद कहा प्देखिये फंसना तो हम महिलाओं का केंद्रीय पक्ष है। बहरहाल पानी किसे अच्छा नहीं लगता, मुझे भी लग रहा है। अनेक व्यंग्य लेखों में लेखक ने 'विट' का बेहतरीन इस्तेमाल किया है।

1. लपकूराम इतने विनम्र थे कि आपको छूते ही आपको विनम्र कर दें।

2. क्या आपकी पत्नी भी उदार भाव से खाने को दौड़ती है कभी-कभी।

3. सड़कें हर बारिश में प्रेमिका के रूमाल की तरह हवा में उड़ जाती हैं।

4. कवियों के काव्य पाठ के टेंडर निकलते हैं।

5. कुछ लोग खासी उम्र पार कर चुके हैं लेकिन उनके मोबाइल का बिल उतना ही आता है, जितना गर्मियों में हमारे बिजली के बिल।

6.जब पैसा व्यवस्था के पास चला जाता है तो सतर्कता विभाग आँखें मूंद लेता है।

7. आपके स्वास्थ्य को देखते हुए दिन के पीक आवर्स में एक्सक्लेटर बंद रखे जाएँगे।

8. सुबह आपका पेट साफ़ नहीं हुआ तो काहे के धन्नासेठ।

9. ऊपरवाला जानता है किसकी हार्ड डिस्क बिठानी है और किसकी एक्टिव मोड़ पर रखनी है।

10. आजकल बढ़िया संस्थान से डिग्री हो तो बात बनती है नहीं तो भईये जूस बनाओ या मैंगो शेक। इस संग्रह में अधिकांश व्यंग्य प्रसंग वक्रता पर आधारित हैं, इसलिए सीधे-सीधे हथौड़ा नहीं मारते।

सभी जानते हैं कि "भूमिका" शब्द "समीक्षा" का पर्यायवाची नहीं है। भूमिका में पुस्तक की विशेषताओं की चर्चा ही होती है फिर भी मैं कहना चाहूँगा इस संग्रह में

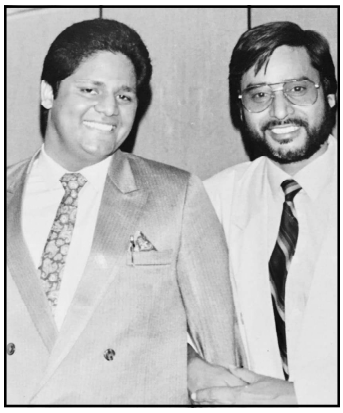

सियासत पर व्यंग्य नहीं हैं, जो समकालीन व्यंग्य का मुख्य विषय है। हो सकता है नौकरी के कारण लेखक ने शामिल न किये हों। इसके अतिरिक्त यह भी कहना चाहूँगा कि सामाजिक व्यंग्य घर परिवार और कार्यालय से आगे तक जाने चाहिए। संग्रह के प्रकाशन हेतु ललित जी को बहुत बधाई।

एक बार चख तो लो पांडेयजी के लड्डुओं का स्वाद!

प्रो. बल्देव भाई शर्मा

व्यंग्य की राह बड़ी दुरूह है। व्यंग्य कब केवल हल्का हास्य बनकर रह जाएगा और कब तक इतना शुष्क व सपाट हो जाएगा कि उसमें वह रस और धार ही न रहे कि पाठक उसे व्यंग्य माने, इस भेद और मर्यादा को समझ जाना ही प्रेम जनमेजय हो जाना है। अपने को इन्हीं प्रेम का जी पट्टशिष्य होने की दुंदुभी बनाने वाले लालित्य ललित युवा पीढ़ी के व्यंग्यकारों में स्वायित नाम है, अब ये अलग बात है कि वह अभी भी अपने को युवा मानते हैं कि नहीं। प्रेम जी ने ललित को व्यंग्य लेखन का दिशा दर्शन दिया, यह तो समझ में आता है, पर ऐसी क्या ऊर्जा भर दी उन्होंने ललित में कि एक भीषण लिक्खाड़, व्यंग्यकार पैदा हो गया।

ललित की यह खूबी अप्रतिम है। उनके 19 व्यंग्य संग्रह आ गए हैं और प्रतिदिन उनका व्यंग्य स्तंभ छपता है। प्रेम जी ऊर्जा का स्रोत बताएंगे तो न जाने कितनों को लाभ होगा।ललित के व्यंग्य की विशेषता है कि वह कथा क्रम में होते और उनके रूपक आस पास के जनजीवन से उठाए जाते हैं। इसलिए उनकी स्वीकार्यता भी बढ़ती है। ८

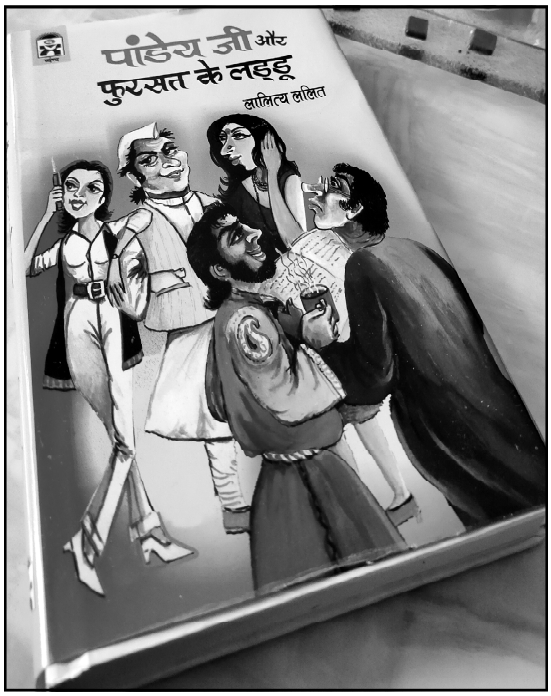

यंग्य का शीर्षक हो या काव्य, बड़ा सहज सा लगता है, उसमें बौद्धिकता नहीं झलकती पर पढ़ते-पढ़ते अचानक कहीं चोट कर जाती है। हाल ही उनका एक व्यंग्य पढ़ा, पांडेय जी अपने एक प्रकाशक मित्र से फोन पर बात करते हुए कहते हैं, 'ये चैनल वालों को सच्ची कोई काम नहीं। सभी चिल्लाने वाले पत्रकारों को बार्डर पर भेज दो। पता चल जाएगा कि देशभक्ति टेलिविजन पर चिल्लाने वाले से नहीं होती।

उनका एक व्यंग्य संग्रह है 'पांडेय जी और फुरसत के लड्डू' लॉकडाउन ने पढ़ने-लिखने की रूचि वाले लोगों को इसका खूब अवसर दिया। इस बीच मुझे अन्य कुछ पुस्तकों के साथ ललित की इस किताब को पढ़ने का भी अवसर मिला। इसमें 25 व्यंग्य हैं और पांडेय जी हर जगह विराजमान है।

अलग-अलग बहारों से सामाजिक विसंगतियों पर चोट करते हुए, तगड़ी चोट धीरे से की मुद्रा में :- परीक्षा केंद्र, खर्च होती जिंदगी, घरेलू पंगे, हिंदी का भूत, वक्त का अहसास, महान लोगों को नमस्ते, कुत्तों जी का संवाद और भी बहुत से रोजमर्रा के हालात, पांडेय जी हर अहसास के साथ मौजूद हैं हर कथा-क्रम पाठक को गुदगुदाता है, पर चिकोटी भी काटता है कहीं-कहीं। यह व्यंग्य की खासियत है।

आजकल एक फैशन चल पड़ा है विशेषकर 'स्टैंडअप कॉमेडी' में चाहे वह मंच पर हो या टेलिविजन पर हास्य उत्पन्न करने के लिए फूहड़ स्थितियों व फूहड़ शब्दों का प्रयोग।

कभी-कभी तो 'बिलो द बेल्ट' जैसा। कोई-कोई, देखने-सुनने वाले संकोच से इधर-उधर निगाह घुमाने लग जाते हैं। लेखन में भी इस फूहड़पन या शब्द प्रयोग से बचना चाहिए। लड्डू खाते-खाते पांडेय जी भी इस मामले में एकाध बार भटक गए हैं।

अब देखना पड़ेगा कि लड्डू में कहीं भांग तो नहीं मिली है। बहरहाल लेखन का भाव समाज की रूचि का परिष्कार करना भी है, उसे विकृत करना नहीं चाहे वह हास्य-व्यंग्य ही क्यों न हो।

इस संग्रह के व्यंग्य में पांडेय जी के साथ अन्य पात्र और घटना-प्रसंग देखे-सुने से होने का अहसास देते हैं, यह पाठक को पढ़ने के लिए खींचता है। ललित के व्यंग्यों की यह विशेषता है।

पर पढ़ते-पढ़ते यह भी डर रहता है कि किसी दिन की हमारी कोई बात तो नहीं लिख मारी। इसलिए लेखक से व्यवहार में संयत रहने की जरूरत है विशेषकर उन्हें जिनका सामना ललित से आए दिन पड़ता है। हालांकि गुरू ने चेले को लेखन में व्यक्तिवादी न होने की सीख जरूर दी है इस पुस्तक के शुरू में।

पर वो व्यंग्यकार ही क्या जो खिंची लीक पर चले। अभी भले ही अनलॉक-2 शुरू हो गया है, फिर भी 'न्यू नॉर्मल' के दौर में भी ज्यादा से ज्यादा घर में रहना ही फायदे का सौदा है, सो मित्रों इस फुरसत में पांडेय जी के लड्डू चखना आनंदित करेगा, स्वाद लगे तो पूरे खा सकते हैं क्योंकि पांडेय जी खुद खाने-पीने के बेहद शौकीन हैं और हर रचना में आपको ऐसा कुछ न कुछ स्वाद जरूर मिलेगा।

आज ज्यादा रम गए तो हो सकता है पांडेयजी एक प्लेट में 'क्रंची पनीर' लेकर हाजिर हो जाएँ। ललित को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ, उनका लेखन और सशक्त हो, यशस्वी हो।

ये पुस्तक उन्होंने मेरे नाम समर्पित भी की है, इसलिए इतना लिखना तो बनता है।

दरवाजे

लेखक : डॉ. संजीव कुमार

हम दरवाजे खुले रखें या बंद
किंतु खिड़की खुली रखना चाहिए।

खुली खिड़की से ही आती है,
जीवन की रोशनी
साँसों को पावन
और मन के संगीत को–
सजाने वाले शब्द।

मौसम का क्या?
रहे न रहे।
लेकिन आशा का दीप जलता रहे।

खिड़की से आती उजास
हमें जोड़ती है दुनिया से।

सरसराते पत्तों की आवाज
उनका नृत्य
पेड़ के नीचे खड़ी गाय
घास पर लेट कुत्ता
और पगडंडी पर बतियाती औरतें
केवल खिड़की से दिखती हैं।

बंद खिड़की से हम पाते हैं
अपना जीवन–
औरों से भले हट के–
एकांत और निजी
पर नितांत अकेला।

(अपराजिता पुस्तक से)

जीवन की आकृति उकेरने वाला कुशल चितेरा

रमेश सैनी

साहित्य के परिदृश्य में व्यंग्य की व्यापकता पाठकीय प्रभावोत्पादक के आर्कषण ने व्यंग्य को सबसे महत्वपूर्ण बना दिया है। इसके पीछे पाठक और लेखक पगलाए हुए हैं। पाठक अखबार या पत्रिका में सबसे पहले व्यंग्य का स्तंभ ढूँढता है। पाठक इसे पढ़ कर अपने आस-पास व्याप्त दुनिया पाता है। कभी-कभी वह लेख में अपना संसार पा जाता है। तब वह एक बैचेनी से राहत महसूस करता है। व्यंग्य के पाठक के लिए यही महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसी प्रभाव के कारण अन्य विधा के लेखकों ने इसमें हाथ साफ करना शुरू किया।

इस कारण व्यंग्य लेखन में अति अराजकता व्याप्त है, जो व्यंग्य के नाम पर कुछ भी लिखे जा रहे हैं। और ताल ठोक कर कहते हैं, यह है व्यंग्य। और जो लेखक व्यंग्य की प्रकृति और प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर व्यंग्य में अपनी उपस्थिति से सबको (लेखकों और पाठकों) को चौकाया है, उनमें महत्वपूर्ण नाम है।

'लालित्य ललित' का आज लालित्य के व्यंग्य को जो भी पढ़ रहा है, वह चौक रहा है, कारण लालित्य ललित मानवीय संवेदनाओं से भरे हुए मूलतः संवेदनशील कवि हैं। जो परिवार में समाज में समाहित छोटी छोटी संवेदनाओं को शामिल कर अपनी कविता को गढ़ते है। और वे न ढोल पीटते है कि वे बड़े या महत्वपूर्ण कवि है, और न उसे अपनी पहचान की चिंता है, बस लालित्य ललित अपना काम सूफियाने ढ़ंग से किये जा रहे हैं।

यही एक वजह है कि ललित के पास कविता की पुस्तकों की एक खासी संख्या है। इसी सूफियानी प्रवृत्ति ने उसे व्यंग्य की ओर मोड़ दिया। व्यंग्य की बारीकियाँ, प्रकृति और प्रवृत्ति को पढ़कर ललित ने व्यंग्य गढ़ना सीख लिया है। आज उनके खाते में व्यंग्य के अनेक संग्रह हैं।

लालित्य ललित कवि हैं, जो कविता को जीवन की विभिन्न विसंगतियों और संवेदनाओं के ताने-बाने को बारीकी से बुनते हैं, यह बुनाव उन्हें पाठक के पास ले जाता है।

यह इनकी कमजोरी भी हो सकती है और खासियत भी बस यही खासियत इनके व्यंग्य में ट्रांसफर हो गयी है, जो एक अलग शैली के रूप में जाने जानी लगी है। अपने व्यंग्य में परिवार, समाज, ऑफिस, बाजार, मित्रों की प्रवृत्तियों, उनके मिजाज, बच्चों की छोटी-छोटी बातें, से विसंगतियां, प्रवृत्तियां मानसिक स्थिति से अपने व्यंग्य के विषय बनाते है, जहाँ अन्य व्यंग्य रचनाओं में बड़े-बड़े सवाल, बड़ी समस्या से पाठक का मन और मतिष्क थकान महसूस करता है, वहीं ललित के व्यंग्य 45 डिग्री गर्मी के बाद हल्की बौछार सी राहत पहुँचाते हैं, यही इनके व्यंग्य का विशेष गुण है, और यही विशेषता उनके पाठकों की संख्या में बढ़ोत्तरी करता है।

उनकी रचनाओं में आम जिंदगी की परेशानियां, खुशियाँ मानवीय मूल्यों और आम आदमी के फलसफे को आसानी से पढ़ा जा सकता है। उनकी शैली और भाषा सहज और सरल है, जैसा कि आम लेखक अपनी बौद्धिकता बखारने के चक्कर में कठिन शब्दों और लम्बे वाक्यों का सहारा लेता है, पर लालित्य ललित इन सबसे बच कर अपना मन्तव्य पाठक तक आसानी से पहुँचा देते हैं।

एक बात और जो उन्हें अन्य लेखक से अलग करती है, वह है, अपने लेख में एक कंटेंट को लम्बा नहीं खींचते हैं और अन्य कंटेंट में शिफ्ट कर जाते है और यह विशेषता पाठक को बोरियत, ऊब से ऊबार लेती है। उनकी रचनाओं में आम जीवन में व्याप्त लम्बे अनुभव के बाद लिए गए हैं।

संग्रह के लेख 'आप पांडेय जी बोल रहे हैं' का सूत्र

वाक्य जो आदमी दूसरे के घर में मुँह मारता है, वह कहीं का नहीं रहता है। यह कहावत लम्बे अनुभव के बाद सर्वव्याप्त है, पर रचना में इसका उपयोग प्रभावी ढंग से सही स्थान पर किया गया है। यह आम प्रवृति है कि व्यक्ति अपनी आदत से बाज नहीं आता है। लेखक पहले कवि है और अपनी इच्छा पर संयम नहीं रख सका और अपनी कविता घर का उपयोग रचना में कर लिया, पर यह जबरदस्ती/जबरन नहीं वरन लेख में सटीक बैठता है और यह कविता लेख का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है।

कविता की एक लाइन पूरे लेख को एक ऊँचाई प्रदान कर जाती है, 'बाबू ने कहा, अपनी जड़ों में अभी भी जल है। देखो तो कैसा बरगद खड़ा है, अब इस पर विस्तार से जाने की जरूरत नहीं है सभी इसके संकेत को समझ रहे हैं। यह लेखक की दृष्टि है जो आगे देखती है। पांडेय, सर्दी और मारे गए गुलफाम में जीवन से जुड़ी एक कठिन परिस्थिति पर एक शानदार पंच जैसे सर्दी किसी भी बंदे की ढिबरी टाइट करने में सक्षम है, इसी लेख में एक वाक्य मन को छू जाता है चिलमन तिलकुट लाने के संबंध में कहता है, मुझे लाना ही था, अपनों के लिए लाना चुभता कहाँ है, यह एक वाक्य हमारी परम्परा, स्नेह, और संस्कृति को बहुत ही सरलता से परिभाषित कर जाता है। इसे लेखक की चतुराई कहें या उसका सीधापन, जो गंभीर बात को सहजता से कह जाता है।

इससे लेखक के विजन को आसानी से नापा जा सकता है। 'पांडेय जी और अनुशंसा की बीमारी' पर लेखकों की पुरस्कार पाने की अभिलाषा और उसके लिए जोड़ जुगाड़ की प्रवृत्ति और आत्ममुग्धता पर शानदार पंच 'जमाना इतना खराब है कि उस्ताद लोगों को लगता है कि ब्रेड पकौड़ा बनाना आ गया तो वो मास्टर शेफ हो गया' अनेक लेखक इसी भ्रम में जी रहे हैं। इसी में एक मास्टर स्ट्रोक पंच है, किसी भी कानून की अवहेलना करना हर भारतीय का जन्मसिद्ध अधिकार है। यह लेखक के विजन का ही परिणाम है कि उसकी छोटी-छोटी चीजों पर नज़र है, और समय पर समाज के समक्ष उजागर भी कर रहा है। इसी तरह वह सरकारी तंत्र पर तंज कसते हुए अपने लेख पांडेय जी की दुनिया और दुनियावी फंडे में कहता है, अपनी गाड़ी पर भरोसा करें, सड़क पर नहीं और इसी लेख में राजनीतिक दृष्टि पर सटीक तंज, सड़क पर भरोसा और नेताजी के कथन पर कुछ भी नहीं होता। इसी संग्रह में लेखक कविता का लोभ संभरण पर नियंत्रण नहीं कर पाया, जो नयी दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के बहाने में लेखक कहता है कि, मेले में ठेले हैं, ठेलों में सपने हैं।

लोकार्पण के अवसर पर लेखक की मनोस्थिति पर कहता है, लोकार्पण है, पुस्तकें पन्नियों से निकल रही हैं, लेखक मुस्कुरा रहा है, इतना शादी और सगाई के वक्त भी नहीं मुस्कुराया होगा। समग्र पुस्तक से गुरजने के बाद पाठक को राहत सा आभास होता है कि उसने अपने व्यंग्य में समाज को बदलने, विसंगतियों को रेखांकित करने के बड़े दावे नहीं किए हैं, जबकि व्यंग्य का लेखक इस अवसर पर चूकता नहीं हैं। और यही लेखक की सफलता का पैमाना भी है।

लालित्य ललित की रचनाओं से गुरजने के बाद के बाद ऐसा महसूस होता है, उनमें आर्द्रता का स्थायित्व है, जिनमें कुछ भी अंकुरित होने की संभावना है, जो मन मतिष्क को कूल कूल करती है।

लालित्य ललित के इस संग्रह के अलावा भी स्तंभ और अन्य व्यंग्य संग्रहों से गुरजने के बाद मुझे यह लगता है किए परिवार, मित्र, आस-पास के विभिन्न वर्ग की विसंगतियाँ और लोगों की प्रकृति, प्रवृत्ति पर बारीक दृष्टि है, और उन्हें ही अपनी रचनाओं का पात्र बनाया है। पर उनके पास बड़ा दृष्टि फलक है, अब मानवीय सरोकारों, राष्ट्रीय स्तर की विसंगतियों, विडम्बनाओं, प्रवृत्तियों को व्यंग्य के बड़े कैनवास पर अपने टूल्स का उपयोग करना होगा, मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि बड़े कैनवस पर उकेरी आकृतियाँ शीघ्र देखने मिलेंगी जिससे लालित्य ललित के यश का फलक में विस्तार और वृद्धि होगी।

लालित्य ललित के व्यंग्य और उसकी भाषा

विनोद साव

व्यंग्य का एक भारतेंदु युग था जिसमें अंग्रेजों के पास उनका क्रूर शासन था और हमारे पास एक शस्य श्यामला धरती थी जिसके प्रेम में सुबुक सुबुक होता भारतीय हृदय था जो अपनी आत्मा की चीत्कार से कभी रूदन करता था 'हा...हा...भारत दुर्दशा देखि न जाई' तो कभी अपनी सारी भक्ति शक्ति बटोरकर किसी असेम्बली में बम फेंक उठता था' फिर दूसरा युग आया जो पर शासन और स्व शासन के बीच बने सेतु पर खड़ा था अपने स्वप्नलोकों और स्वप्नभंगों की पोटरी लिए हुए।

ये तौलते हुए कि तब अच्छा था कि अब अच्छा है। उनके चश्मों के शीशों के ऊपर स्वाधीनता संग्राम का 'पॉवर' था और नीचे भारतीय गणतंत्र का 'बायफोकल' था। इन शीशों से जो भी ऊपर नीचे उन्हें दिख रहा था उन्हें दुरुस्त करने के लिए उनके प्रहार ज़ारी थे। व्यवस्था को लेकर यहाँ ऊपर नीचे हुए अनेक भ्रमों और संदेहों ने इस युग की लेखनी को शक्तिशाली और प्रहारक बनाया।

इस युग ने परसाई और शरद जोशी जैसे निष्णात लेखकों की समृद्ध परम्परा कायम की। इनके बाद बीसवीं शताब्दी के अतिम दशकों में हिन्दी व्यंग्य में ज्ञान चतुर्वेदी का प्रतिनिधित्व उभरा तब उनके समकालीनों ने परसाई जोशी की परम्परा को श्रेयस्कर माना। इन दशकों में कुछ नए ज्ञान का संचार हुआ और इन्होंने हिन्दी व्यंग्य में प्रयोगवादी चमक पैदा की। इसी चमक के साथ प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्य-यात्रा' पत्रिका निकाली जिसमें उनके लेखक मित्रों का सहयोग जारी है।

अब हम दो दशकों से इक्कीसवीं शताब्दी के नए युग में प्रवेश कर चुके हैं जिन्हें अब डिज़िटल इंडिया कह कर प्रचारित किया जा रहा है। यहाँ व्यंग्य की विगत समृद्ध परम्पराएँ गायब हैं। न भारतेंदु की परम्परा है न परसाई की और न ज्ञान की। अब यह नई शताब्दी अपनी कोई दूसरी परम्परा का मार्ग खोज रही है और इसके लिए उसकी कवायद ज़ोरों पर है। इस नवागत परम्परा का संभावित मार्ग व्यंग्य को कहाँ ले जाकर छोड़ता है इसका निर्धारण होना अभी शेष है! 'जैसा देस वैसा भेस' का मुहावरा रचना पर भी लागू होता है।

देश अगर दिल्ली में चलने वाले 'फटफट' की तरह है तो उस देश में लिखी जाने वाली रचनाएँ भी फटफट होंगीं। विकास की रफ़्तार इस फटफट से फटाफट की ओर बढ़ेगी तब उसके लेखक को भी फटाफट लिखना होगा, छपना होगा, पाठकों की प्रतिक्रिया फटाफट आनी चाहिए।

आज जो तेजी से बदलता युग है जिसमें रचना में व्याप्त स्थिति या कहें उसकी सामयिकता के बदल जाने का खतरा रोज-रोज मंडरा रहा हो वहाँ लेखक के लिए चौकन्ना रहने और उनसे भिड़ने की दोहरी ज़िम्मेदारी पहले से कहीं अधिक बढ गई है। चूंकि यह डिज़िटल युग है और यह कितना डिज़िटल हुआ जा रहा है उसका परिणाम आने को शेष है। अभी इस डिज़िटल युग के भ्रम और संदेहों की लचकदार पुलिया के बीच जो लेखक खड़ा है।

उसे सामने देखना है और आगे बढ़ना है। पीछे वह पलटकर फिर आगे देखता है तब तक एक 'क्लिक' से दुनिया उसके मोबाइल पर आईं मैसेजों की तरह बदल चुकी होती है। उसके सामने सहमति असहमति के लिए अनेक निर्णय लंबित पड़े हैं जिन पर त्वरित कार्यवाही करके उसे अपने व्यंग्य के लिए प्रेरक तत्व निकालना है।

प्रसिद्ध नाटककार विजय तेंदुलकर ने मराठी भाषा पर आए अभिव्यक्ति के संकट पर एक बार कहा था कि 'भाषा के सामने संकट हो सकता है पर बोलने वाले के सामने संकट नहीं होता। अगर भाषा समय सापेक्ष नहीं हुई और

बोलने वाले के साथ दूर तक नहीं चली तब बोलने वाला अपनी अभिव्यक्ति के दीगर रास्ते खोज लेगा।' उसी तरह संकट साहित्य की किसी विधा के सामने आ सकता है पर लिखने वाले के सामने नहीं। अगर विधा ने लेखक का साथ नहीं दिया तब लेखक अपनी अभिव्यक्ति के दूसरे विकल्प तलाश लेगा। लेखक लिखता चलता है। यह चिंता करने की अनिवार्यता उसके साथ नहीं है कि वह लेखन के किस पैमाने पर कितना खरा उतर रहा है और उसका लेखन किसी विधा विशेष के साथ कितना न्याय कर पा रहा है। ऊहापोह की इस स्थिति में यह बात भी कही जा चुकी है कि अंततः 'शास्त्र रचना का अनुगमन करते हैं। रचनाएँ शास्त्र का अनुगमन नहीं करतीं।'

इसलिए किसी लेखक को प्रेमचंद या परसाई के डंडे से नहीं मारा जा सकता। रचना के अनन्त संसार में हर लेखक के हिस्से की ज़मीन अलग होती है जिसमें वह मरता खपता है और अपनी फसल अलग उगाता है, एक दुर्लभ प्रजाति की फसल जिसमें उन्नत नस्ल के बीज हो पाने की संभावना छिपी और बनी रहती है।

लालित्य ललित कुछ ऐसे ही दायित्वबोध के साथ आ रहे हैं अपनी ललित रचनाओं में। गुरेज़ करने वाले आलोचक इन्हें व्यंग्य कहने से भी गुरेज करते हैं और ऐसी रचनाओं को ललित निबंध बता कर अपना पल्ला झाड लेते हैं। लालित्य ललित उनकी परवाह नहीं करते और अपनी कृति का नाम ही दमखम के साथ रख देते हैं 'लालित्य ललित व्यंग्य रचनाएँ।' लालित्य ललित इस डिज़िटल इंडिया के एक सजग प्रहरी जान पड़ते हैं।

अपने संग्रह में भिन्न विषयों के बीच वे उसी भारत को फोकस कर रहे हैं जो कभी शस्य श्यामला धरती कहलाती थी और आज जिसमें अपने आप को डिज़िटल इंडिया कहलवाने की बेताबी है। यह बेताबी उसके हुक्मरानों में है। वे सोच रहे हैं कि यह 'सबका साथ सबका विकास' में एक नयी पहल होगी। इस आपाधापी और भागमभाग के बीच लेखक अपने सृजन का रास्ता तय करता है जैसा ललित कर रहे हैं और इस सृजन की विधा व्यंग्य होगी। इस व्यंग्य के माध्यम से ललित इस डिज़िटल इंडिया को खंगालने का भरपूर उपक्रम कर रहे हैं।

उनका यह उपक्रम आक्रामक से कहीं अधिक रक्षात्मक है। वे क्रिकेट के डिफेंसिव बैट्समैन की तरह सुरक्षित पारी खेलते हैं ताकि उनकी टीम और वो दोनों किसी ऐसे मुकाम पर पहुँच जाएँ जहाँ लक्ष्य की प्राप्ति होना है।

लेखन की उनकी यह सफलता वैयक्तिक नहीं है यह पूरी तरह हितग्राही होते हुए भी वंचित हो जाने को अभिशप्त वर्ग की संवेदनाओं को स्पर्श करते हुए एक दायित्व पूर्ण उपक्रम है।

संग्रह की रचनाओं में विलायती राम पांडे नाम का एक सूत्रधार हर कहीं उपस्थित है । इसे शीर्षकों में ही देखा जा सकता है। जैसे आजकल एक ही नाम की फिल्मों के 'सिक्वल' बन रहे हैं। विलायती राम का एक साथी है चिलमन। दोनों की जोड़ी 'मुन्नाभाई और सर्किट' की तरह है। एक साथ घूमते फिरते हैं और एक-दूसरे के दुःख सुख में सहभागी बने रहते हैं। विलायती राम एक सरकारी दफ्तर का मामूली कर्मचारी है।

लेखक इस विलायती राम के माध्यम से इस डिज़िटल इंडिया की नयी व्यवस्था की पड़ताल करते हैं। विलायती राम के सहयोगियों राधेलाल, रामलुभाया, कल्लू जैसे अन्य पात्रों की मनःस्थितियों और उनकी ग्रंथियों को उकेरते हैं। इन सभी पात्रों में निम्नमध्यवर्गीय चेतना काम करती है। वे दफ्तर में, दौरे पर, हवाई यात्राओं में जहाँ कहीं भी अपने अधिकारियों के साथ आते-जाते हैं तब डिज़िटल इंडिया की पूंजीवादी चमक धमक इन्हें चौंकाती है और कहीं-कहीं आतंकित भी करती है।

यह स्थिति अब कमोबेश पूरे भारत में हो गई है कि निम्नमध्यवर्गीय वर्ग भिन्न नौकरियों में कहीं-कहीं संलग्न है पर उनके रोजमर्रा की सेवाओं को संपन्न करने और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उनके सामने माध्यम हैं कम्पयूटर, मोबाइल, एटीएम, स्वैप मशीन, पावर पाइंट

प्रजेन्टेशन, गूगल। ऑनलाइन, फेसबुक, वाट्सएप। अपने बच्चों से बात करने के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग है। तब हमारे अनपढ़ या कमपढ़ समाज का क्या होगा। उन्हें इन माध्यमों से अपना काम कराने के लिए कोई और माध्यम चाहिए। इन मशीनीकृत तकनीकी दुविधाग्रस्त स्थितियों के भंवरजाल में फंसे जनगणमन को लेखक ने अपने 'विट' से चित्रित किया है (पांडेय जी और वाट्सएप ग्रुप का पंगा, पांडेय जी सोशल मीडिया में, पांडेय और ब्रेकिंग न्यूज़ आदि कई रचनाओं में)। मूढ़ और जड़ व्यवस्था का उपहास उड़ाती उनकी रचनाओं में यह ध्यानाकर्षण 'अंडरटोन' है कि चौपालों की बतकही और उनकी सामुदायिकता वाट्सएप ग्रुप में तब्दील होती जा रही है। चेहरे फेसबुक बनते जा रहे हैं। इन चेहरों की आकांक्षाएँ 'ट्वीट' हो रही हैं। बातों का वजन इन्स्टाग्राम में तौला जा रहा है। लेखक के शब्दों में 'आदमी से कहीं ज्यादा उनके शहर 'स्मार्ट' हो रहे हैं, मोबाइल 'स्मार्ट' हो रहे हैं जहाँ अनजानों के बीच गुड मार्निंग से सुबह होती है और गुड नाइट से शाम होती है। बेरोजगारी के दौर में डिलीट करने का रोजगार है। सोते समय भी इस आभासी दुनिया में आपको लोरी सुनाने वाले फुरसतिए हैं जिन्होंने नोटबंदी के समय का नोट खपाने के लिए भारी नोट देकर कमतर दाम का माल मोबाइल मज़बूरी में खरीदा था (पांडेयजी और उनका स्मार्ट फोन)' यहाँ डाटा लीकेज का लफड़ा है, बकौल व्यंग्यकार लालित्य ललित 'जब डाटा लीकेज हो सकता है तो प्रेम लीकेज क्यों नहीं हो सकता। अपना तो नलका टपकता रहता है। सरकारी है जनता फ़्लैट में सब कुछ टपकता है (पांडेयजी और इश्क का लफड़ा) इस सोशल मीडिया के डेंगू से संक्रमित हो रहे लेखक का यह हाल है कि 'एक तो उनका अपने ग्रुप का 'एडमिन' होना और दूसरा नई-नई पत्रिका के संपादक का तमगा उनके मत्थे था। पर ये कहा गया है कि जब भीतर दिमाग में कूड़ा और गंदगी विद्यमान हो तो कोई क्या कीजियेगा। वही हुआ। जो होना था, अपने लेखन के जरिए खुद को हाशिए पर ले जाना (पांडेयजी जी और उनका

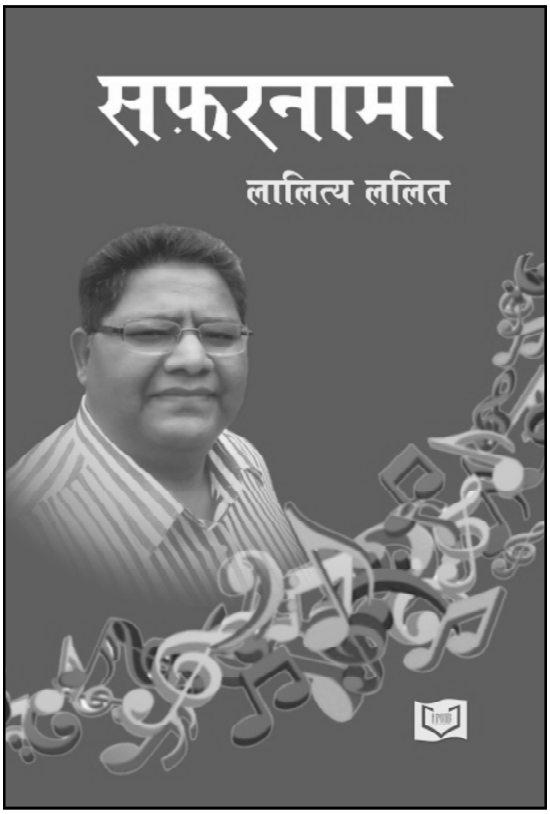

लेखकीय कीड़ा)' व्यंग्यकार अपनी आत्माभिव्यक्ति को सार्वजनिक करते हुए टिप्पणी करने का साहस कर लेता है 'फेसबुक देखा तो कितने रंगरूट 'मैं चला रोम। मैं चली मास्को और मैं चला मॉरीशस कोई छत्तीसगढ़ से तो कोई उत्तराखंड से, कोई राजस्थान से तो कोई मुरादाबाद से। यानि हिन्दी सेवकों की हालत शादी में लगे टेंट हाउस वालों की तरह है। जिसमें हिन्दी के नाम पर विशुद्ध पर्यटन का धंधा विकसित कर लिया है (ग्लोबल हिन्दी सेवक और पांडेयजी)' लेखक विस्तार की बोझिलता से अपने पाठकों को बचाते हैं। अपनी रचनाओं में अपने विराट अनुभवों के साथ मौलिक जुमलों को पिरोते हुए लालित्य ललित विनोदमय व्यंग्य का निर्वाह कर लेते हैं। उनका लेखन उनके उत्साह से लबरेज दिखाई देता है यह लेखक और व्यंग्य दोनों के हित में है।

लालित्य ललित के व्यंग्य से गुजरते हुए

सुभाष चंदर

दूसरे प्रकार के व्यंग्यकार वे हैं जिनकी पहचान व्यंग्येतर विधाओं के कारण है। वे किसी विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए माध्यम के रूप में व्यंग्य का चुनाव करते हैं और फ़िर इस विधा से आकर्षित होकर, अपनी सर्जना शक्ति का कुछ अंश यहाँ भी देने लगते हैं। इनमें भी वर्गीकरण किया जा सकता है। एक वे जो व्यंग्य कर्म को गंभीरता से लेते हैं। व्यंग्य परंपरा से परिचय प्राप्त करते हैं, शिल्प को साधने की कोशिश करते हैं। विषयों के चयन से लेकर भाषाई प्रयोगों तक में प्रयोगधर्मिता को आजमाते हैं। ऐसे व्यंग्यकार व्यंग्य की श्रीवृद्धि में योगदान देने में सफ़ल होते हैं। इनसे इतर, कुछ रचनाकार, व्यंग्य के क्षेत्र में ऐसे भी आये हैं जो व्यंग्य में शीघ्र प्रकाशन, शीघ्र यश प्राप्ति के प्रलोभन के कारण इधर आ गये हैं। उन्हें न तो व्यंग्य की परंपरा से मतलब हैं, न सरोकारों से और न बँधे-बँधाए फ़ॉर्मेट में, चटखारेदार भाषा में राजनीतिक सामाजिक टिप्पणियों को व्यंग्य मानकर, उसी में हाथ आजमा रहे है। ऐसे लोगों की खासी तादाद व्यंग्य स्तंभ के क्षेत्र में हैं। इनमें न विसंगतियों के मूल को पकड़ने की ईमानदार कोशिश है और न ही विषय चयन से लेकर, शैली तक में बरती जाने वाली सावधानी। ऐसे लोगों ने व्यंग्य में अधकचरी रचनाओं का पहाड़ खड़ा करने का बीड़ा उठाया हुआ है। हिंदी व्यंग्य को सबसे बड़ा खतरा इन्हीं रचनाकारों से है।

खैर अब मैं लालित्य ललित की ओर आता हूँ। पहले बात ललित की। ललित मूलतः कवि हैं। कविता उनका पहला प्यार है। वह पिछले बीस वर्षों से भी अधिक समय से कविता से जुड़े हैं। इस अवधि में उनके दो दर्जन से भी अधिक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जाहिरन, वह कविता के क्षेत्र में जाना-पहचाना नाम है। इधर पिछले तीन-चार वर्षों से वह व्यंग्य की ओर आकर्षित हुए हैं। ऊपर दिये वर्गीकरण के आधार पर कहें तो ललित दूसरे प्रकार के व्यंग्यकार हैं जो व्यंग्य के आकर्षण से खिंचकर इधर आये हैं। पर उनके साथ सबसे अच्छी बात यह है कि वह व्यंग्य की परंपरा को जानने समझने के बाद आए हैं।

उन्होंने भारतेन्दु से लेकर परसाई जोशी तक और आगे आलोक पुराणिक शशिकांत तक की पीढ़ियों के व्यंग्य को देखा सुना है। कई बार यह समझ उनकी रचनाओं में देखने को भी मिल जाती है। तीन-चार वर्षों में दो व्यंग्य संग्रहों का प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशन इस बात का गवाह है कि ललित व्यंग्य को लेकर गंभीर तो हैं। वह अपने लेखन के द्वारा व्यंग्य की बारीकियों को पहचानने का दावा करते दिखाई देते हैं और कई बार यह पहचान उनके रचनाकर्म में दृष्टिगोचर भी होती है। उनके पहले संग्रह 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग' में वह अपनी व्यंग्य संभावनाओं के बारे में अंदाजा लगाने का मौका देते हैं। पहले कृति में अक्सर जितना कच्चापन होता है, उतना उस संग्रह में भी है लेकिन आगे अगले संग्रह 'विलायती राम पांडेय' तक आते-आते वह अपनी कुछ कमजोरियों पर विजय पाने का संकेत देते हैं। यह कृति पहली कृति की तुलना में अपेक्षाकृत प्रौढ़ भी है और भविष्य के प्रति संभावना भी जगाती है। ललित के पास विषयों की कतई कमी नहीं है। उनका अनुभव संसार बहुत व्यापक है। वह राजनीति, समाज, शिक्षा, प्रशासन आदि क्षेत्रों की विसंगतियों को अपने व्यंग्य का आधार बनाते हैं। कई बार वह, ऐसे गैर-पारंपरिक विषयों पर कलम चला देते हैं, जिन पर व्यंग्य लिखने के बारे में सोचना भी मुश्किल होता है। ऐसा भी होता है कि कई बार ऊपरी तौर पर सतही सी दिखने वाली रचनाओं में भी, वह कई बार बड़ी मार्के की बात कह पाते हैं। यह सच है कि ऐसा हमेशा नहीं होता है, पर होता है, यह बात सच है।

ललित के लेखन में एक अलग किस्म की स्वच्छंदता है। वह निबंध लेखन में अधिक विश्वास करते हैं। उनकी रचनाएँ एक विषय की पटरी पर चलते-चलते, कब दूसरे विषय की पटरी पर कदम ताल करने लगती हैं, उन्हें खुद भी पता नहीं चलता। अपनी व्यंग्य रचनाओं में कई जगह ऐसा देखने को मिलता है पर जब वे विषय पर केंद्रित रहकर व्यंग्यात्मक, विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं तो प्रभावित भी करते हैं। 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग' संग्रह की रचनाएँ सम्मान बँट रहे हैं, जमाना कट टू कट का, जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग आदि कुछ ऐसी ही रचनाएँ हैं जहाँ पाठक उनके लेखन से आकर्षित होता है। दूसरे संग्रह 'विलायती राम पांडेय' की रचनाएँ कमोबेशी बेहतर है। यहाँ वह विषय को लेकर भी थोड़े सजग हैं और शिल्प से भी प्रभावित करते हैं। इस संग्रह की रचनाओं में 'राष्ट्रीय पर्व घूस', 'सनी लियोनी, साहित्य और समाज', 'नए नोट और पांडेय जी का बुखार' आदि उल्लेखनीय है। इनमें कई स्थानों पर व्यंग्य की अच्छी सूक्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। संग्रह की कुछ रचनाओं के अंश यहाँ देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। 'आखिर पार्टी कोई भी हो, रिश्वत की भाषा, हर पार्टी सुनती है। इसके लिए पढ़ा-लिखा कतई नहीं होना चाहिए। नंगापन समाज के लिए, अनिवार्य योग्यताओं में शामिल एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

'सनी लियोनी, साहित्य और समाज' से अजब लोकतंत्र था जहाँ बोलने में हर किसी को डर लगता था। सब शेर थे पर, अपने-अपने घरों के।

'दिवाली का सन्नाटा' से अगर प्यार की टेबलेट्स नहीं मिलती है तो इश्क की प्लेटलेट्स नीचे आनी शुरू हो जाती है।

'दाल, विलायती राम और पिरेम की विकास यात्रा' से

मैं अगर एक वाक्य में ललित के व्यंग्यकार को समेटने की कोशिश करूँ तो कहूँगा-ललित ऐसे व्यंग्यकार हैं जो अपने खिलंदड़े अंदाज में अव्यवस्था के जिस्म में चिकोटी काटने में विश्वास रखते हैं। कई बार तो जहाँ कड़े प्रहार की आवश्यकता होती है, अव्यवस्था के मुखौटों को अनावृत करने के लिए नुकीले औजारों की जरूरत होती है, वहाँ यह चिकोटी काटना चुभता भी है। पर क्या करें, यही ललित के व्यंग्य की शैली है, यही शक्ति और यही सीमा भी। शायद इसे ही देखकर, ललित के व्यंग्य कर्म पर बात करते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा था कि 'ललित बटर चिकन बनाते समय, मसाले तो खूब डालते हैं, पर उसमें चिकन डालना भूल जाते हैं।' यह टिप्पणी ललित के व्यंग्य धर्म की गंभीरता पर तो प्रश्नचिह्न लगाती है, पर साथ ही यह ललित के एक मजबूत पक्ष शिल्प की ओर भी संकेत करती है। लेकिन इधर ललित बटर चिकन में चिकन के साथ मसालों का मिश्रण बखूबी समझ गऐ हैं। चिकन पहले की तुलना में स्वादिष्ट बनाने लगे हैं।

यह सच है कि ललित अपनी रचनाओं में, सरोकारों के निर्वाह के प्रति थोड़े असावधान है, विषय चयन में भी लापरवाही बरतने लगे, प्रहारात्मकता में भी यही शिथिलता बरत जाएँ पर एक जगह वह निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं, वह है उनका भाषाई कौशल। शैली का चुटीलापन। विट और सांकेतिकता का संतुलन। यही कारण है कि वह खुद को पढ़ाकर ले जाते हैं, जबकि यह खूबी उनकी पीढ़ी के अनेक व्यंग्यकारों में सिरे से नदारद है। आप उनकी लाख आलोचना कर सकते हैं, पर यह नहीं कह सकते कि ललित भाषा के स्तर पर कमजोर हैं। शैली में अपने समकालीनों से कहीं उन्नीस पड़ते हैं। उनकी भाषा रचना की प्रकृति के अनुसार शब्द चुनती है। अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी जैसी अनेक भाषाओं के शब्द उनके यहाँ खूब मिलते हैं। उनकी शैली में एक अलग किस्म का खिलंदड़ापन, चुटीलापन है। इसके लिए वह हास्य बोध, विट और आयरनी का प्रयोग करते हैं। कई बार इनका संतुलन सही हो जाता है तब वह आपको प्रभावित करने में भी कसर नहीं छोड़ते। विट उनकी रचनाओं के पाठ के साधारणीकरण में मदद करता है, हास्य बोध उन्हें सामान्य पाठकों से जोड़ने में सहायता करता है। वक्रोक्ति के इस्तेमाल से वह कई बार अपनी रचनाओं को

विशिष्ट व्यंग्यार्थ देने की भी कोशिश करते हैं। उनकी भाषा में प्रवाह है, शैली में सायासता से बचने की कोशिश है। वह बंधनों से बँधती भी नहीं है, सहज ढंग से अपनी बात कहने को प्राथमिकता देती है। सच यह है कि ललित की भाषा उनकी शक्ति वह व्यंग्य की परंपरा को खूब अच्छे से पहचानते हैं उन्होंने खूब पढ़ा है-गुना है। उनके पास शैली भी है जो उन्हें पढ़वा ले जाती है। कमी तो है तो बस इस चीज की कि वह व्यंग्य को थोड़ा और गंभीरता से लें, सरोकारों के निर्वहन पर अधिक ध्यान देंए विसंगतियों को सतही तौर पर छूकर न गुजर जाएँ, उनकी जड़ों को खँगालने की कोशिश करें और सबसे बढ़कर यह कि जहाँ जरूरत हो, वहाँ प्रहार करने से चूके नहीं। ये कुछ काम अगर वह कर लें तो कोई कारण नहीं कि वह व्यंग्य में दीर्घकालिक प्रसिद्ध को प्राप्त करें। अध्ययन, उम्र और भाषाई सौंदर्य तीनों उनके पक्ष में हैं। मुझे नहीं लगता कि वह ईमानदारी से कोशिश करेंगे तो इस लक्ष्य को भेदने में उन्हें अधिक समय लगेगा। हिंदी व्यंग्य को अच्छे रचनाकारों का इंतजार हमेशा रहता है।

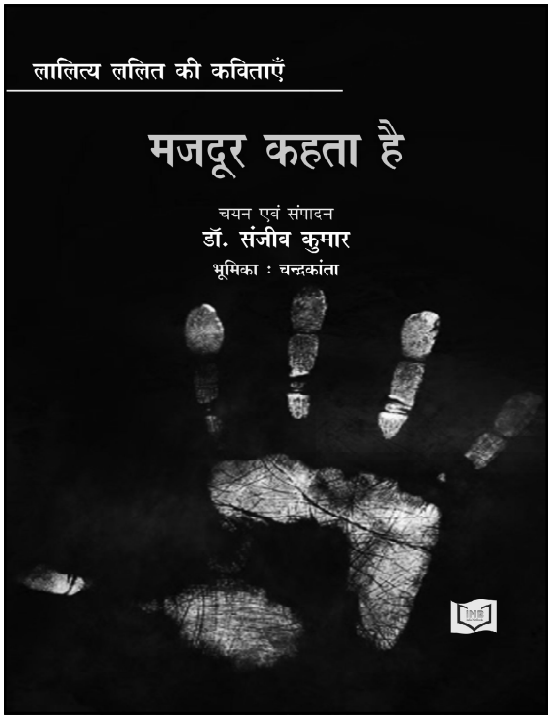

बारिशों का पता

उसने बताया नहीं
बारिशों का पता
उसको बारिशें भली लगती है
अच्छे मौसम की दस्तक किसे अच्छी नहीं लगती
लगातार बारिशें
मौसम की मौसिकी और उसका लगातार ये कहना
चलो आज बूंदों से बतियाएँ
उनको कुछ अपनी कहें
कुछ उसकी सुनें
मैंने उसे देखा
उसने मुझे
हम दोनों चल दिए
उसी रास्ते पे
जहाँ अपन दोनों देर तलक बातें करेंगे
बारिशों से बात करेंगे
सौंधी-सौंधी महक में
मन तन स्पंदित होने लगा
उसकी जिस्म की खुशबू मुझ में धुल गई
पता नहीं लगा
कि इसमें बारिशों की महक है
मिट्टी की सौंधी खुशबू है
या दोनों की समन्वयक महक
जिससे अठखेलियाँ पहले से ज्याद प्रगाढ़ दिखने लगी
समय-समय की बात है बाबू
अब आती है बारिशें
बचने का मन करता है
तब करता था
वक्त ठहर जाए
रुक जाए घड़ी और हम देर तक बातें करते रहें
रात भर
यूं ही।

(लालित्य ललित : बारिश सी तुम पुस्तक से)

व्यंग्य काज कीन्हे बिनु लालित्य कहाँ विश्राम...!

पिलकेंद्र अरोरा

शायद नेपोलियन की तरह उनके शब्दकोश में भी 'असंभव' शब्द नहीं है! वे असंभव को भी संभव कर दिखाते हैं। पूर्व क्रिकेट कप्तान धोनी के बारे प्रायः कहा जाता था कि वे अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी कर देने में माहिर हैं! कुछ ऐसी अनहोनी की ही होनी कर रहे हैं, इस समय के सबसे ज्यादा चर्चित और सक्रिय रचनाकार श्री लालित्य ललित। उनका लालित्य उनकी क्षमता, उनकी ऊर्जा चकित कर देती है। जितनी देर में एक औसत रचनाकार कविता का शीर्षक ही सोच पाता है उतनी देर में वे कविता रच कर आपके सामने प्रस्तुत कर देते हैं। हम लिखने के लिए दिन समय और मुहूर्त चुनते हैं कि अमुक दिन, अमुक समय या ब्रह्ममुहूर्त में लिखेंगे, पर उनके लिए तो हर समय रचना समय है।

वे रचनाओं के पूरे एटीएम हैं! ऑल टाईम रचनाकार! और फिर दिन में एकाध कविता से उन्हें संतुष्टि भी नहीं! कभी तीन कभी तो कभी चार कविताएँ उनकी न्यूनतम खुराक है। और कविता भी पूरी जिम्मेदारी और ईमानदारी के साथ। सामाजिक सरोकारों वाली कविताएँ, संवेदनाओं को जगाती और झकझोरती कविताएँ! कोई शब्दों की रेल या प्रदर्शनी नहीं! भावपूर्ण कविताएँ! कलम के प्रति प्रतिबद्धता का पुख्ता प्रमाण देने वाली कविताएँ।

और उनके व्यग्यों की तो बात ही निराली है। व्यंग्य रचना भी कोई चार या पाँच सौ शब्दों की नहीं वरन् सत्रह-अठारह सौ शब्दों के लम्बे-लम्बे व्यंग्य। जिन्हें पढ़ने में पाठक थक जाए या लम्बे हो जाएँ! पर वे लिखने में भी नहीं थकते! मानस की प्रसिद्ध पंक्ति है 'राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम! उनके विराट व्यंग्य कर्म को देख लगता है उनकी सूत्र पंक्ति यह है, 'व्यंग्य काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम।' जहाँ औसत व्यंग्यकार को अपना एक संग्रह पूरा करने में वर्षों लग जाते हैं। वहाँ उनके संग्रह मासिक पत्रिकाओं की तरह नियमित प्रकाशित हो रहे हैं। आज 25 जुलाई 2020 को जब मैं यह आलेख लिख रहा हूँ। उनके कुल 20 व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हैं और जिस दिन यह आलेख प्रकाशित होगा, पता नहीं उनके संग्रहों का नया स्कोर क्या होगा! इस उपलक्ष्य में एक बार तो मैने उन्हें एक सप्ताह की अग्रिम बधाईयां वारों के क्रम से दे डाली थी एकमुश्त!

वे अक्सर चौकाते हैं। पिछले दिनों लाकडाउन में लिखे गए 75 व्यंग्यकारों का व्यंग्य संग्रह अभी प्रकाशन के अंतिम दौर में ही है कि एक दिन अचानक उन्होंने सदी के 101 व्यंग्यकारों के महासंग्रह के प्रकाशन की योजना घोषित कर डाली। वैसे, दिल्ली घोषणाओं की ही राजधानी है, पर उनकी घोषणाएँ दिल वाली है, दिल्ली वाली नहीं! एक फिल्मी डायलॉग याद आ रहा है कि मैंने एक बार जो कमिटमेंट कर दिया, सो कर दिया, उसके बाद मैं अपने आप की भी नहीं सुनता! कुछ ऐसा ही उनके साथ है।

उनमें नए-नए संकल्प लेने का साहस है और उन्हें पूर्ण करने का समर्पण भाव भी। वे अपनी ऊर्जा और सक्रियता से चकित ही नहीं, आतंकित भी कर देते हैं। जबसे उज्जैन में एन.बी.टी के पुस्तक मेले और एक व्यंग्य महोत्सव में मैंने उनकी अति सक्रियता देखी है मैं निरंतर आतंकित ही चल रहा हूँ।

कुछ बात उनके व्यंग्यों की। जैसे किसी व्यक्ति के रक्त की जाँच के लिए एक दो बूँद ही रक्त पर्याप्त होता है। पूरे शरीर का रक्त निकाल नहीं जाँचा जाता! वैसे, मैंने भी उनके रचना समुद्र से एक बूँद निकाली है। और उसके आधार पर एक पैथोलॉजी टेस्ट किया है।

वे भी मन की बात करते हैं, अपने प्रिय पात्र विलायती राम पांडे के माध्यम से। 'पांडेय जी और चिंता का विषय' उनकी एक रचना है। जिसमें पांडेय जी इस बार देश में

निर्भयाओं के साथ होने वाले दुर्व्यवहार से दुखी और चिंतित हैं। पर इस चिंता में वे देश के चिंतकों और उपदेशकों को भी लपेटना नहीं भूलते।

साथ ही उन रायचंदों की भी खबर लेते हैं जो गाहे-बगाहे अपनी राय चेपते रहते हैं। तभी उन्हें बरसात से पार्क की टूटी हुई सड़क का ध्यान आ जाता है। सड़क पर शोक व्यक्त कर वे एक पात्र के माध्यम से फिर अपने मन की बात करते हैं कि लिखना जीवन की प्राथमिकता होना चाहिए। शायद यही उनका मूलमंत्र है जिसके कारण वे लगातार लिख रहे हैं और न केवल लिख रहे हैं बल्कि नए रचनाकारों को लिखने के लिए प्रोत्साहित भी कर रहे हैं। वरिष्ठ व्यंग्यकार और व्यंग्य यात्रा के यशस्वी संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय जी के साथ मिलकर व्यंग्य यात्र ग्रुप को उन्होंने व्यंग्य शिक्षण-प्रशिक्षण की एक खुली डिजिटल अकादमी का स्वरूप दिया है। सोशल मीडिया का कितना सही और सार्थक उपयोग हो सकता है, वह ग्रुप इस बात का एक आदर्श उदाहरण है।

व्यंग्य में उनका ऑब्जरवेशन और अनुभूतियाँ साथ-साथ चल रही हैं। व्यंजना और व्यंजन उन्हें दोनों प्रिय हैं। इस रचना में भी उनका दोहरा प्रेम प्रकट हुआ है। व्यंग्य में वे किचन से डायनिंग टेबल तक पहुँच जाते हैं और बाद में डायनिंग टेबल को स्टडी टेबल से जोड़कर रचना में वापस आ जाते हैं और कहते हैं कि भाई सृजन क्षमता का पाचन क्षमता से प्रत्यक्ष संबंध है।

फिर रचना आगे बढ़ कर अचानक ट्रैफिक सिग्नल पर आ जाती है और वे मोटर साईकल सवार एक दम्पति का चालान बना देते हैं जो बिना हेलमेट पहने ही वेलेंटाईन हो रहा है। पर हास्य के इस मूड में भी वे बिना हेलमेट के होने वाली गंभीर दुर्घटनाओं का संकेत करना नहीं भूलते और साथ ही नई पीढ़ी की माँगों के सामने पुरानी पीढ़ी के समर्पण को भी रेखांकित कर देते हैं। रचना तेजी से आगे बढ़ती है और साहित्यकारों के बीच पुरस्कार युद्ध को निशाना बनाती है कि बिना सेटिंग वेटिंग के कुछ भी संभव नहीं।

रचना में प्रवाह है। भाषा सरल व सहज है। अन्योक्ति

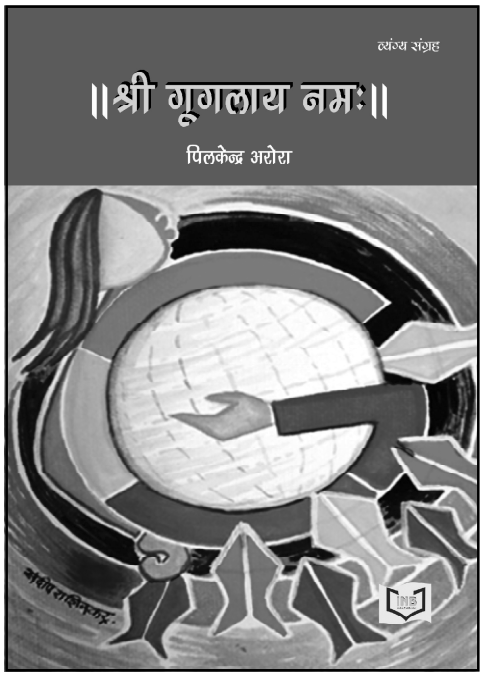

या वक्रोक्ति का सायास उपयोग नहीं है। वरिष्ठ कथाकार व्यंग्यकार डॉ. सूर्यबाला जी का मत है कि रचना अनायास होनी चाहिए, सायास नहीं! सायास होने से ही भाषा शैली में जटिलता स्वतः आ जाती है। इस रचना में लेखक ललित जी पाठकों से बातचीत करते हुए लगते हैं। शुरू से अंत तक पाठकों को गाईड करते हुए! पर रचना किसी एक विषय पर केन्द्रित नहीं है।

ऐसा लगता है कि लेखक कलम रूपी तलवार लेकर निकल पड़ा है। जहाँ जो विसंगति या विद्रूपता दिखी, धड़ाधड़ प्रहार शुरू! इसलिए रचना प्रारंभ तो होती है पर कहीं समाप्त नहीं होती! चलती रहती है और अचानक किसी एक बिंदु पर आकर किसी पुरानी समानांतर फिल्म की तरह कुछ अनुतरित प्रश्न छोड़कर स्थगित हो जाती है।

पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि लेखक की दृष्टि सूक्ष्म है, पर कोण बहुत व्यापक है। समाज और व्यवस्था की प्रत्येक विषमता पर लेखक की पैनी नजर है। वह विषम कोण से, विषमताओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाता है और दनादन प्रहार करता है।

ललित आंदोलन

राजेशकुमार

एक स्वनामधन्य लेखक का साक्षात्कार चल रहा था। साक्षात्कारकर्ता जब सारी बातें पूछ चुका, तो आखिर में उसने सरसरी तौर पर पूछा, "आपकी दिनचर्या क्या रहती है?" लेखक ने विस्तार से बताया, "सुबह देर से उठता हूँ, अख़बार वगैरह पढ़ता हूँ, ई-मेल का जवाब देता हूँ, देखता हूँ कि लोग मेरे बारे में क्या कह रहे हैं, तब तक लंच का समय हो जाता है, लंच करने के बाद मैं थोड़ी देर सोता हूँ, इसके बाद देखता हूँ कि दूसरे लेखक क्या कर रहे हैं, कुछ देर टेलीविज़न वगैरह देखता हूँ, तब तक शाम हो जाती है, शाम की चाय पीता हूँ, फिर सोने की तैयारी करता हूँ, और इस तरह दिन समाप्त हो जाता हैं।"

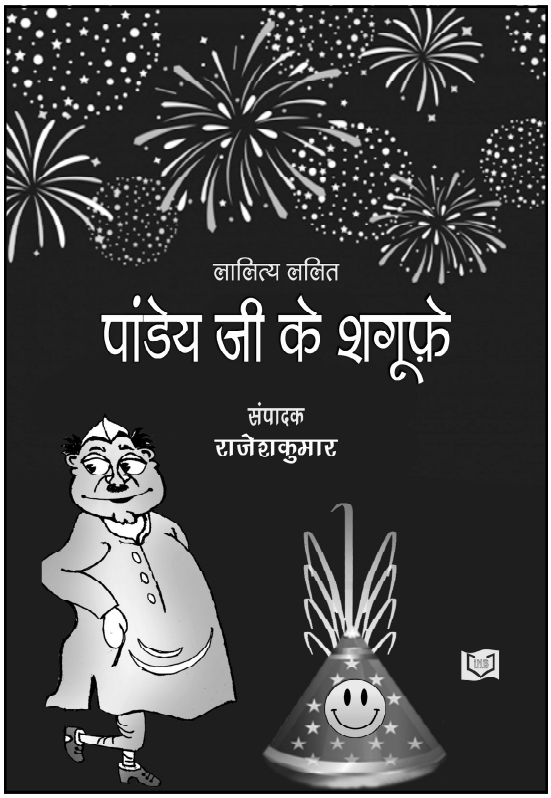

साक्षात्कारकर्ता को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "तो फिर आप लिखते कब है?"

लेखक बंधु ने ज़रा भी विचलित न होते हुए जवाब दिया, "बस अगले दिन!" खाने-पीने के शौकीन, अपनी बातचीत से माधुर्य का लालित्य परोसने वाले, और लिखाड़ बंधु लालित्य ललित की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। खोजी पत्रकार चाहे तो यह एक अच्छा विषय है और वे यह पता लगाने के काम में जुट सकते हैं कि क्या लालित्य ललित ने व्यंग्य और कविताएँ वगैरह लिखने के लिए कुछ कर्मचारी रखे हुए हैं!

पद्मश्री और विश्व विख्यात साहित्यकार डॉ. नरेंद्र कोहली के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने साहित्य कर्म को व्यवसाय के रूप में अपनाया है। जिस तरह कोई दुकानदार अपना काम शुरू करने के लिए रोज़ शटर खोलता हैए उसी तरह वे भी हर रोज़ रचना का व्यवसाय करते हैं। यह बात लालित्य ललित के साथ भी सही साबित होगी, सिवाय इसके कि उन्हें एक के बजाय कई शटर एक साथ खोलने होते हैं। लालित्य ललित की मुझे धुँधली सी याद है जब मैंने वर्षों पहले उन्हें प्रेम जनमेजय के आस-पास देखा था। प्रेम जनमेजय ने जिस कॉलेज में पढ़ाई की है, उसी से मैंने भी पढ़ाई की है। वे हमारे वरिष्ठ हैं और शायद उन दिनों अध्यापन कार्य करने लगे थे। तब ललित कविताएँ लिखा करते थे। प्रेम जनमेजय के आस-पास बहुत सारे लोग हुआ करते थे, मैंने ललित को उन्हीं में से एक मान लिया था। उन्होंने मुझे नोटिस नहीं किया था और मैंने उन्हें नोटिस नहीं किया था। लेकिन क्या पता था कि लेखक के आस-पास घूमने वाला यह व्यक्तित्व किसी दिन बड़े-बड़ों को अपने आस-पास घुमाएगा! ललित खाने-पीने के बहुत शौकीन है आप चाहे तो इस बात को अभिधा के अर्थ में भी

ले सकते हैं। कोई अनजान व्यक्ति ललित के विशालकाय व्यक्तित्व को देखकर और भोजन के बारे में उनकी बातें सुनकर, दोस्तों से खुलेआम पकवानों की सिफ़ारिश करते देखकर, फ़ेसबुक आदि पर भोजन से संबंधित उनकी पोस्ट देख कर गुमराह हो सकता है कि इस भाई को खाने पीने के अलावा कोई और काम भी है या नहीं? कभी-कभी तो लगता है कि वे रसोई घर में भी अपने कारनामे दिखाने से बाज नहीं आते। लेकिन जैसा कि उनके करीब के सब लोग जानते हैं, खाने-पीने के अलावा भी बहुत सारे काम हैं, जो वे करते हैं और बहुत अच्छी तरह करते हैं।

लालित्य ललित को मंच का राजा कहा जा सकता है। माइक्रोफ़ोन के सामने उनके मुखारविंद से इतने प्रभावशाली और इतने सहज ढंग से भाषा प्रवाहित होती है कि लगता है कि माता सरस्वती के पहले शिष्य ये ही हैं। माइक्रोफ़ोन जो गदगद होता होगा, वो अलग! इस साल के व्यंग्य यात्रा के उज्जैन समारोह में उन्होंने मेरी तारीफ़ में इतने पुल बाँधे के महाकाल की नगरी के वासी बेचारे ताकते ही रह गए कि इस छोटी सी नगरी में इतने सारे पुलों का करें, तो क्या करें! अपन भी बिना सोचे-विचारे उनके द्वारा बनाए गए झाड़ पर ऐसे चढ़े कि घर आकर पत्नी को नज़र झाड़नी पड़ी, मेरा मतलब है कि उतारनी पड़ी। रही-सही जोनज़रकी थी वह अस्पताल में नर्सों ने उतारी। कविवर जगन्नाथ दास रत्नाकर ने शायद इसी स्थिति के लिए कहा है।

नेकु कही बैननि अनेक कही नैननि सों
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीन सौं।

लालित्य ललित सबसे प्रेम से, सम्मान से, और सद्भाव से मिलते हैं। ललित का भाषा और शैली पर तथा भाषा के नाटकीय इस्तेमाल पर अद्भुत अधिकार है। एक बार उन्होंने मुझे फ़ोन किया और इस तरह बात की मानों कोई सीबीआई अधिकारी बात कर रहा हो। वे बातें करते रहे? और मैं इतना घबरा गया कि मैंने सोचना शुरू कर दिया कि इस पचड़े से निकलने के लिए कौन-कौन मेरी मदद कर सकता है?

ललित मस्त मौला और बेपरवाह (लापरवाह नहीं) किस्म के व्यक्ति हैं। एक दिन हम सब लोग बैठे बतिया रहे थे कि बातों-बातों में बंधुवर प्रेम जनमेजय मेरी किसी बात से नाराज़ हो गए, और मैं निःसंकोच रूप से मानता हूँ कि उसमें 100% ग़लती देखा जाए, और मैं यह बात बिल्कुल तटस्थ भाव से कह रहा हूँ, बंधुवर प्रेम जनमेजय की ही थी (प्रेम जनमेजय इसके विपरीत मान्यता रखने के हकदार हैं।) मैंने उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करने की बहुत कोशिश की, उनसे क्षमा याचना भी की लेकिन वे अंगद के पाँव हो गए और एक बार उखड़े तो उखड़े ही रह गए। सभा विसर्जित हो गई (सुनो वीर हनुमान) और मैंने अलग से ललित ने कहा भाई, बंधुवर तो बहुत नाराज़ हो गए! उन्होंने बिल्कुल सात्विक भाव से थ्री इडियट के चौकीदार के लहज़े में कहा, चिंता मत करो सब ठीक हो जाएगा। और कुछ समय बाद वास्तव में सब कुछ ठीक हो गया। तब से ऑल इज़ वैल की स्थिति है।

ललित को साहित्य से जुड़े लोगों के नाम और चेहरे याद रहते हैं और वे इन दोनों में तालमेल बनाए रख सकते हैं। वे लोगों की तस्वीरें भी जमा रखते हैं और ज़रूरत, बे ज़रूरत उन्हें जारी भी करते रहते हैं। वे लोगों के जीवन के मुख्य अवसरों, जैसे जन्मदिवस, शादी की वर्षगाँठ आदि का लेखा-जोखा रखते हैं और सही मौकों पर लोगों को सही शुभकामनाएँ देने से नहीं चूकते।

"चाटुकार कलवा" और ऐसे ही बहुत से व्यंग्य संकलनों का ललित ने बहुत निपुणता से संयोजन और प्रकाशन करवाया है। कोरोना वायरस के इन निष्क्रियता के दिनों में उन्होंने लगभग 80 व्यंग्यकारों से व्यंग्य रिकॉर्ड करवाए, उन पर चर्चा हुई, और सभी व्यंग्यों को संयोजित करके प्रकाशन के लिए व्यवस्थित किया। व्यंग्य यात्रा के व्हाट्सएप समूह में व्यंग्य चर्चा की ज़िम्मेदारी उनकी है और वे इसे बखूबी निभाते हैं। वे लगभग रोज़ कोई-न-कोई नया व्यक्ति व्यंग्य यात्रा समूह में जोड़ते रहते हैं।

ललित ने तो व्यंग्य को धर्म के रूप में अपनाया है और वे कर्मकांड की तरह वे रोज़ पूजा अर्चना करते हैं। रोज़ाना एक या अधिक व्यंग्य आदि लिखते हैं और प्रकाशित करवाते हैं। व्यंग्य यात्रा से जुड़े व्हाट्सएप समूह में इतनी सक्रियता रहती है कि उससे तालमेल बिठाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन ललित हर आयोजन में न केवल सक्रियता से भाग लेते हैं, बल्कि ज़रूरत पड़ने पर वे आपको आपके किसी काम की देरी के लिए अलग से भी याद दिलाना नहीं भूलते।

लालित्य ललित अनुशासन प्रिय व्यक्ति हैं। आपको पता चल जाएगा कि वे अपने कार्यालय में समय पर या समय से पहले पहुँच गए हैं, कोई अनुरोध उन्होंने समय पर पूरा कर दिया है, अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी समय पर निभा दी है। न केवल वे खुद समय पर अपना काम करते हैं, बल्कि दूसरे लोगों को भी समय पर काम करने के लिए प्रेरित करते हैं और ज़रूरत पड़ने पर ठेलते भी हैं। लालित्य ललित पूर्णकालिक रोज़गार में है, जो बहुत माँगपूर्ण है। जॉब, लेखन, परिवार, साहित्य संबंधी गतिविधियों में उनकी सक्रियता को देखकर उनकी ऊर्जा और जिजीविषा को सलाम ही किया जा सकता है।

लालित्य ललित किसी भी दृष्टि से अपने काम से अपने पारिवारिक जीवन को प्रभावित नहीं होने देते। उनकी फ़ेसबुक और व्हाट्सएप वगैरह पर पोस्ट से आ जान जाएँगे कि वे अपने परिवार के सदस्यों को बहुत चाहते हैं, उन्हें आगे बढ़ने में मदद करते हैं, उनके कार्य की प्रशंसा और प्रदर्शन करते हैं, और उनका मार्गदर्शन करते हैं।

लालित्य के अबतक 35 काव्य संग्रह और 17 व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उड़िया और अंग्रेज़ी भाषाओं में भी कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हो चुके है। संचयन दर्जन पार करना चाहते हैं।वे अनेक पुरस्कारों को धन्य कर चुके हैं। असंख्य कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। यह सब देखकर ऐसा लगता है कि वे खुद को प्रोमोट करने में ही लगे रहते हैं, लेकिन करीब से देखने में पता चलेगा कि वे अपने साथियों को भी प्रोमोट करने में कोई कमी नहीं रखते। और बात यह भी है कि अगर व्यक्ति खुद को प्रोमोट करता है, तो इसमें कोई दोष भी नहीं है। अगर वह खुद को प्रोमोट नहीं करेगा, तो फिर उसे कौन प्रोमोट करेगा काला चोर जिस जगह पर लोग टाँग खींचने की ताक में रहते हैं, वहाँ दूसरों को प्रोमोट करने के बारे में सोचना पाप की श्रेणी में ही आएगा।

यह देखकर ख़ुशी होती है कि लालित्य ललित व्यंग्य आंदोलन को गति दे रहे हैं। वे व्यंग्य में हैं और व्यंग्य उनमें है। मेरी कामना है कि वे इसी तरह लेखन करते रहे, आंदोलन को गति देते रहे, और व्यंग्य को सार्थक लेखन साहित्य के रूप में प्रस्तुत करने की अपने महती भूमिका निभाते रहें। इस काम में जुटे रहें, और लोगों को जुटाते रहें। दिल से कामना है कि बंधु लालित्य ललित की रचनाशीलता फले-फूले, उनकी लेखनी कभी विश्राम न ले, और वे अपने सत्संग से लोगों को आह्लादित करते रहें। आमीन!

विशाल मध्यवर्ग के प्रतीक पुरुष विलायतीराम पांडेय

अनुराग वाजपयी

सक्रिय और ऊर्जावान कवि व्यंग्यकार लालित्य ललित का यह नवीनतम संग्रह इस दुविधा और संशय भरे समय में हँसने, मुस्कुराने और फिर सोचने का अवसर उपलब्ध करवाता है।

व्यंग्य विधि को लेकर पिछले चार-पाँच दशकों से विमर्श और संवाद होता रहा है। पहले हास्य और व्यंग्य के बीच की सीमा रेखा को लेकर बहस होती रही, फिर यह कि व्यंग्य को विधि माना जाए या समझा जाएँ माना जाए तो उसका स्थान कहाँ हो? गद्य में, पद्य में, कविता, कहानी, ललित निबंध कहाँ टिका दिया जाए कि व्यंग्य अपनी जगह पा ले और कोई शिकवा शिकायत न करें। तमाम प्रयासों के बाद भी व्यंग्य है कि अपनी सिटिंग अरेंजमेंट नहीं कर पा रहा। समीक्षकों आलोचकों के सौ तर्कों वितर्कों के साथ यह अर्तहीन विमर्श कई अंशों में आज भी जारी है।

ललित भाई को पढ़ते और सुनते हुए मैंने अक्सर सोचा है कि उन्होंने अपना रास्ता चुन रखा है। वह मार्ग है, सतत् लेखन का, आपका जहाँ मन करे उनके लिखे को रख दीजिए। न भी रखिए तो कोई खास फर्क उन्हें नहीं पड़ता। वे अपने आस पास की विडंबनाओं और विसंगतियों पर कलम चलाना जारी रखेंगे, या यों कहें कि उनका की बोर्ड अपनी गति से चलता रहेगा। वह न विधाओं के बीच भेद करता है न स्वतंत्र विधा विकसित करने का दावा करता होए इन व्यंग्य लेखों, व्यंग्य टिप्पणियों और व्यंग्य कविताओं का अपना अलग विन्यास है, जो ललित की खूबी और विशिष्टता दोनों ही है। पात्रों और घटनाओं के चयन को लेकर वे इतने है कि सुबह से शाम तक की जिंदगी में ऐसा कुछ नहीं हैं जो उनसे छूट जाएँ वे उन सभी घटनाओं को अपने लेखन का विषय बनाते हैं, जो आमतौर पर ज्यादातर लोग सामान्य कह कर टाल देते हैं। घर वाली मोहल्ला, बाजार दफ्तर, साहित्य गोष्ठियों, सेमीनार, सभा एक लेखक के जीवन से जुड़े ये सभी स्थान उनकी रचनाओं में बार-बार नजर आते हैं। इस स्थानों पर घटने वाली छोटी से छोटी घटनाएँ इन स्थानों पर घटनाओं के दौरान पैदा हो रही विसंगितियों और उन विसंगतियों के बीच व्यंग्य ढूँढ़ लेने की उनकी अद्भुत क्षमता पाठकों को अंत तक बाँधे ही रखती है। इसी प्रकार चुटकी लेने की उनकी आदत और घटना का हिस्सा बनने की काबिलियत उन्हें व्यंग्य के केन्द्र में रखती है। इस संग्रह के हर आलेख में उनकी यही खूबी बार-बार नजर आती है। लेखक कहीं भी, कभी भी फ्रेम से बाहर नहीं होता। ऑफिस के चित्रण में ललित मंडोरा को मानो महारत हासिल है। शायद कुछ किस्से आप बीती हो, लेकिन ज्यादातर तो जगबीती हैं। उनकी इन किस्सों को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट कर एक कोलाज सा बना देने की कला, व्यंग्य को नए तेवर देती है। उनका फलक इतना विस्तृत है और नजर इतनी पैनी कि किसी की छोटी से छोटी चालाकी भी छिप नहीं सकती। कैंटीन वाला समोसे को पूरा न तले या स्टेनो सहेलियों से गप्प लड़ाने निकल जाएँ उनकी दृष्टि से कुछ भी छूट नहीं सकता। यही विलक्षणता उन्हें विशिष्टता भी प्रदान करती है। इस संग्रह में लालित्य ललित की व्यंग्य कविताओं की छटा भी भरपूर देखने को मिली है। व्यंग्य में कविता और कविता में व्यंग्य उन्होंने बहुत ही खूबी से पिरोये हैं। इनमें कुछ कविताएँ, हास्य का पुट लिए है तो कुछ अपने आप में व्यंग्य टिप्पणियाँ बनकर उभरी हैं।

जोर से चिल्लाओ
झूठ बोलो
लोगों को बरगलाओ
दीवारों पर तमगे लगाओ
और ज्ञानी कहलाओ

ललित्य ललित ने यह पंक्तियाँ किसी विद्रोही से नहीं बल्कि एक सब्जी वाले से कहलवाई है, जिसका चयन किसी धूर्त हिन्दी सेवी ने विदेश भेजने के लिए कर लिया है। ऐसी पंक्तियाँ और विरोधाभासों में झाँकती कवि दृष्टि का परिचय इस संग्रह में जगह-जगह मिलेगा। पूरी पुस्तक वक्रोक्तियों और अवसरवादियों पर नुकीले प्रहारों से भरी हुई है। 'वैरायटी-वैरायटी के लोगों' की चर्चा करते हुए, तो माना उन्होंने आदम नस्ल की फेहरिस्त बना दी है। आप भी जानिये कितनी तरह के आदमी हो सकते हैं।

कुछ पैम्पलेट होते हैं
कुछ इडियट बक्सा
कुछ मसाला चाय तो कुछ नेताओं के आश्वासन
कुछ ट्यूबलाइट तो कुछ ट्यूबलैस
कुछ बड़बोलेपन का कॉपीराइट साथ लिये रहते हैं
तो कुछ आवारा हवा से होते हैं
जहाँ कहीं भी दौड़ते रहते हैं।

थोड़ी सी पंक्तियों में इतनी तरह के लोगों की जानकारी ललित ही दे सकते हैं। इसलिए भी कि वे किसी भी तरह के आदमी से नजर नहीं चुराते। वे सबसे मिलते हैं लेकिन पूरी होशियारी के साथ सबकी खबर भी रखते हैं।

लालित्य ललित की एक और खूबी उनके पत्र हैं। विलायती राम पांडेय तो अब हिन्दी व्यंग्य साहित्य में चाचा चौधरी वाला स्थान हासिल कर चुके हैं। तो एक साथ ही सहज और सरल भी हैं तो दूसरी ओर उनका दिमाग कंप्यूटर से तेज भी चलता है। राधेलाल, राम खेलावन जैसे पारंपरिक पात्र तो कहीं अंतर्मन कुमार जैसे आधुनिक चरित्र इन्हीं सब में घुल मिलकर इन रचनाओं की सृष्टि हुई है। विलायती राम पांडेय पर कभी आशिकी का भूत सवार होता है, तो कभी वे दफ्तर में फँस जाते हैं। कभी वे साहित्यिक गोष्ठियों में मौजूद दिखते हैं तो कभी किसी भी नुक्कड़ पर। देश, समाज और परिवार में सभी लोग कहीं न कहीं विलायती राम पांडेय में खुद को खोज सकते हैं।

विलायती राम घर में कुछ न करते हुए भी करते हुए ही दिखना चाहते हैं। उन्हें कभी सर्दी सताती है, तो कभी बुद्धिजीवियों की सोशल मीडिया पर चल रही अनवरत जुगाली। सोशल मीडिया पर सक्रिय ऐसे ही बौद्धिक जीवों पर उनकी यह टिप्पणी गौर फरमाने लायक है "लीद करने वाले केवल गधे ही नहीं होते, बल्कि कुछ असंतुष्ट प्रजाति के लोग भी होते हैं। वे भी लीद करते हैं। सो पांडेय जी ने राधेलाल जी से कहा कि आप नाहक ऐसी चीजों पर न जाया करें। उनका काम है गोबर करना, और हमारा काम है उस गोबर से बच कर निकलना'' इस तरह की तमाम टिप्पणियाँ इस पुस्तक में आपको मिलेगी। "अटकना जीवन का मूलमंत्र है। अटके बिना न तो मनुष्य को चैन मिलता है और न ही सुख की परिकल्पना ही मूर्त रूप में साकार होती है। जिंदगी का यक्ष प्रश्न भी है। अगर आप मानते हैं तो''

विलायती राम पांडेय अपने तमाम आदर्शवाद के बावजूद विशाल भारतीय मध्यवर्ग के एक प्रतीक पुरुष नजर आते हैं। इन व्यंग्य लेखों में इनकम टैक्स से लेकर बच्चे के घर न आने तक की चिंता और लोगों की मामूली बातों पर दुखी हो जाने से लेकर छोटी-छोटी खुशियों को भरपूर जी लेने की उनकी ख्वाहिश बार-बार नज़र आती है। सीमाओं में बँधे एक मिडिल क्लास आदमी की मजबूरियाँ बार-बार इन लेखों में झलकती है। समृद्धि और प्रसिद्धि के मायाजाल में फँसे विलायती राम वास्तव में विदूरूप हो चुके हैं। उनके आदमी से मशीन और मशीन से महज मशीन का पुर्जा बन जाने की त्रासदी को लेखक ने बहुत ही बारीकी से पकड़ा और उकेरा है। सपाट बयानी लालित्य ललित की एक और खासियत है

"आज के जमाने में
आप कैसे झूठ लिख लेते हो?
कैसे उस बकवास कहानी को
सदी की उम्दा कहानी बताते हो,
क्यों...? मैं मुस्कुराया और कहा
कि यदि किसी को आप खुशी दे सकते हैं
तो मैं वह काम कर रहा हूँ।''

इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशित
व्यंग्य के दो महाग्रंथ।

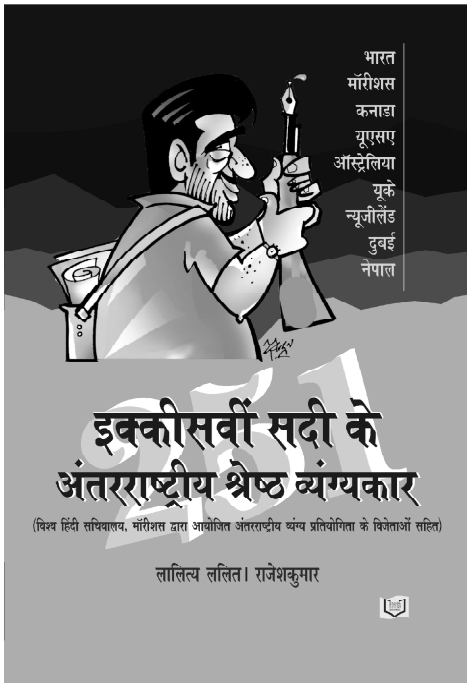

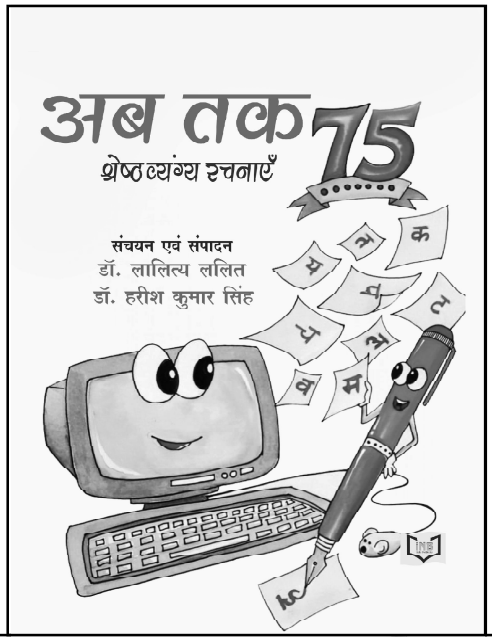

लेकिन यह सपाट बयानी भी व्यंग्य के प्रवाह को न रोकती है, न कुछ करती है। उनकी लेखनी से मानो कुछ भी कठिन कहना जानती ही नहीं है। सहज और सरल लेखन सबसे कठिन होता है। इस कसौटी पर संग्रह की तमाम रचनाएँ खरी उतरती हैं।

लालित्य ललित वर्तमान के रचनाकार हैं। उनके आलेखों में इतिहास और भविष्य दोनों ही अक्सर नदारद रहते हैं। आज के जीवन की फिक्र और चिंताएँ उनके प्रमुख लेखकीय सरोकार हैं। जैसा कि परसाई जी ने कहा था 'मैं शाश्वत नहीं लिखता, मेरा लिखा रोज मरता है।' सच तो यह है कि जो वर्तमान की कहानी लिखता है वह दरअसल इतिहास लिख रहा होता है। विलायती राम पांडेय के माध्यम से आज का वर्तमान ही मुखरित हो रहा है जो भविष्य के इतिहास के रूप में दर्ज होगा। व्यंग्य के बीच टीस के दर्शन होना ही व्यंग्य की सार्थकता प्रदान करता है। गाँधी जी के बारे में लिखते हुए लालित्य ललित की यह टीस विचारशील लोगों के लिए गले की फाँस बन रही है जब गांधी जी कहते हैं "ये वही देश है, जो कभी मेरा हुआ करता था। आज तो मुझे कोई भी नहीं पहचानता'' तभी रूट की सीटी सुनाई दी। एक पुलिसकर्मी ने गांधी को पीछे कर दिया कि बाबाजी साइड में हो जाओ, क्यों हमारी नौकरी पर बने हुए हो। यह टीस उनके लेखन की शक्ति है, जो उन्हें लिखने पर मजबूर करती है। लालित्य ललित की ढेरों पुस्तकें प्रकाशित है, यह संग्रह इस अर्थ में विशिष्ट है कि उनके कवि रूप को भी सामने लाता है। इन व्यंग्य लेखों में कहीं भी बोरियत या मोनोटोनस का आभास नहीं होता। वे छोटे-छोटे गुँथे हुए वाक्यों से एक परिस्थितियों से दूसरी दूसरी से तीसरी और इसी तरह निरंतर आगे की परिस्थितियों का बयान सहजता और निष्कपट भाव से कर देते हैं। मुझे विश्वास है कि लालित्य ललित का यह व्यंग्य संग्रह उनके व्यक्तित्व की तरह ही लोकप्रिय होगा और विधाओं के बीच बढ़ती दूरी को कम करने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

व्यंग्य के अक्षय कुमार हैं लालित्य ललित

डॉ. संदीप अवस्थी

यह पांडेय जी कौन हैं जो हर बात की जड़ तक, परत दर परत उधेड़ कर रख देते हैं? कौन है यह लालित्य ललित जो समाज, सांस्कृतिक क्षेत्र, साहित्य और राजनीति के अवसरवादिता को इतनी अच्छी तरह शब्दों में लपेटकर भिगो भिगोकर सेवा करते है कि सामने वाला दर्द तो महसूस करता है पर कैसे हुआ यह नही जानता। और जरूर उन सभी के मन में यह ख्याल आएगा कि (हम सुधर जाएं अब तो) जी नहीं, बल्कि यह कि "अबके ऐसे करे सबसे और बचाकर की किसी को और खासकर लेखक को कानोंकान खबर न हो। इंसान की इसी फितरत को व्यंग्यकार बखूबी जानता है और उसी पर निगाह रहती है उसकी। और वह लिखता भी है एकदम बिंदास।

पूरा संग्रह रोचक ढंग से आपको।

गुदगुदाती और दृश्य दिखाती यात्रा पर ले चलता है जहां देश को खा रहे, लूट रहे लोग है। तो उसी में अपनी भूमिका तलाशते पांडेय जी जैसे लोग है जो धारा में तो हैं पर यह तय नही कर पा रहे कि किस तरफ जाए? धारा के साथ बहना जमीर गवारा नहीं करता तो बचता क्या है? वही बचा हुआ खरापन, बेबसी और सच्चा, स्वास्तिक क्रोध मुस्कान के साथ इस किताब में है। संग्रह से गुजरते हुए लगता है सब चेहरे सामने है, अपनी पहचान के साथ।लेकिन जैसे ही शब्दों का तिलिस्म हटता हैएचेहरे गायब हो जाते हैं। स्यादस्ती, स्यादनास्ति, स्यादस्ती च स्यादनास्ति की तरह।

व्यंग्य विधा को साधना वस्तुतः दोधारी तलवार पर चलने जैसा है। पुस्तक में लेखक भाषा, शब्द विन्यास और चुटीले वन लाइनर से एक अद्‌भुत वितान रचने में सफल हुआ है। उसमे सभी है कल्लू मामाय लिहाज किया है इनका क्योकि यह खुद काफी पोलें जानते है (मधुबालाएँ), साहू महाराज, लपकुराम और चिलमन। इनके माध्यम से हिंदी जगत की खासकर सत्ता प्रतिष्ठानों के नजदीक के लोगों की लोलुप प्रवर्ति पर कटाक्ष किया है। हिंदीसेवियों की विदेश यात्राओं के प्रति ललक की बानगी भी है। विदेशी धरती पर भारतीयों की एडजस्टमेंट की प्रवर्ति पर लिखना काफी दिलचस्प है।यह जो जुगाड़ है यह गलतफहमी है कि गरीब तबका ही करता है। बुद्धिजीवी, रइस वर्ग तो कबसे कर रहा है। यह भी की पहिए दक्षिण के, बॉडी वाम की, स्टेयरिंग किसी और के हाथ और यात्री जुगाडू जी। और दौड़ रही है गाड़ी। संग्रह के कई व्यंग्य इतने बेहतरीन और बारीकी से बुने गए है कि वह दोहरा आनंद देते है। व्यंग्य के साथ मुस्कराते हुए उसे हकीकत के भी दर्शन करवा देते हैं। कई कुंवर बने लोगों की ही बात नही वरन कई चंचल, चपला छवि वाली देवियां भी इसमे अपने आपको पा सकती है। इसके बाद भी भारतीय नारी की छवि को लेखक बरकरार रखने में सफल है। व्यंग्य के विषयो में विविधता है। जीका वायरस, चेनलनामा, मीटू, मानसून, मैराथन, हिंदी सम्मेलन से लेकर ज्योतिष, दिल्ली की प्रदूषित हवा सब पर लेखक की पैनी दृष्टि गई है। इनमें जो तीक्ष्ण, गहरा व्यंग्य है वह यदि सरकारें समझ ले तो राम राज्य कहीं नही गया। परन्तु यह समझना उतना ही मुश्किल है सरकारों का जितना मंगल मिशन अभियान का सफल होना। मुश्किल बस यही है कि व्यंग्य में छिपी बेचैनी, अपने परिवेश, समाज, पर्यायवरण आदि के प्रति कोई तो गंभीरता से प्रयास करे।

लेखक की एक और विशेषता उसे बाकियों व्यंग्यकारों से अलग करती है। वह है परिवार, पत्नी एवच्चों की निर्द्वन्द्व आवाजाही। यही खूबी कुछ कुछ प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, भोपाल के हरि जोशी भाई में है। परन्तु लालित्य ललित के यहां मानों परिवार उनके साथ ही चलता है। यह एक शरीफ, हार्मलेस किस्म के साहित्य के दबंग है। यानी इनकी किताब को पढ़ने पर पत्नियों को कुछ भी नही मिलने वाला। यह बहुत बड़ी खूबी है वरना अधिकतर बड़े लेखको की प्रेम में पड़े होने की जानकारी उनकी पत्नी, प्रेयसी अथवा सेक्रेटरी को किताब पढ़कर ही हुई। ऐसा कोई खतरा लालित्य ललित उठने ही नही देते। यह साहित्य के अक्षय कुमार हैं।

उम्र के पड़ावों को पीछे छोड़ता एक प्रखर रचनाकार

प्रभात गोस्वामी

कुछ लोग होते हैं जो समय के साँचों में ढलकर अपने शिल्पी की इच्छानुरूप आकार लेकर खुश रहते हैं। पर, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो साँचों को अपने अनुरूप बदलकर उनसे अपनी इच्छानुसार गढ़ते हुए अपनी एक अलग पहचान बना लेते हैं। ऐसे रचनाकार कल्पनाओं के अश्व पर सवार होकर अपनी प्रखर ऊर्जा से अपना श्रेष्ठतम रच कर किसी सितारे से चमकते हैं। देश के साहित्य जगत में डॉ. ललित किशोर मंडोरा जिन्हें हम सभी लालित्य ललित के नाम से जानते हैं, ऐसे ही रचनाकार हैं। वह किसी साँचे में नहीं ढले अपितु उन्होंने खुद के साँचे बनाये।

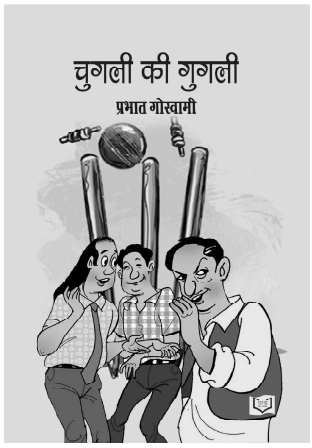

उम्र का अभी अर्ध शतक ही जमाया है लेकिन साहित्य के पिच पर धुँआधार बल्लेबाज़ी करते हुए प्रकाशित पुस्तकों के शतक के काफी निकट पहुँच चुके हैं। अगर लालित्य जी के सम्पूर्ण रचनाकर्म का अवलोकन करता हूँ तो उनकी गज़ब की ऊर्जा, लिखने के दृढ संकल्प के साथ ही तेज़ गति से गुणवत्तापूर्ण लिखने में उनका कोई मुकाबला नहीं। लालित्य जी, दिल्ली की भीड़ भरी सड़कों से गुजरते हुए भी कुछ न कुछ रचते हैं। वह अलसुबह से देर रात तक सरकारी कार्यों की व्यस्तताओं के अलावा कविता भी लिखते हैं व्यंग्य भी गढ़ते हैं, संपादन करते हैं और साहित्यिक आयोजनों में भरपूर भागीदारी भी निभाते हैं। लोगों से जनसंपर्क करते हैं। नए लेखकों का मार्गदर्शन करते हैं। उनका पूरा दिन साहित्य की सेवा में ही निकलता है। वह साहित्य ही ओढ़ते-बिछाते हैं। इन सबके बावजूद साहित्य का यह रमता जोगी घर परिवार के साथ भी अपने सम्पूर्ण दायित्त्वों का निर्वहन भी पूरी शिद्दत से करता है।

ललित जी एक संवेदनशील कवि हैं जो अपनी कविताओं में प्रेम, प्रकृत्ति, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के साथ समाज के ग़रीब व मजदूर तबके के दुःख भी साझा करते हैं। उनकी कविताओं से जहाँ प्यार छलकता है वहीं अन्याय के प्रति आक्रोश भी झलकता है। इनकी कविताओं में गज़ब की इच्छा शक्ति दिखाई पड़ती है। प्रतिदिन सुबह और शाम कविता लिखना इतना सहज भी नहीं होता। एक कवि जिसके 33 कविता संग्रह छप चुके हों यदि वह व्यंग्य के आँगन को भी अपनी कलमकारी से गुदगुदाता हो तो आश्चर्य होता है। व्यंग्य में संवाद शैली, अलबेले पात्रों और भाषा के सरस प्रवाह के साथ व्यंग्य मिथकों, चुटीले पंचों से सराबोर होते हैं।

आज लालित्य जी देश के एक नामचीन व्यंग्यकार हैं। अपने केन्द्रीय पात्र विलायती राम पांडेय के जरिए ललित जी विसंगतियों से मुठभेड़ करते हैं, विद्रूपताओं से दो-दो हाथ करते हैं तो गुदगुदाते भी हैं। आज देश में व्यंग्य के झंडे को महानगरों से लेकर छोटे शहरों तक फहराने का कार्य भी वह पूरे समर्पण के साथ कर रहे हैं। उनके 20 व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। देश के प्रमुख समाचार पत्रों-पत्रिकाओं में सैकड़ों रचनाओं का प्रकाशन, रेडियो, टीवी से प्रसारण हो चुका का है। नेशनल बुक

ट्रस्ट में संपादक के पद पर अपने कार्य से उनकी एक अलग पहचान है।

डॉ. लालित्य ललित ने अनेक संचयों में अपनी उपस्थिति दर्ज की है। सम्पादन भी करते ही रहते हैं। मेरा उनसे परिचय आभासी दुनिया के प्लेटफार्म पर ही हुआ है। एक अदद वीडियो कांफ्रेंस से परिचित कोई व्यक्ति यदि आपको हर पल अपने निकट लगे, जिसकी बोली की मिठास कानों में रस घोलती हो तो वह लालित्य ललित के सिवा कोई और हो भी नहीं सकता। मैं पत्रकारिता से राजकीय सेवा में सूचना एवं जनसंपर्क विभाग में रहा। वृहद् स्तर पर जनसंपर्क की भीड़ में चंद लोग ही ऐसे मिलते हैं जिन्हें आप दिल के करीब पाते हैं। उन्हीं में एक नाम डॉ. लालित्य ललित का भी है।

मेरे पहले व्यंग्य संग्रह की भूमिका लिखने के लिए जब मैंने आपसे आग्रह किया तो तुरंत ही स्वीकृति दे दी। एक व्यक्ति जिसे आप कुछ ही समय से केवल उसके रचना कर्म से ही जानते हों और उसकी पुस्तक पर कुछ लिखने को सहर्ष तैयार हो जाएँ यह आश्चर्य ही होगा। पर, साहित्य के समंदर की गहराइयाँ नापने वाले धरती पर खड़े व्यक्ति की थाह लेने में माहिर होते हैं। बहरहाल, 'अनुस्वार' पत्रिका के लिए जब सुप्रसिद्ध कवि और प्रतिष्ठित प्रकाशक डॉ. संजीव कुमार ने डॉ. लालित्य ललित के व्यक्तिव व कृतित्त्व पर एक विशेषांक के लिए रचनाएँ आमंत्रित की तो अपने आप को रोक नहीं पाया।

लालित्य जी का रचना संसार इतना विशाल है की चंद पन्नों पर उसे उकेरना आसान नहीं। मेरी ओर से उनके प्रति यह आदरांजलि एक मुट्ठी भर प्रयास ही होगा । अभी तक मैंने उनके रचना संसार का एक कोना ही देखा होगा। अभी बहुत कुछ देखना, पढ़ना और समझना है। मेरी दुआ है कि वह साहित्य के विराट आकाश में एक सितारे की तरह अपनी चमक से यूँ ही बिखेरते रहें।

इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशित हमारे समय के महत्वपूर्ण कथाकार सूरज प्रकाश की महत्वपूर्ण कृतियाँ

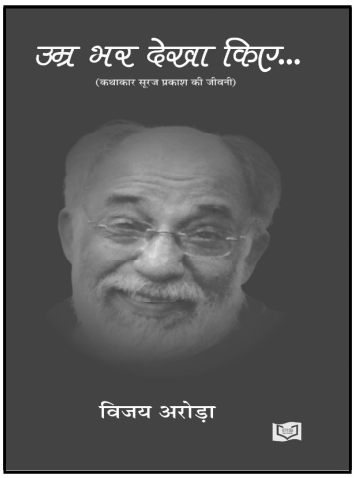

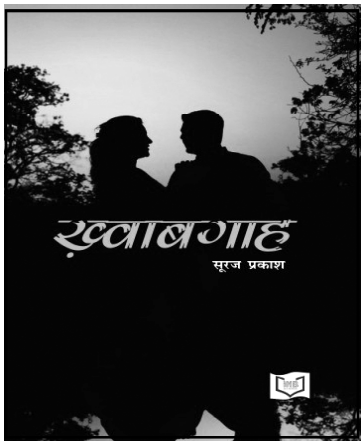

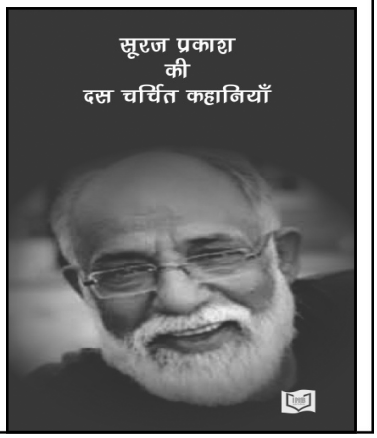

आम आदमी की विसंगतियों पर चोट करने में सक्षम

मधु आचार्य आशावादी

मेरी स्मृतियों में आज भी दिल्ली के हिन्दी भवन की स्मृति जिंदा है। अवसर था 'व्यंग्य यात्रा' द्वारा लालित्य ललित के जन्मदिन पर उनके सद्यः प्रकाशित छह व्यंग्य संग्रह का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. कमल किशोर गोयनका ने की। मुख्य अतिथि राहुल देव और विशिष्ठ अतिथि के रूप में मैं अर्थात मधु आचार्य आशावादी उपस्थित थे।

सान्निध्य प्रताप सहगल, दिविक रमेश, प्रेम जनमेजय, मॉरिशस से आए साहित्यकार रामदेव धुरंधर और अरविंद तिवारी जी का रहा। संचालन प्रज्ञा ने किया। डॉ. दिविक रमेश ने कहा कि ललित के व्यंग्य से पहले से ज्याद परिपक्व हुए है। उनकी समझ और सोच का विस्तार हुआ है।

कई बार तो उनसे डर लगने लगता है कि आज की वार्ता का कल वे समाचार पत्र में हिसाब बराबर न कर दें। नाटककार प्रताप सहगल ने कहा कि ज्यादा लिखना कई बार भयभीत भी करता है कि लेखक की रफ्तार ज्यादा क्यों है! लेकिन ललित मेरे प्रिय हैं, इनकी सोच उजली है और इनके पास विषयों का वैविध्य है, जो विषय इनसे खुद अपने को लिखवा ले जाता है, इस शब्दिक ताकत का मैं कायल हूँ।

कार्यक्र की रूपरेखा रखते हुए व्यंग्य यात्रा के यशस्वी संपादक प्रेम जनमेजय ने कहा कि आज का दिन विशेष इसलिए है कि ललित के छह व्यंग्य संग्रहों पांडेय जी और फुरसत के लड्डू, लालित्य ललित बेहतरीन व्यंग्य, डिजिटल इंडिया के व्यंग्य, पांडेय जी और जिन्दगीनामा, पांडेय जी की दुनिया एवं पांडेय जी और दिल्लगी। का एक साथ उनके जन्मदिन पर लोर्कापण हो रहा है। व्यंग्य यात्रा परिवार के लिए यह एक विशेष दिन है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि किसी गुरु के लिए इससे बड़ी खुशी और क्या होगी कि उसका शिष्य उससे आगे निकल जाए। ललित बहुत अच्छा लिख रहे हैं और लगातार लिख रहे हैं। आज के समय में व्यंग्य प्रासंगिक हो गया है।

राहुल देव जी ने कहा कि ललित की भाषा पर पकड़ जबरदस्त है। उनके व्यंग्य गुदगुदाते हैं पर चुभते नहीं है। व्यंग्य चुभना चाहिए। प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया जाना चाहिए, व्यक्ति पर नहीं।

ललित रोज लिखते हैं और कई बार व्यक्तिपरक हो जाते हैं जिस पर उनको ध्यान देना चाहिए। नाटककार

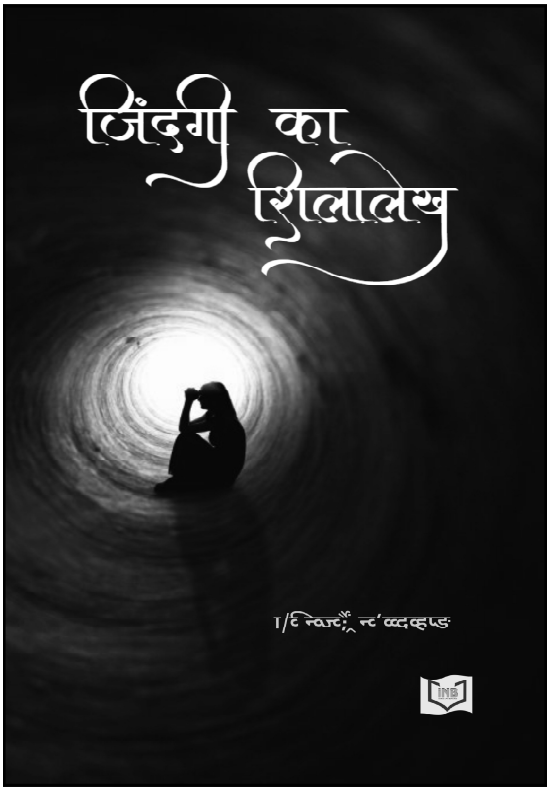

प्रताप सहगल ने कहा कि एक साथ छह व्यंग्य संग्रह का लोकार्पण होना खुशी की बात तो है, पर अच्छा होता कि इन पुस्तकों पर अलग-अलग चर्चा भी होती।

मैंने कहा कि ललित ऊर्जा से भरपूर हैं और शब्द एवं पात्र गढ़ने में माहिर हैं। उनके व्यंग्य आम आदमी की विसंगतियों पर चोट करते हैं।

मॉरिशस के वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार और इस अवसर पर विशेष रूप से मौजूद रामदेव धुरंधर ने कहा कि यह अच्छी बात है कि ललित खूब लिख रहे हैं, पर उनसे राग दरबारी जैसे एक व्यंग्य उपन्यास की अपक्षा है। लोकप्रिय व्यंग्यकार अरविंद तिवारी ने कहा कि युवा व्यंग्यकार युवा लेखन की ओर उन्मुख हो रहे हैं। यह व्यंग्य के लिए अच्छी बात है।

इस अवसर पर उपस्थित पत्रकार विजय शंकर चतुर्वेदी और डॉ. रमेश तिवारी ने भी लालित्य ललित को बधाई दी। कार्यक्रम के संयोजन सहयोगी के रूप में रणविजय राव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धन्यवाद ज्ञापन कवयित्री श्रीमी आशा कुंद्रा जी ने किया जो व्यंग्य यात्रा पत्रिका के प्रकाशेन में सक्रिय योगदान देती हैं। श्रोताओं में कई वरिष्ठ साहित्यकार उपसिीत थे। इनमें लंदन से आई शिखा वार्ष्णेय, बलदेव त्रिपाठी, सुभाष नीरव, राकेश कुमार, सुधांशु गुप्त, संजीव कुमार, राजेश तोमर, रेणुका अस्थाना, शशि किरण, संजीव कुमार, निर्भय कुमार, राजेश्वरी मंडोरा, सोनीलक्ष्मी राव, विशाल ठाकुर सहित कई लोग शामिल थे।

कविता का संसार बहुत बड़ा होता है, इसमें गहराई में उतरने की बात है, उतना ही अधिक पायेंगे। जीवन की परिस्थितियों से जूझने वाली कविता की अभिव्यक्ति लालित्य ललित की रचनाओं में साफ झलकती है।

डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग

लालित्य ललित अपनी पीढ़ी के ऐसे सहज व्यंग्यकार हैं, जिन्हें पढ़ने के लिए किसी भी वर्ग के पाठक को बहुत बौद्धिक कसरत करने की जरूरत नहीं पड़ती। उनका पात्र विलायतीराम पाण्डेय एक तो पाठकों से दोस्ती गांठ चुका है, दूसरे वह समाज की रग-रग से वाकिफ है। वह समाज को कुरेदने के लिए नहीं, उसे गुदगुदाने और सच पूछें तो फ्रेश करने के लिए अपनी सोच से अजीबो-गरीब हरकतें करता रहता है। उनकी सहज नजर आती गतिविधियों के पीछे ऐसी व्यंग्यात्मक मंशा काम कर रही होती है कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

विलायती पाठकों के लिए नए नहीं हैं। वह पहले दो व्यंग्य संग्रहों में बराबर सक्रिय रहे हैं। वह अपनी सामान्य हरकतों से भी समाज के नागरिकों का विवेक जगाने का काम कर जाते हैं। समसामयिक स्थितियों के बीच अपनी जोरदार टिप्पणी करते हुए भी वह अपनी सम्माजनक पोजीशन बरकरार रखते हैं।

लालित्य ललित के व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मजाकिया और हास्य से आगे एक सहज व्यंग्य विनोद है, जिसमें रोजमर्रा की जिन्दगी में आनन्द का आदान-प्रदान है। आज के तनाव भरे आलम में इस तरह के व्यंग्य की विशेष जरूरत है।

बधाई आपके व्यंग अंतर्मन की चोट की अभिव्यक्ति होते हुए भी वस्तुतः सामाजिक विसंगतियों को उखाड़ कर रख देते हैं पांडेयजी आपका अजर अमर चरित्र है जो कम बोल कर भी बहुत कुछ बोल जाता है। साधुवाद।

महेश भारद्वाज

अनुभूतिपरक स्थितियों पर मारक व्यंग्य में माहिर

रणविजय राव

लालित्य ललित आज व्यंग्य की दुनिया में किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। बहुत ही कम समय में अपनी धाक जमा लेने वाले गिने-चुने लोगों में वे शामिल हैं। "जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग" इनका पहला व्यंग्य संग्रह था, जो वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ था। और इसके बाद तो एक पर एक धमाके।

इतने कम समय में ललित जी के अब तक सत्रह व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, बाकी विधाओं की तो बात ही छोड़ दीजिए। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यंग्य जगत में लालित्य ललित ने जोरदार उपस्थिति दर्ज कर हलचल पैदा कर दी है।

हो सकता है ललित जी के व्यंग्य में कई लोगों को कई बार अनावश्यक विस्तार लगता हो, पर इनके व्यंग्य आलेखों में दिनोंदिन जीवन की कई छवियाँ एक साथ उपस्थित होती हैं।

यह सब किसी स्पंदन के साक्ष्य का सा आभास देते हैं। इनके व्यंग्य में बुने हुए दिनोंदिन जीवन पाठक को अपनी पहचान खोजने का सामर्थ्य पैदा करते हैं या कम-से-कम उससे जुड़े होने की उत्सुकता तो जगाते ही हैं। शायद यही कारण है कि रोज प्रकाशित होने वाले इनके व्यंग्य आलेखों का लोगों को इंतजार रहता है।

लोग अखबार की हैडलाइन तो बाद में पढ़ते हैं, पहले ललित जी के व्यंग्य पढ़ते हैं। वे जानना चाहते हैं कि आज पांडेयजी (विलायतीराम पांडेय इनके व्यंग्य का लोकप्रिय पात्र है) ने किस दफ्तर में, किस सरकारी महकमे में हड़कंप मचा दिया है, दारोगा बन कर किस नेता की या किस बिचौलिए की सिट्टी-पिट्टी गुम कर दी है अथवा पांडेयजी देविका गजोधर के साथ किस कैफेटेरिया में चाय की चुस्कियों संग मटरगस्ती कर रहे हैं। मधुबाला अपनी स्कूटी पर रामखेलावन को बैठाकर कहाँ से रिपोर्टिंग कर रही है, चिलमन आटा चक्की पर आटा क्यों नहीं पिसवा पा रहा है अथवा दगडू और पुनिया को किस सुंदरी के चक्कर में आने से कोरोना हो गया है आदि प्रसंगों से पाठक रोज-ब-रोज वाकिफ होना चाहते हैं।

ललित के व्यंग्य से पाठक इसलिए भी अपने आपको जुड़ा महसूस करता है कि इनके व्यंग्य आलेखों में जीवन की कई अनुभूतिपरक स्थितियाँ पाई जाती हैं। इनमें आस-पास परिवेश का अनुकूलन होता है जो सामान्य पाठक के जीवन से जुड़कर एक रस हो जाता है। और जीवन की अनेक

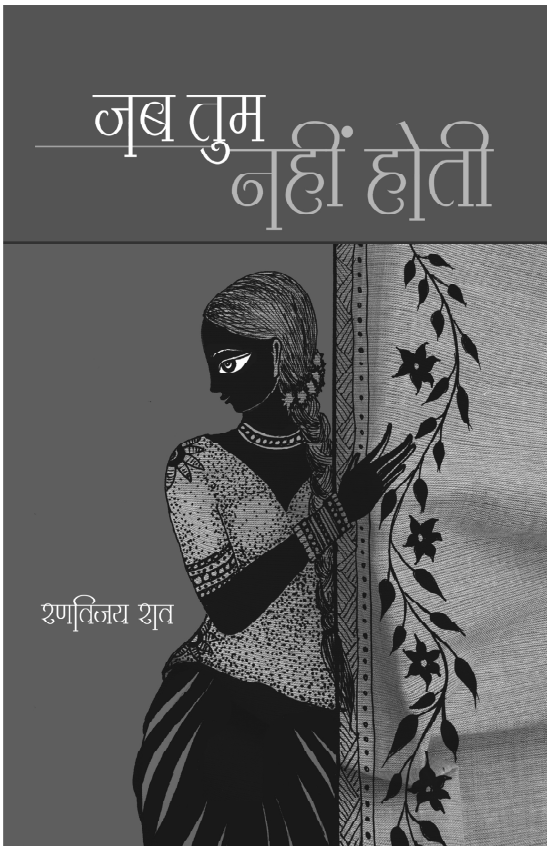

छवियों के साथ-साथ बिंब, प्रतीक, विट, ह्यूमर तो होते ही हैं। संग्रह के आलेख "पांडेयजी और कोरोना का पंगा" की एक बानगी देखिए।

"पांडेजी से अपॉइंटमेंट के लिए मिस जूली ने गजानन त्रिपाठी से सिफारिश लगाई। जूली ने नज़दीक सिमटते हुए त्रिपाठी जी से कहा कि जरा कोशिश करें आप। यदि अपॉइंटमेंट मिल जाए तो कितना अच्छा हो। त्रिपाठी जी ने कहा कि कोशिश करता हूँ, पर इस तरह के निवेदन जरा डिस्टेंस बनाकर भी किए जा सकते हैं।

एक आप हैं कि इस कदर भीतर प्रवेश करने पर आमादा हैं कि कोई शरीफ आदमी कब तक बचेगा! मिस जूली शरमा गई। कहने लगीए सॉरी त्रिपाठी जी। पांडेयजी का नाम आते ही कंट्रोल नहीं कर पाती न!"

इसी तरह से "पांडेयजी और उनकी दुनिया" आलेख में ललित जी एक कविता के माध्यम से प्रेम में चाँद-सितारे तोड़ लाने वाले मजनुओं की बात करते हुए कहते हैं :

"तुम्हारे लिए
मैं तोड़ लाऊँगा चांद-सितारे
एक बार कह कर देखो
हम्म....
कसम से
क्या टूट कर प्यार करता है
हड्डियाँ तक चटका देता है
उसे यह भी पता है
कि तोड़ लाऊँगा चाँद-सितारे
यह सब कहने की बात है।

ललित जी की नज़र केवल मेट्रो में चलते प्रेम प्रसंगों अथवा बिजली दफ्तरों के बुरे हाल अथवा पुलिस नाके पर वसूली पर ही नहीं है बल्कि कोरोना और लॉकडाउन के कारण बेरोजगार हुए लोगों, अस्पतालों के बुरे हाल, प्रवासी मजदूरों की घर वापसी से उत्पन्न दर्दनाक और भयावह स्थिति के साथ-साथ देश के अन्नदाताओं के ऊपर भी है।

जो धरती पहले हीरे-मोती उगलती थी, वही धरती अब हमारे अन्नदाता किसानों को निगलने भी लगी है। इन सब विसंगतियों विडम्बनाओं पर ललित जी की पैनी नजर जाती है।

साफ जाहिर होता है कि ललित जी देविका गजोधर संग केवल चाय-पकौड़े का स्वाद लेने में ही मस्त नहीं रहते बल्कि उक्त परिस्थितियाँ भी उन्हें बहुत व्यथित करती हैं। मीडिया सोशल मीडिया में चल रहे उछल-कूद से समाज व्यवस्था की विसंगतियों और विद्रुपताओं पर प्रहार करने से ललित तनिक भी नहीं हिचकिचाते हैं।

ललित अपने व्यंग्य में एवं कविताओं में भी समय की सतत् पड़ताल करते रहते हैं। अपने समय, आस-पास के परिवेश तथा सुख-दुख के ताप को अनुभव करते हुए और विसंगतियों पर पैनी निगाह रखते हुए विपरीत परिस्थितियों पर प्रबल प्रहार करते हैं।

बहुतों को भीड़भाड़, यात्रा आदि से घबराहट होती है, डर लगता है, लेकिन ललित जी यह सब इंजॉय करते हैं। यात्रा का रोमाँच और भीड़भाड़ जैसे उन्हें आश्वस्त करती है कि सब ठीक-ठाक है और जिंदगी अपनी रफ्तार से मंजिल तय कर रही है। उन्हें मानो ऐसा लगता है जैसे चारों तरफ जीवन लहरा रहा है और विलायतीराम पांडेय उसके बीच तैर रहे हैं। जैसे उन्हें सड़क पर भीड़भाड़ वाली जगहों में घूमना, साहित्यिक गोष्ठियों में कविता पाठ या व्यंग्य पाठ करना या संचालन करना कभी अपने में मगन रहना तो कभी दूसरों को ठीक से देखना-समझना अच्छा लगता है। इन सब चीजों को, परिस्थितियों को विलायतीराम पांडेय के बहाने अपने व्यंग्य में रखते हैं ललित।

लालित्य ललित कभी-कभी सब्जी मंडी चले जाते हैं। व्यंग्य लिखते हैं तो लगता है जैसे सब्जी मंडी से ही लाइव कर रहे हों। बोलते हैं, "मैं क्यों डरुँ भला! सारी सावधानियाँ बरतता हूँ, मास्क पहनता हूँ, पॉकेट में सैनिटाइजर रखता हूँ। मैं भला क्यों डरुं?" जब विलायतीराम पांडेय रामप्यारी के साथ सब्जी मंडी जाते हैं और चीकू भी उनके साथ होता है तो जैसे उनका सामना वहाँ व्याप्त प्राणवान आवाजों से

होता है।

कोई दुकानदार आवाज देकर सब्जी बेच रहा है, कोई ग्राहक से मोलभाव कर रहा है, किसी से ग्राहक खुद मोलभाव कर रहा है, कभी ग्राहक पूछ रहा है तो दुकानदार आवाज नहीं सुन रहा है और कभी ग्राहक ही रुठा जा रहा है। न जाने कितनी ही तरह के स्वरों, ध्वनियों, गंधों से ललित जी का साबका पड़ता है।

सारे स्वरों, ध्वनियों में मानवीय मेलजोल के स्वर और ध्वनियाँ प्रधान होती हैं। जब खरीदी गई सब्जियों के साथ मुफ्त में धनिया माँगने पर सब्जी वाला प्यार से मुस्कुराते हुए थोड़ा धनिया पकड़ा देता है तो यह मेलजोल और गाढ़ा हो जाता है। इन सब बातों को ललित जी अपने रोजाना लिखे जाने वाले व्यंग्य में पिरोते हैं।

इसलिए ललित जी की लेखनी में सहजता है। और यह सहजता उनके व्यक्तित्व से आती है। दिलचस्प पात्रों के माध्यम से दिलचस्प घटनाओं को वे अपने रोजमर्रा के अनुभवों से लिखते हैं। पाठक स्वतः ही आकृष्ट हो जाता है। ऐसा इसलिए भी होता है कि उनकी रचनाएँ केवल हँसने-हँसाने तथा पाठकों को आनंदित मात्र नहीं करते बल्कि प्रत्येक रचना किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य के साथ लिखी जाती है और सोचने पर मजबूर करती हैं। संग्रह के आलेख "पांडेय और दिलकश दुनिया" में कुछ इसी तरह की बात उन्होंने रखी हैः

"भाई साहब! ये जो दिल टाइप की चीज होती है न, बड़ी कुत्ती चीज होती है। कभी सोचा है आपने कि आपकी गाड़ी के टायरों को सतीजा का कुत्ता क्यों पवित्र कर शुभकामनाएँ दे जाता है! माफ कीजिएगा, यह शुभकामनाएँ देने का तरीका केवल पशुओं का है।

पर जी, आमतौर पर सड़कों पर रोडरेज का सीन होता है तो आदमियों में कुत्ता प्रवृत्ति के कीटाणु इस कदर हावी हो जाते हैं कि कोरोना वायरस भी क्या करेगा।"

ललित जी भली-भांति जानते हैं कि व्यंग्य को सामाजिक सरोकारों से कैसे जोड़ा जाएँ सामाजिक सरोकारों के साथ लिखे व्यंग्य आज के लिए, समाज के लिए, पीड़ितों के लिए एक जरूरी हथियार हैं।

अगर कोई पीड़ा में है तो ललित उसकी पीड़ा समझते हैं। वह यह भी देखना नहीं भूलते कि उसको पीड़ा देने वाला कौन है, कौन-सी ताकत है, कौन-सी व्यवस्था है। वह उस ताकत को, उस व्यवस्था को झकझोरने एवं उसकी चीर-फाड़ करने में लग जाते हैं।

मेरा सौभाग्य रहा है कि मैं देश-विदेश की कई यात्राओं में उनके साथ रहा हूँ। मैंने इस बात को नोट किया है कि सुबह जब सब सो रहे होते हैं, उनके जगने से पहले ही ललित जग जाते हैं। और दूसरों के जगने-जगने तक एक कविता और एक व्यंग्य लिख लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति अपने लेखन के प्रति इस हद तक समर्पित हो तो उसके लेखन की सीमाओं की थाह नहीं।

ललित अच्छी तरह जानते हैं कि व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो व्यंग्यकार को आम आदमी के दुख दर्द से पूरी संवेदना और सक्रियता से जुड़ने के लिए तब पुकारता है, जब कहीं अन्याय और अन्यायी द्वारा किसी निर्दोष व्यक्ति को सताया जाता है, किसी सबल द्वारा निर्दोष व्यक्ति पर बलात झूठे आरोप लगाए जाते हैं और जब किसी भ्रष्टाचारी द्वारा व्यवस्था का तार-तार किया जाता है।

वह जानते हैं कि व्यंग्य गरीबों के पक्ष का, निर्बलों के पक्ष का बादल है, वह केवल गरजता ही नहीं बल्कि बरसता भी है। और यह बरसात ललित सिर्फ लेखन से ही नहीं बल्कि विचारों से भी करते हैं। उनकी बस यही कोशिश होनी चाहिए कि व्यंग्य व्यक्तिपरक नहीं बल्कि प्रवृत्तिपरक हो। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि उनके प्रवृत्तिपरक व्यंग्य उन्हें व्यंग्यकारों की अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा करेंगे।

इस संग्रह के लिए ललित जी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ और बहुत-बहुत बधाई।

जिंदगी की जंग और पांडेयजी

जयप्रकाश पांडेय

कुल्लू मनाली में एक महत्वपूर्ण व्यंग्य महोत्सव के दौरान श्री लालित्य ललित जी ने एक व्यंग्य संकलन की पांडुलिपि दी थी भूमिका लिखने के लिए। पांडुलिपि के अधिकांश व्यंग्य अपने आस-पास की जमीन और लोक व्यवहार जैसे विषयों से उठाए गए हैं और सूत्रधार विलायतीराम पांडेय के मुखारबिंद से तथा लालित्य जी की कलम से अवतरित हुए हैं अतः लालित्य ललित जी का यह सोचना जायज है कि पांडेय जी की आँखन देखी से उपजे व्यंग्य संकलन की भूमिका किसी "असली पांडेय जी" से लिखवाई जाएँ पुस्तक के साथ भूमिका का प्रकाशन आम चलन है, भूमिका पाठक को पुस्तक पढ़ने और विषय वस्तु को ग्रहण करने के लिए पाठक को तैयार करती है। भूमिका लेखक पर पाठक कुछ ज्यादा ही भरोसा कर जाता है पर जाग्रत सुसंस्कृत पाठक थोड़ा सतर्कता से काम लेते हैं।

पुस्तक के लेखक कवि, व्यंग्यकार और नेशनल बुक ट्रस्ट के सम्पादक हैं इनके अभी तक ग्यारह व्यंग्य संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। ये भाई अपने अनुज सरीखे हैं और फटाफट व्यंग्य लिखने में तेज हैं। हिन्दी की तमाम पत्र पत्रिकाओं में इनके व्यंग्य, कविता लगातार छपती रहती हैं। छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर के चर्चित अखबार में प्रतिदिन एक लम्बा व्यंग्य छपता है। इस पुस्तक के सभी व्यंग्य लेख इस अखबार में छप चुके हैं। इन्होंने अपने बलबूते पर एक बड़ा पाठक संसार बनाया हुआ है अतः इनकी पुस्तक की भूमिका लिखते हुए मुझे अत्याधिक प्रसन्नता महसूस हो रही है। जब निकट भविष्य में यह पुस्तक पुरस्कृत होगी तो मुझे लगता है कि मैं साधारण से असाधारण की श्रेणी में आ सकता हूँ।

लालित्य ललित जी प्रभावशाली और सम्पर्कों वाले व्यंग्यकार हैं, भविष्य में उनसे मैं भी अपनी किसी पुस्तक की भूमिका लिखवाने की कोशिश जरूर करुँगा। लालित्य जी प्रतिदिन रोजमर्रा जिंदगी के पहलुओं को लेकर व्यंग्य लिखते हैं अखबारों और सोशल मीडिया के मार्फत उनके व्यंग्य लेख हजारों हजार पाठकों द्वारा प्रतिदिन पढ़े जाते हैं। मात्र दो वर्षों में ग्यारह व्यंग्य संकलन निकालना हँसी खेल थोड़े न है। जीवन के बहुरंगी मुद्दों को इन व्यंग्य लेखों में लालित्य जी ने बोल चाल की भाषा में सहजता और सरल प्रवाह के साथ प्रस्तुत किया है। रोजमर्रा की जिंदगी में हर पल कितने ही ऐसे प्रसंग खड़े होते हैं जहाँ लालित्य जी अपनी रचनाओं में कभी विलायती राम पांडेय कभी चिलमन कभी मधुबाला कभी कल्लू लल्लू कभी नुक्ता चीनी राम, दयाल बाबू, पुनिया और कभी रामलुभाया के रूप में प्रगट हुए हैं।

आज इस तेजी से बदलते युग में व्यंग्य लेखों की सामयिकता के बदल जाने का खतरा हर समय मंडराता रहता है ऐसे समय व्यंग्यकार का फटाफट लिखना और छपना मजबूरी हो जाता है और सीधी सी बात है व्यंग्य के अनंत संसार में हर व्यंग्यकार के हिस्से की जमीन अलग हो सकती है जिसमें वह मरता खपता है।

संकलन के व्यंग्य लेखों में विलायती राम पांडेय सूत्रधार के रूप में हर लेख में क्रेंदीय पात्र के रूप में उभरकर आते हैं लालित्य जी का यह पात्र आम जीवन की आम घटनाओं को अलग-अलग अंदाज से भोगता हुआ पाया गया है। "पांडेय जी पार्क और बिन माँगी सलाह" में आज के युग में सलाह ही ऐसी चीज है जो बिन माँगे मिल जाती है और कहीं आपने माँग ली तो दिन में तारे दिखा जाती है। 'पांडेय जी की अपनी दुनिया में कोई हारता रहता है कोई जीतता रहता है इसलिए पांडेय जी की दुनिया मायावी दुनिया है।

'पांडेय जी और वाई फाई का लोचा' में वे कहते हैं प्रगतिशील मनुष्य का पहला मूलभूत अधिकार यह होना चाहिए कि उसे काम करना चाहिए इससे वह सृजनात्मक बना रहता है पांडेय जी ने आबू धाबी के मेले में मेला बने लोगों की सोच में फर्क के अलावा तरह-तरह के दृश्य देखे जिससे मोक्ष की प्राप्ति का संशय हुआ। "पांडेय जी की दुनियादारी" में एक नये पात्र उल्लू सिंह चौबे का आगमन हुआ है उल्लू सिंह पहले बैंक में काम करते थे अब रिटायर हो गए हैं।

"पांडेय जी और पानी का टैंकर" में विलायती राम पांडेय जल सरदार की भूमिका में दिखते हैं और अन्नपूर्णा से चाय पीकर उसको पानी पिलाते रहते हैं।

पांडेय जी शीर्षक से प्रारंभ होने वाले कुल 18 व्यंग्य लेखों की इस पुस्तक में लालित्य जी की तराशी कलम से निकला हर व्यंग्य पठनीय और वर्तमान स्थिति की लाग लपेट बयाँ करता है। आस-पास के परिवेश में विविधताएँ और विसंगतियाँ देखने में पांडेय जी की तिरछी नजर का जबाब नहीं और उनकी देविका गजोधर का भी जवाब नहीं जो बिगड़ी स्थितियों को बड़े सलीके से संभालती हैं।

कथाकार हीरालाल नागर की राय

"समझदार किसिम के लोग" काव्य संग्रह पढ़ने के बाद "समझदार किसिम के लोग" कविता संग्रह अपने में गहरा व्यंजना भाव समेटे हुए है, मगर उसके अंदर की कवितायें मनुष्य के जीवन, बल्कि आम जीवन से आत्मीय रिश्ता बनाती हैं। अपनी बात को बड़े ही खिलंदड़ अंदाज में कह देना ही कवि लालित्य ललित की विशेषता है कि जिस पर आप कुर्बान हुए बिना नहीं रह सकते।

भाषा के सहज प्रवाह और सरस संवाद में लालित्य ललित की ये कवितायें आदमी को आदमी की तरह जीने को बाखबर ही नहीं करतीं, उसके चेतना जगत को भी समृद्ध करतीं हैं।

हीरालाल नागर

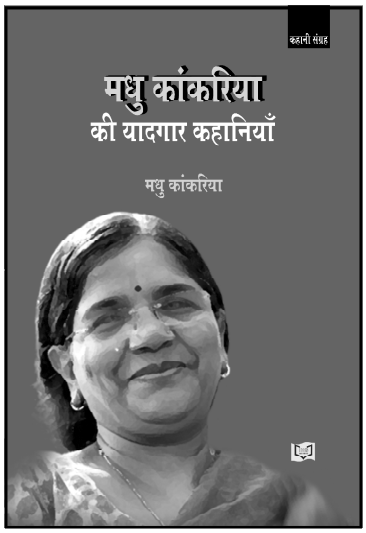

पुस्तक मूल्य : 250 रु.
पुस्तक पृष्ठ : 176
प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि.

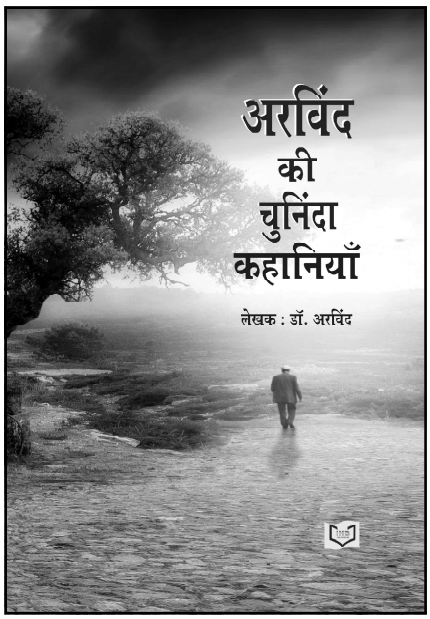

पुस्तक मूल्य : 200 रु.
पुस्तक पृष्ठ : 104
प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि.

समकालीन हिंदी व्यंग्य के अग्रज ध्वजवाहक

हरीश कुमार सिंह

यह कहा जाता रहा है कि हिन्दी में व्यंग्य का लेखन और सृजन जिस अनुपात में हुआ है उस हिसाब से व्यंग्य का विवेचन और मूल्यांकन नहीं हो पाया है। लेकिन यह बात अब आई गई हो गयी है क्योंकि अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। यह समय 'व्यंग्य समय' है और चारों ओर व्यंग्य लेखन का बोलबाला है, दबदबा है और व्यंग्य पर चर्चा और समालोचना भी जारी है। आज दिन प्रतिदिन नए-नए व्यंग्यकार सामने आ रहे हैं तो सोशल मीडिया ने लाखों की संख्या में व्यंग्यकार पैदा कर दिए हैं और इतने व्यंग्य कमेन्ट आते हैं कि लगता है देश व्यंग्य और व्यंग्यकारों से भरा पड़ा है। यह अच्छी बात है क्योंकि व्यंग्य में अपनी बात कहकर सब खुश हो लेते हैं।

व्यंग्य निरंतर विकास कर रहा है और ऐसे में आसान माना जाने वाला 'व्यंग्य लेखन' कठिन होता जा रहा है क्योंकि जो आप सोचते हैं, लिखना चाहते हैं, उस विषय पर सोशल मीडिया पर कमेन्ट आ चुके होते हैं और व्यंग्यकार को उस विषय पर कुछ नया लिखने की चुनौती सदैव बनी रहती है। हिन्दी में व्यंग्य लेखन की समृद्ध परंपरा भारतेंदु युग से ही रही है। प्रख्यात व्यंग्यकार शंकर पुणतांबेकर के अनुसार व्यंग्य को सही मायने में गंभीरता शरद जोशी और हरिशंकर परसाई ने प्रदान की।

व्यंग्य को हास्य श्रृंगार या चटखारेबाजी से अलग कर इन्होनें व्यंग्य को नयी दृष्टि दी, नया वेश दिया और व्यंग्य को विदूषक से चिंतक और शूद्र से क्षत्रिय बनाया। जाहिर है व्यंग्य विसंगतियों की पिच पर चौके-छक्के लगाता है। वर्तमान में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, पारिवारिक, न्यायायिक, साहित्यिक विसंगतियाँ चारों ओर अटी पड़ी हैं जिन्होंने जनमानस को काफी गहराई तक प्रभावित किया है। अपने चारों और बिखरी इन विसंगतियों के इस स्वर्णिम दौर में केवल व्यंग्य ही लिखा जा सकता है । बाजारवाद और मूल्यहीनता के इस कठिन समय में आज जब पाठक के पास पढ़ने का बिलकुल समय नहीं है और समाचार पत्र-पत्रिकाओं को वह अपनी रूचि के अनुसार सरसरी निगाह से देखकर एक और फेंक देने से पहले वह छपे हुए शब्दों में से कुछ मनोरंजक, गुदगुदानेवाली और खरी-खरी चीजें खोजने की कोशिश करता है तो उसकी नजर व्यंग्य स्तंभ पर पड़े बिना नहीं रहती।

समकालीन व्यंग्य में आज व्यंग्यकार लालित्य ललित का नाम बहुत ही सम्मान और आदर से लिया जा रहा है। वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री लालित्य ललित का यह चौदहवाँ व्यंग्य संग्रह है। आपके व्यंग्य पक्ष से सम्पूर्ण साक्षात्कार, आपके नए संकलन के व्यंग्यों को पढ़ने के बाद ही होता है क्योंकि आप एक श्रेष्ठ कवि भी हैं और संपादक भी। ललित जी के व्यंग्यों का प्रमुख पात्र विलायती राम पांडेय है जो समाज की नब्ज टटोलते हुए उसे परखते हैं और फिर अपनी बात गंभीरता से कहते हैं। पांडेय जी के अन्य सहयोगी पात्र पत्नी रामप्यारी, चेला चिलमन, विदुषी देविका गजोधर आदि हैं जिनके माध्यम से ललित जी अपनी बात कह जाते हैं। पाठकों की दुनिया में लालित्य ललित के व्यंग्य और विलायती राम पांडेय एक दूसरे का पर्याय बनकर, आज स्थापित हो चुके हैं।

संकलन के व्यंग्यों में धार्मिक आडंबर पर सटीक निशाना है कि किस तरह व्रत रखने वाली महिलायें तो भूखी रहतीं हैं मगर भगवान को छप्पन भोग के नाम पर पंडित जी मजे करते हैं। व्यंग्यों में कार्यालयों में बाबुओं की मक्कारी पर प्रहार है तो देश के बिल्डर किस तरह मकान और फ्लैट के नाम पर पैसा हजम कर भाग रहे हैं, पर व्यंग्य किया गया है। वर्तमान में जनता के सबसे ज्यादा मददगार माने जाने

वाले चौथे स्तंभ की भी यह कहकर खबर ली गयी है कि आजकल की पत्रकारिता, नकली खोया पनीर की मानिंद हो गयी है। आने वाले समय में पत्रकारिता का स्थान यदि व्यंग्य ले ले तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। सत्ता पाने के लिए राजनेता और राजनीतिक दलों ने अपनी विश्वसनीयता किस तरह खो दी है, सभी भली-भांति परिचित हैं और एक व्यंग्य में इसीलिये पांडेय जी कहते हैं कि सत्ता हथियाने के लिए ये कुछ भी करवा सकते हैं और अगर सब वादे पूरे हो गए तो आने वाले कल में इन्हें कौन पूछेगा। संकलन में ललित जी ने कुछ नये जुमले भी गढ़े हैं जैसे 'कूड़े के आडंबर हैं, नेताओं की जुबान की तरह साधु किसिम के सूरमा भोपाली। विकास कागजों पर, इश्क मेट्रो की सीढ़ियों पर। साहित्यिक बिरादरी में चिलम भरने की, वरिष्ठ कनिष्ठ की सनातन परंपरा चली आ रही है और ललित जी ने भी बड़ी मछली छोटी मछली जैसी उपमाओं का प्रयोग कर इस परंपरा की खबर ली है। हालांकि यहाँ तक आते-आते ललित जी के, संकलन के वरिष्ठ साहित्यकार समझदार हो गए हैं और बखूबी समझते हैं कि कौन कनिष्ठ, कितनी मालिश कब और क्यों कर रहा है। विदेश यात्रा के तामझाम और पचड़ों पर भी कटाक्ष है। सोशल मीडिया से लेकर ब्रेकिंग न्यूज़ लपकू, खबरिया चैनलों की खबर भी ललित जी ने खूब ली है। पारिवारिक मूल्यों के पक्षधर पात्र पांडेय जी, पारिवारिक मामलों को लेकर सजग हैं और व्यंग्य में पति-पत्नी की नोंकझोंक मजा देती है। नए विषय और प्रयोग के लिए जाने, जाने वाले ललित जी ने अपने व्यंग्य में, कविता को भी स्थान दिया है। ललित जी के व्यंग्य के सूत्रधार पांडेय जी का मन जब कविता लिखने का होता है तो वह व्यंग्य में आ जाती है और सोने में सुहागा की भांति परिलक्षित होती है ।

व्यंग्य लेखन के लिए जितने भी विषय हो सकते हैं, ललित जी ने सब पर व्यंग्य लिखा है और सबसे अलहदा बात यह है कि इन व्यंग्य को पढ़ते हुए एक नयापन सा लगता है। आज व्यंग्य लेखन को लोकप्रिय, पठनीय और साहित्य की महत्वपूर्ण विधा यदि किसी ने बनाया तो उसका श्रेय अग्रज और समकालीन व्यंग्यकारों को जाता है और श्री ललितजी इसी व्यंग्य परंपरा के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। व्यंग्य लेखन के लिए आस-पास कच्चा माल भरपूर मात्रा में मौजूद है मगर व्यंग्य के मानदंडों के अनुरूप इस कच्चे माल से बेहतर व्यंग्य सृजन करना आसान नहीं है क्योंकि आपाधापी में व्यंग्य, अधिकतर एक टिप्पणी बनकर रह जाता है मगर कच्चे माल से, एक 'ललित व्यंग्य' रचने में, ललित जी निष्णात हैं। आज व्यंग्य की शब्द सीमा को लेकर नए-पुराने व्यंग्यकारों में काफी बहस होती है और व्यंग्य टिप्पणी, लघु व्यंग्य, वन लाइनर व्यंग्य जैसी चीजें भी सामने आ रही हैं। यहाँ ललित जी को बधाई देनी चाहिए कि उनके व्यंग्य एव्यंग्य की विधागत सीमा जो एक लेख या निबंध के समकक्ष होती है का परिपालन करते हैं और ललित जी के लगभग सभी व्यंग्य, मुकम्मिल सीमा में हैं। व्यंग्य का उद्देश्य प्रवृति पर प्रहार करना रहा है न कि व्यक्ति विशेष पर और ललित जी के व्यंग्य, मानवीय प्रवृतियों को ही अपने व्यंग्य के केंद्र में रखकर चुटकी लेते हैं। ललित जी के व्यंग्य सोद्देश्य हैं और उनके व्यंग्य किसी को आहत या शर्मिंदा न करते हुए, यथार्थ और आदर्श के बीच संतुलन रखने वाले व्यंग्य हैं । किस्सागो शैली में लिखे गए संग्रह के सभी व्यंग्य वैचारिकता के स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। ललित जी ने जैसा दिखा, वैसा लिखा और अपनी नवीन, चमत्कृत भाषा शैली से व्यंग्य उत्पन्न किया है। ललित जी के व्यंग्य में भाषाई कौतूहल है और व्यंग्य पढ़ते समय उत्सुकता बनी रहती है। व्यंग्य में उनकी संवाद लेखन शैली आनंदित करती है। भाषा अलंकारिक न होकर सहज, सरस है और ललित जी के व्यंग्य पढ़कर चेहरे पर हँसी और वैचारिक रूप से आत्मिक संतोष प्राप्त होता है। संकलन की रचनाएँ मन को प्रसन्न करने वाली होकर, बेहतरीन व्यंग्य रचनाएँ हैं। इसलिए मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि लालित्य ललित जी समकालीन हिंदी व्यंग्य परंपरा के अग्रज ध्वजवाहक हैं।

विलायतीराम पांडेय आम जीवन का महानायक है

चंद्रकांता

'आयुष्मान भवः पांडेय जी' बहुचर्चित व्यंग्यकार लालित्य ललित के इक्कीस चुनिंदा व्यंग्यों का संग्रह है। व्यंग्य भावों का एक ऐसा समुच्चय है जिसमें हास-परिहास, हँसी ठिठोली और वक्रोक्ति के साथ संदेश, उपदेश, लोक, विनोद, नीति और मार्गदर्शन जैसी भावनाएँ भी जुड़ी हुई रहती हैं। इन समस्त भावों की उपस्थिति व्यंग्य को टिकाऊ बनाती है। व्यंग्य का यही टिकाउपन आपको व्यंग्यकार लालित्य ललित के इस संग्रह में देखने को मिलेगा।

लेखक ने बहुत ही हल्के-फुल्के और सधे हुए अंदाज में रोजमर्रा के जीवन की विसंगतियों को अनावृत किया है। यह लेखक की खासियत है कि न तो वे किसी पर व्यक्तिगत तंज करते हैं और न ही किसी विचार या दर्शन के फेर में पड़ते हैं। इसलिए इन रचनाओं का भरपूर स्वाद जमीन का आदमी भी ले सकता है। लेखक की आँख एक कैमरामैन की तरह हैं जो विशेष फ़िल्टर के माध्यम से अपने आस-पास की घटनाओं पर बारीक नजर रखती हैं। सामयिक घटनाओं को विशेष नजरिये से देखने का हुनर एक लेखक के पास होना ही चाहिए।

किसी व्यंग्यकार को आम जनजीवन से जुड़ी हुई भाषा ही ख़ास बनाती है। किस्सागोई में लेखक की कथन शैली अलग मिज़ाज की है, उनके यहाँ मूल किस्सों में अंतर्निहित कई छोटे-बड़े किस्से हैं। लालित्य ललित की व्यंग्य शैली बहुतेरे स्थानों पर कथा साहित्य की स्वप्न शैली का स्वाद भी देती है। लेखक ने सपने में भी कई कथाँ, और कविताएँ बुनी हैं। "पांडेय जी बन गए प्रधानमंत्री" उनकी इस अनुपम शैली का सबसे अच्छा उदाहरण है। स्वप्न शैली के माध्यम से लेखक ने न केवल अपने अवचेतन को प्रस्तुत किया है बल्कि समाज का मनोविश्लेषण भी किया है।

'आयुष्मान भवः पांडेय जी' की व्यंग्य रचनाएँ एक किस्म का रिपोर्ताज है। लेखक को लोकनायक कबीर की तरह आँखन देखी पर विश्वास है वे लाइव कमेंट्री के माध्यम से लोक व्यवहार को उघाड़ते चलते हैं। जैसे जब वे किसी शादी समारोह में जाते हैं तो वहाँ घटित हो रही सूक्ष्म सी घटना पर भी लेखक की पैनी नजर रहती है। जैसे कोई सेल्फी लेने में व्यस्त है तो कोई मलाई चाप के पंडाल पर, किसी के घुटनों में दर्द है तो किसी को कुर्सी की तलाश तलाश है।

लेखक सामाजिक काजक्रमों को लेकर भी सदैव अपडेट रहता है इसलिये वह आपको 'डिजिटल शादी' की चटपटी ख़बरों के लोक में भी पहुँचा देता है। इस पुस्तक में सांस्कृतिक छवियों की बहुलता है जिसे लेखक ने लोक व्यवहार के माध्यम से पेश किया है।

विलायती राम पांडेय 'आयुष्मान भवः पांडेय जी' संग्रह का मुख्य किरदार है। उनकी रंग बिरंगी दुनिया बदलती रहती है। वे कभी जिलाधिकारी बन जाते हैं तो कभी हलवाई, कभी बिजली विभाग में पहुँच जाते हैं तो कभी आबकारी में, कभी ढाबा खोल लेते हैं तो कभी चाय का खोका, कभी शिक्षक बन जाते हैं तो कभी संपादक।

पांडेय जी आम आदमी का किरदार हैं इसलिये लेखक ने उन्हें पेशों की पर्याप्त विविधता मुहैया करवाई है। पांडेय जी को धूप, बारिश या सड़क सब कुछ रोमांचित करता है। पांडेय जी एक संवेदनशील व्यक्ति हैं, उनमें मानवीयता अब भी शेष है। उन्हें जीवन में अनावश्यक किस्म की हड़बड़ी नहीं है। पुस्तक के केंद्रीय पात्र पांडेय जी की सबसे बढ़िया बात यह है कि वे किसी बात का लोड नहीं लेते और पल भर में खुद को किसी भी पात्र के साथ कनेक्ट कर लेते हैं कनेक्शन बनाने में मास्टर हैं अपने पांडेय जी। इस चरित्र को श्याम और श्वेत में नहीं समझा जा सकता।

पांडेय जी समाज की इकाई हैं। वह अच्छाइयों और खामियों से गुंथा हुआ एक आम आदमी है जो सुपरमैन नहीं है लेकिन अपने जीवन का नायक है। जो वक्त पर ऑफिस पहुँचता है, जिसका ह्यूमर गज़ब का है, जो जीवन को लेकर आशावान है, जो दिलफेंक है लेकिन अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने में चूक नहीं करता। पांडेय जी खाने-पीने और यात्रा करने के शौकीन हैं और मंगलवार को ड्रिंक नहीं लेते।

यह चरित्र आम जीवन का अभिनेता है उसकी दिनचर्या ही उसका नायकत्व है। लेखक ने पांडेय जी का चरित्र ही इस तरह गढ़ा है कि वे सर्वव्याप्त दिखते हैं। उनकी दुनिया इतनी अधिक गतिमान है कि पलक झपकते ही वे कहीं और पहुँच जाते हैं और विषय बदल जाता है।

लालित्य ललित के अन्य पात्र रंगमंच की किसी नाट्यमंडली की तरह हैं जो कथानक बदलने पर अपना स्वरुप भी बदल लेते हैं। किन्तु, इन पात्रों का अनूठापन यह है की उनकी आचरण गत प्रवृत्तियां नहीं बदलतीं। रामप्यारी, मधुबाला, टिप्सी, अंतर्मन, राधेलाल, असंतुष्ट कुमार, रामखेलावन, रूपमती आदि उनके नियमित पात्र हैं। कुछ पात्रों के नाम बेहद दिलचस्प है फुलवा डकैत, पिंटू पंचर, शेफाली दारूवाला या शेफाली दहीवाला इन्हें सुनते ही पाठकों के पेट में गुलगुले उठने लगेंगे।

फुलवा डकैत के चरित्र में उन्होंने विरुद्धों का खूबसूरत सामंजस्य किया है फुलवा का धंधा लूटपाट और डकैती का है लेकिन शौक से वे कविता भी लिखते हैं।

बतौर व्यंग्यकार लालित्य ललित का रेंज और उनके सामाजिक सरोकारों का पटल बहुत बड़ा है। उनकी रचनाओं में 'छज्जा' और 'सड़क' भी एक किरदार बनकर आते है। पांडेय जी को छज्जे पर बैठना पसंद है यहाँ बैठकर उनके भीतर का आम आदमी रचनात्मक मोड में आ जाता है। छज्जे पर बैठकर ही वे भागती दौड़ती दुनिया का जायजा लेते रहते हैं। वहाँ से वे सड़क को देखते हैं। सड़क उनके लिये एक अनुभव है। सड़क पर वे आते जाते लोगों, खाने के ठेले, पैदल चलते मजदूरों, दुपहिये पर लटके हुये निम्न मध्यम वर्ग और रेंगती हुई गाड़ियों के साथ रेंग रहे मध्यम वर्ग की तस्दीक करते हैं। लेखक की पारखी नजर में सड़क की अपनी एक गृहस्थी है। सड़क पर केवल तारकोल नहीं है, सड़क पर शहर है संस्कृति है, पिटते हुए लोग हैं तमाशबीन हैं, मज़दूर हैं फुरसतिये हैं...

'सड़कों पर शहर है
शहरी लोग हैं उसमें गाँवों के आँचलिक लोग भी है
जो किसी काम से शहर में आए हैं
कुछ रोजगार परक हैं
कुछ व्यावहारिक भी
कुछ टाइमपास फुरसतिया भी हैं
सड़कों पर गाड़ियाँ भी हैं
दुपिहया से लेकर चौपाया तक
नए मॉडल से लेकर खटारा तक
अपनी औकात से लेकर फैशन तक
कर्ज में डूबे और कब्जियत से अघा, लोग
सड़क-सड़क से लापता हैं
उसमें गड्ढे हैं
लगता है सड़क के ठेकेदार की व्यवस्था भी
ईएमआई में फँस गई है
कुछ नहीं किया जा सकता

कुछ भी तो नहीं ('सड़क पर सड़क नहीं' पांडेयजी और दुनिया रंग-रंगीली) 'आयुष्मान भवः पांडेय जी' का एक अहम पात्र रामप्यारी है। वे पांडेय जी की पत्नी और एक सुघड़ गृहणी हैं। उनके संबंधों में अनुभव की प्रौढ़ता और प्रेम की परिपक्वता है जहाँ वे बगैर बोले एक-दूसरे की मन की बातों को समझ लेते हैं। पांडेयजी के जीवन के प्रत्येक फ्रेम में बैकड्राप में उनकी पत्नी रामप्यारी ही हैं।

'जब भी
पहाड़ देखता हूँ
तुम याद आती हो
तुम्हारी निश्छल मुस्कान

तुम्हारी सरलता और तुम्हारा
सबसे अनूठा और सौम्य व्यवहार
तुमसे बहुत कुछ सीखा है।
नयापन और अनूठे ढंग से अपने काम में लगे रहना'
(जब भी पहाड़ देखता हूँ पांडेयजी और अयाचित छुट्टियाँ)

'आयुष्मान भवः पांडेय जी' में ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर लेखक ने व्यंग्य न किया हो। घर, ऑफिस, बाजार, व्यापार, शादी, अस्पताल, सरकार, राजनीति, स्थानीय निकाय, भ्रष्टाचार, रिटायर्मेंट, योग, रोग, घरेलू सहायक, ऑफिस कर्मचारी, मौसम, व्यंजन, मनोरंजन, नवरात्र, भाषा, साहित्यिक जुगाड़, अनुशंसा आदि पर बड़ी बेबाकी से लिखा है। लेखक को भाषा और साहित्य की भी फ़िक्र है। उन्होंने साहित्यकारों की महत्वाकाँक्षाओं का बढ़िया खाका खींचा है।

'हिंदी का लेखक हूँ
गिड़गिड़ाना जानता हूँ
प्लीज समझा करो' (पांडेय जी और खिसकती दुनिया)
'जैसे सब्जी मंडी में आढ़ति, होते है
वैसे ही
लेखन में भी मौजूद है
किसिम-किसिम के
हर वैरायटी के
(लेखक की जिंदगी और उसका टशन)

'खुश रहिये, खुजलाने का जो अपने भारत में मजा है। अब साहित्य में खुजलाओ या राजनीति में सब जगह एक ही रोग है। वह है आगे बढ़ने का। यानी महत्वकांक्षी होने का कीड़ा।'' (पांडेय जी और खिसकती दुनिया)

लेखक ने भाषा और साहित्य को बचाने की कवायद में प्रवासी लेखक साहित्यकारों पर भी करारा व्यंग्य किया है। 'पांडेय जी और प्रवासी प्रेम' नाम से लेखक ने एक पूरी व्यंग्य रचना ही लिखी है जहाँ लक्षणों के आधार पर प्रवासियों की श्रेणी बताते हुए उन पर व्यंग्य किया है। लेखक ने साहित्यिक लोकार्पण के समय नवोदित लेखकों की तुलना कलम के अद्भुत धनी लेखकों से किये जाने से परहेज का मशवरा भी दिया हैं। वे प्रवासी भारतीयों की अवसरवादिता को भी नहीं छोड़ते । उन्होंने ऐसे प्रवासी लेखकों की जमकर धुनाई की है जो विदेश का सुख चख लेने के बाद जिन्हें देश की मिट्टी गंदगी की तरह लगती है जबकि ये वो लोग हैं जिन्होंने देश के विकास के लिये शायद ही कभी कोई योगदान दिया हो

'पांडेयजी ने देखा और महसूस किया है कि दर्जन भर लेखक जो भारत में एक जमाने में रहते थे मगर किसी काम से विदेशों में वहाँ के लोगों को ये भरम दिला रहे हैं कि उनके भीतर प्रेमचंद, निराला, प्रसाद बसते है, कोई तो यहाँ तक भी कह देती है कि महादेवी जी की लेखनी इनके लेखन में परिलक्षित होती है, जबकि सच्चाई उनको भी पता है कि घंटा! उनके लेखन से न तो किसी की किस्मत बदलने वाली है, न कुछ और स्यापा होने वाला है।' (पांडेय जी और प्रवासी प्रेम)।

'वहाँ ठंड पड़ती है तो आप लोग यहाँ भाग लेते हैं। आप का कसूर नहीं। बहुत सारे पंछी हैं ऐसे' (पांडेय जी और उस्तादियाँ) 'व्यंग्य आम आदमी का विवशताजन्य हथियार है' वरिष्ठ व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय जी की कही यह बात लालित्य ललित की भाव योजना पर एकदम सटीक बैठती है। व्यंग्य भाषा का वह संस्कार है जो अपने समय की विसंगतियों से सीधा टकराव करता है। लेखक ने अपनी व्यंग्य रचनाधर्मिता का प्रयोग आम आदमी के पक्ष में किया है। लेखक ने कई प्रसंगों में लोकतंत्र के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने वालों पर करारा व्यंग्य किया है।

'आजकल पांडेय जी नाराज हैं स्थानीय निकाय से। जिसे देखो वह अवैध निर्माण में ऐसे हाथ बँटा रहा है जैसे कार सेवा हो और इस तरह के सामाजिक कार्य में एक दूसरे की मदद करने से सभी प्रकार कर पापों से मुक्ति मिलती है।' (पांडेयजी और दुनिया रंग-रंगीली)

'आखिर अनुभव कहाँ से आएगा! ऐसे ही आएगा। खर्चा करो अनुभव आएगा। आखिर विकास भी तो इसी रास्ते आया है।' (पांडेयजी और उस्तादियाँ)

'यह लोकतंत्र है साहब जहाँ बिना सेटिंग के मौत भी नहीं आती। घर की रजिस्ट्री हो, पानी का कनेक्शन या घर का सी फ़ार्म कुछ भी लेना हो बिना चढ़ावे की फाइल कहाँ चलती है!' यपांडे जी और उस्तादियाँ।)

'जिसे देखो वह अवैध निर्माण में ऐसे हाथ बंटा रहा है जैसे कार सेवा हो और इस तरह के सामजिक कार्य में एक दूसरे की मदद करने से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिलती है।' (पांडेयजी और दुनिया रंग-रंगीली)

'किसी भी कानून की अवहेलना करना हर भारतीय का जन्मसिद्ध अधिकार है। जहाँ लिखा होता है कि यहाँ गंदगी न फैलाये, वहीं कूड़ा फेंकते मिलेंगे लोग। कहाँ सुनते है।' (पांडेयजी और अनुशंसा की बीमारी)

व्यंग्यकार लालित्य ललित भयंकर किस्म के प्रयोगधमी हैं 'पांडेयजी और उनकी आदतों' में उन्होंने फेसबुक चौट का इस्तेमाल बहुत बेबाकी से किया है। उनकी अधिकांश रचनाओं में कविता भी एक अटूट हिस्सा है। व्यंग्य विधा में यह स्वयं में एक अनूठा प्रयोग है दिखाई पड़ता है। पिता की खाँसी, सड़क, पहाड़ के लोग, प्रेम, पत्नी, कोरोना आदि उनकी कविताओं के विषय हैं जो पाठक के मनस पर गहरी छाप छोड़ने की कुव्वत रखते हैं।

लेखक के केन्द्रीय चरित्र पांडेय जी को भी कविता लिखने का जुनून है। पांडेय जी बैठे ठाले कविताई नहीं करते, कहीं भी शुरू हो जाते हैं घर के छज्जे पर, नहाते हुए, आफिस में या विदेश यात्रा के वक्त। लेखक ने कविताओं से आम आदमी के घलुआ चरित्र की गिरहें खोली हैं दरअसल कविता उनके इस काम को सहज कर देती है। अपनी कविताओं के माध्यम से लेखक ने व्यवस्था के घांघपन को पूरी मुस्तैदी से घेरा है।

'वह दौड़ा
उसे दौड़ना ही था
बेशक शुगर का पेशेंट था
बच्चे के लिए दौड़ा
अपने लिए दौड़ा
इतना दौड़ा
फिर सम्भल न सका
दौड़ गया हमेशा के लिए
अब उसकी पत्नी दौड़ रही है
उसके मुआवजे के लिए
उसकी पॉलिसी की रकम के लिए'
(पांडेय जी और अनुशंसा की बीमारी)

'मैं सोचने लगा
कि बाजार कितना चतुर सुजान है
यदि आप सतर्क नहीं तो क्या पता
कौन कब आप की भी कीमत लगा बैठे!
सावधान रहिये
चेहरे पर चेहरा लिए लोगों के दल
किसी शिकारी की तलाश में हैं' (चेहरे पर चेहरा)

'उसने कहा कि तुम जैसे हो
वैसे ही रहो
कुछ भी आल्टर करने की जरूरत नहीं'
(वक्त बदलते देर लगती है! कविता पांडेय जी और जाना एक सगाई में)

बुजुर्ग हमारी भारतीय संस्कृति और परिवार का एक अटूट हिस्सा है। बुजुर्गों का पार्क में बैठकर राजनीति और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का विश्लेषण करनाए घर के दरवाजे पर पैनी निगाह लगाकर रखना और खाँसकर किसी अलार्म की सी आहट देना जो की घर की बहू-बेटियों के सावधान हो जाने या बुजुर्गों की किसी दिनचर्या का वक्त हो जाने का संकेत हुआ करता है इस पर भी लेखक ने अपनी कलम चलाई है।

'पिताजी जब खाँसते हैं
तो कमरे के भीतर बैठी हुई बहू
एक्टिव मोड पर आ जाती है' (पांडेय जी और खिसकती दुनिया)

अपनी लेखकीय प्रतिबद्धताओं का विस्तार करते हुए लालित्य ललित ने वैश्विक महामारी कोरोना के समय के अपने अनुभव बेबाकी से साझा किया हैं। कोरोना काल की किस्सागोई करते हुए लेखक कोरोना की प्रकृति, वायरस से बरती जाने वाली सावधानी, आमजन की आशंकाओं व सरकार और प्रशासन की तैयारियों को बताते चलते हैं। वे प्रधानमंत्री के आह्वान और शंखनाद से देश को एक सूत्र में बांधने वाली घटना का भी जिक्र करते हैं। ऐसे विपरीत समय में भी वे जीवन के किसी पक्ष को नहीं छोड़ते। कोरोना काल में पांडेय जी चाहे जिलाधिकारी के किरदार में हो या ढाबा मालिक के उनकी मान्यता और संवेदना स्थायी रहती है। उन्हें कामगारों और मजदूरों की चिंता है और यह चिंता अखबारी या इलेक्ट्रॉनिक या जुमले वाली नहीं है। एक संवाद पढ़िए

'रामप्यारी ने कहा कि सुनिए जी!

इन दिनों काम ज्यादा नहीं है तो कुछ कारीगरों को कम कर दो।

पांडेयजी ने कहा कि वे हमारे परिवार का हिस्सा है

ऐसे विकट समय में उनको अलग नहीं किया जा सकता' (पांडेयजी और बेमौसम की बारिश)

'खिलाने से कभी कमी नहीं आती। प्यार का विस्तार होता है।' (पांडेयजी का नया धंधा)

लेखक की प्रतिभा देखिए उन्होंने कोरोना काल में भी चुटकी ले डाली और अवसाद के समय में हँसी-ठिठोली का अवसर निकाल ही लिया। जब लॉकडाउन में डाक्टर देविका गजोधर के नर्सिंग होम से धड़ाधड़ गुड न्यूज आने लगती हैं तो पांडेय जी का मन करता है कि उन सबका नामकरण कुछ इस तरह कर दें।

एक का मिस कोरोना गुप्ता
दूसरे का मिस्टर क्वारंटाइन सलूजा
तीसरे का सैनिटाइजर सिंह
चौथे का मिस्टर लॉकडाउन भाटिया
एक का आइसोलेशन यादव
वुहान सक्सेना
मिस्टर एनसीआर जडेजा

मास्क शुक्ला (पांडेय जी का इलाका और कोरोनामय किलकारियाँ) लॉकडाउन के वक़्त स्त्रियों पर काम का बोझ और भी बढ़ गया है। यह बात लेखक की चिंता का विषय है।

आखिर कितना घटना पड़ता है
घर की स्त्री को
उसकी जिम्मेदारी खत्म भी नहीं होती
और पहाड़ों का सिलसिला आ खड़ा होता है
बाबूजी की मासिक पेंशन को बैंक से लाना
कपड़ें धोना
तीन टाइम का भोजन
उनके लिए नाज और नखरों को उठाना
आखिर ये सब समझ आया
तो लॉकडाउन के चलते
ठान लिया भैया
आगे से कुछ भी न कहेंगे
चुपचाप जो मिलेगा
वही अमृत और दिव्य भोजन समझ कर ग्रहण कर लेंगें
आखिर कितना समय लगता है

हर छोटी-छोटी बातों में ('लॉकडाउन के चलते' पांडेयजी का इलाका और कोरोनामय किलकारियाँ) लेखक को इस बात की भी पूरी चिंता है की कोरोना में किन्नर समाज पर आर्थिक संकट आ गया है। उनकी यह संवेदनशीलता प्रस्तुत संग्रह को आम आदमी से सीधा कनेक्ट करती है। लालित्य ललित अपनी लेखकीय संवेदना का विस्तार अन्य जीवों तक भी करते है। 'कोरोना के बाद कोरोना का हाल' रचना में वे कुत्तों की मीटिंग प्रसंग के बहाने कुत्तों के मन की थाह लेते हैं कि लॉकडाउन के वक़्त कुत्तों की क्या राय है। कोरोना काल में एक सजग प्रहरी की तरह लेखक पांडेय

जी की दिनचर्या, ऑफिस का हाल, सब्जीवालों का हाल, महिलाओं का संवाद, बैंक की कतारें, आम आदमी, दिहाड़ी मज़दूर, नेता, डॉक्टर, पुलिस पिकेट, अधिकारी या कैंटीन वाले सब पर बाइट्स लेते चलते हैं। और तो और लेखक ने सड़कों की मनोव्यथा पर भी लिख डाला 'सड़कें खाली हैं जैसे कोई विरहणी प्रेम में व्याकुल है।'

कोरोना के वक़्त कालाबाजारी और जमाखोरी की प्रवृत्ति को लेखक ने जमकर लताड़ा है। साथ ही गैरजिम्मेदार किस्म के उन लोगों को भी खूब डांट पिलाई है जो कोरोना की गंभीर समस्या को हल्के में ले रहे हैं और दूसरों के स्वास्थ्य व जीवन के लिए संकट बन रहे हैं।

पता नहीं
किस दौर के बाशिंदे हैं हम!
जो जनता कर्फ्यू की बात समझना नहीं चाहते

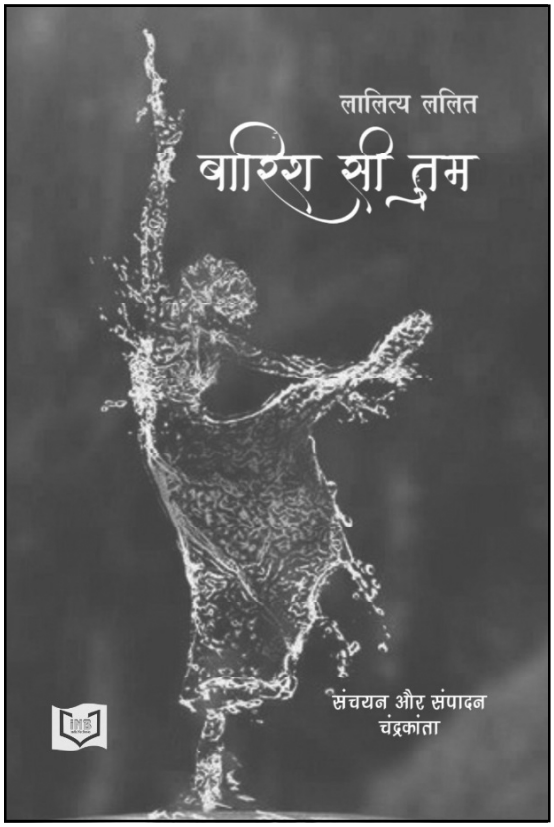

पुलिस के निर्देशों की अनदेखी करना अपना बड़प्पन समझते हैं

बाजार जाना

मटरगश्ती करना और पान बीड़ी के लिए बैचेन हो जाना

ये कहाँ की इंसानियत है बे!

न बाहर निकलो

न बाहर जाओ

आदेश की अवहेलना किस लिए बे! (थम गया वक्त अपनी बात कहने से पहले' पांडेय जी बन बैठे जिलाधिकारी) इस संग्रह में लालित्य ललित के व्यंग्य बड़े ही सामयिक है। उन्होंने ज्ञान के नाम पर फेसबुक पर किये जाने वाले वमन को हाथों हाथ लिया है। जो लोग यदा कदा आपको जबरदस्ती ज्ञान चेपने में लगे रहते हैं ऐसे लोगों को 'अवैध तबका' कहकर लेखक ने उनकी खिंचाई की है। वे सोशल मीडिया की भेड़चाल पर और खुद को परम् ज्ञानी समझने वाले व्यक्तियों के अनावश्यक सुझावों पर व्यंग्य कर उनकी टाँग खींचने में कोई कोताही नहीं बरतते।

'आयुष्मान भवः पांडेय जी' में आम आदमी की भाषा में व्यंग्य किया गया है। यह विशिष्टता इस संग्रह को लोक ग्राह्य बनाती है। लालित्य ललित की भाषा आम आदमी की भाषा है, उनके व्यंग्य हास्य बोध की चाशनी में भीगे हुए हैं जो आपको सहज ही गुदगुदाते हैं। लेखक ने प्रसंगानुकूल लोक प्रचलित मुहावरों के माध्यम से सामाजिक या वैयक्तिक विसंगतियों पर तीखा कटाक्ष किया है।

मुहावरों का सक्षम प्रयोग लेखक की लोक चेतना का नमूना है। जहाँ मुहावरे चुहलबाजी के साथ साथ सामाजिक असमताओं पर प्रहार भी करते हैं। उनके मुहावरे आम आदमी की खीज को एक स्थापित मंच देते हैं। लेखक ने पुस्तक में बेबाक होकर मुहावरों का प्रयोग किया है जैसे चोर चोर मौसेरे भाई, न तीन में न तेरह में, एक थाली के चट्टे-बट्टे, खुले सांड की तरह घूमना, न काहू से दोस्ती

और न काहू से बैर, एक अनार सौ बीमार या गाल बजाना।

लेखक ने कुछ सामयिक हँसगुल्लों का भी इस्तेमाल किया है जो मुहावरों सा ख़ालिस स्वाद देते हैं जैसे 'जुबान पर लॉकडाउन', 'प्रकाशन वाली जमात', 'बाहर जाओगे तो सुजा दिए जाओगे', सांस्कृतिक प्रदूषण (पाद मारना), 'कंबोड संस्कृति' (आरामदायक जीवों के लिए प्रयुक्त), प्रवासी टिंडे या 'कटोरी आदत' जिसका अभिनव प्रयोग उन्होंने गोलगप्पे प्रेमियों के लिए किया है।

वे दुहाजू या तिहाजू जैसे अनन्य शब्दों का प्रयोग भी करते हैं और चुटकी लेते हुए उनके अर्थ पाठक के विवेक पर छोड़ देते हैं। इस संग्रह में कहीं-कहीं
शाब्दिक मितव्ययता के सुन्दर उदाहरण भी हैं–

'रामप्यारी मायके चीकू बाहर। पिताजी नहाने के मूड में। अपने पांडेय जी सोने के मूड में।' इस पुस्तक में आपको कुछ शानदार पंच लाइन भी पढने को मिलेंगी जिन्हें पढ़कर आप लेखक के ह्यूमर की तारीफश किये बगैर नहीं रह सकेंगे।

'बात राजधानी दिल्ली की करते हैं, यहाँ इतने लेखक हो गए हैं जितने प्रकाशक भी नहीं। गली में हर पाँचवाँ बंदा कवि है।' (पांडेयजी बने प्रोग्राम हाल मैनेजर) 'अब (शादी में) आये हैं तो सगन वसूल कर ही जायेंगे।' (पांडेयजी और जाना एक सगाई में) हास्य का कार्य पाठक का मनोरंजन करना होता है।

हास्य रचना की समाप्ति पर पाठक खिलखिला उठता है, वहीं व्यंग्य की समाप्ति पर पाठक अव्यवस्था के विरुद्ध खीझ और आक्रोश से भर उठता है। कहना न होगा लालित्य ललित ने ये दोनों ही मोर्चे बखूबी संभाले हैं। प्रिय पाठकों, यदि आपको आम आदमी की भाषा का स्वाद लेना है, उसके सयानेपन को सूंघना है, उसके दुखों को महसूस करना है और जीवन की तमाम दुश्वारियाँ के बावजूद मुस्कुराना है तो 'आयुष्मान भवः पांडेय जी' को पढ़ने का शुभ संकल्प ले ही डालिए।

पांडेय जी जीवन की तमाम विद्रूपताओं के बावजूद आपको गुदगुदाने की वजह देते है।

लालित्य ललित का यह व्यंग्य संग्रह आम आदमी की विवशता और फटी हुई बिवाइयों पर ठंडाई का लेप करने वाले अचूक मंत्र की तरह है।

आम आदमी यदि 'मैंगो पीपल' है तो पांडेय जी 'दशहरी आम आदमी' है। 'आयुष्मान भवः पांडेय जी' हमारे समय की विसंगतियों और लोप होती मनुष्यता के बीचो-बीच आनंद की एक किवाड़ है जो आम आदमी की घर की तरफ खुलती है।

यहाँ आकर आप दौड़ते भागते जीवन, करियर की थकावट, गृहस्थी के क्लेश, आभासी दुनिया की भेड़चाल और राजनीति के फर्जी लोकलुभावन से परे कुछ क्षणों के लिए आराम से सुस्ता सकते हैं। एक पाठक के तौर पर हमें पूरी उम्मीद है कि दुनिया में पांडेयजी और पांडेय जी में दुनियावी किस्से कभी खत्म न होंगे और लेखक अपनी लालित्यपूर्ण व्यंग्य रचनाओं से हम सबको हँसाते गुदगुदाते रहेंगे।

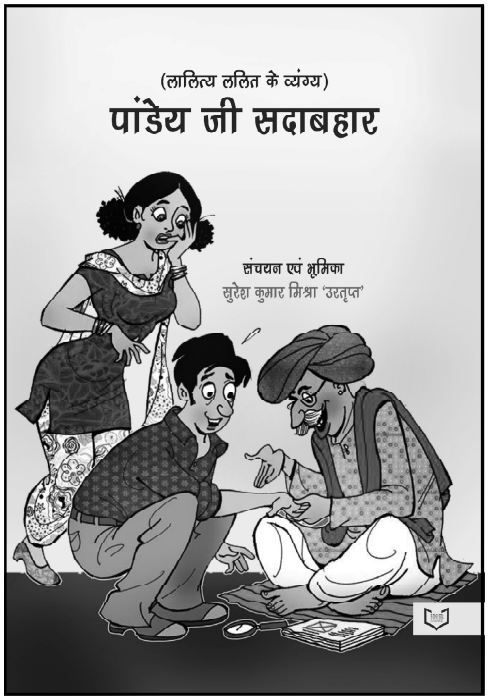

हास्य-व्यंग्य की दुनिया का गतिमान खिलाड़ी

प्रेम जनमेजय

लालित्य ललित हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य का एक परिचित युवा चेहरा हैं। अब लालित्य ललित पच्चासवें में प्रवेश कर रहा है। अब वह, 'वह' से वे हो गया है। मेरे इस आलेख में उसके दोनों रूप मिलेंगें। उसकी एक सहित्यिक पहचान बन चुकी है।

ललित के साहित्यिक व्यक्तित्व और उसकी सकारात्मक सोच से हिंदी का सहित्य जगत परिचित है। जो किसी गांधारी की तरह धृतराष्ट्री मुद्रा में परिचित नहीं होने का दंभ पाले हैं वो 'सुखी' हैं। हिंदी साहित्य में उनके प्रशसंक और निंदक दोनो अपनी-अपनी सक्रिय भूमिका के साथ उपस्थित हैं और ललित को भी निरंतर सक्रिय करने के तत्व उपस्थित करते रहते हैं। आपकी साहित्यिक पहचान तभी प्रमाणित होती है जब आपके निंदक आपके आंगन में अपनी कुटिया छवाने को निरंतर गतिशील हों और आप उनको मुस्करा कर देखने का साहस रखते हों।

लालित्य ललित की उपस्थिति को साहित्य अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों में सक्रिय देखा जा सकता है। ऐसे परिपक्व युवा रचनाकर का हिंदी व्यंग्य में प्रवेश निश्चित ही स्वागत योग्य हैं। मेरे इन शब्दों हिंदी व्यंग्य में प्रवेश निश्चित ही स्वागत योग्य है, से भ्रमित न हुआ जाए कि लालित्य ललित व्यंग्य की वर्णमाला सीखने के लिए प्रविष्ट हुए हैं। ललित ने चाहे कभी कहा हो कि व्यंग्य लिखना मेरे लिए बिल्कुल नया था, परंतु व्यंग्य के मुहावरे से लालित्य ललित कभी अपिरिचति नहीं था।

उसकी कविताओं में आज की विसंगति को रेखांकित कर उन पर प्रखर प्रहार करने की ताकत आज भी देखी जा सकती है। मैंने एक संकलन की भूमिका में उसकी कविताओं में विद्यमान व्यंग्यात्मक प्रतिभा को रेखांकित करते हुए लिखा था उसकी एक और खूबी जो मुझे आकर्षित करती है, वह है विसंगतियों की पकड़ और उनपर बेबाक प्रहार। इस प्रक्रिया में किसी को नहीं बख्शते हैं। अनेक बार तो वे स्वयं को भी लक्षित कर लेते हैं। विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए, हमारे अन्य अधिकांश युवा रचनाकारों की तरह राजनीतिक विसंगतियाँ उनकी सीमा नहीं हैं। वे बाजारवाद, अनैतिक होते समाज, हिंदी भाषा के व्यापारियों, आदर्शहीन डॉक्टरों आदि पर सीधा आक्रमण करते हैं। इसके लिए जिस सचेत दृष्टि, व्यंग्य के मुहावरे एवं चेतना की आवश्यक्ता है, वह ललित में दृष्टिगत होती है।"

लालित्य ललित ने हिंदी व्यंग्य में इसलिए प्रवेश नहीं किया कि इन दिनों व्यंग्य की दुकान खूब चल रही है। जैसे छंद की मुक्ति ने अनेक महान साहित्यकारों के लिए साहित्य प्रवेश का एक शॉर्टकट उपस्थित कर दिया था और एक भगदड कविता की दुनिया में मच गई थी वैसी ही भगदड इन दिनों व्यंग्य में मची हुई है। व्यंग्य नामक माल खूब बिक रहा है इसलिए उपभोक्ता संस्कृति के माहौल में दुकाने धड़ाधड़ खुल रही हैं।

माल जब खूब बिकता है तो नक्काल अपने समस्त हथियारों से लैस होकर ग्राहक को चूना लगाने के नए-नए तरीके खोजते रहते हैं। व्यंग्य बिक रहा है, व्यंग्य छप रहा है और व्यंग्य जल्दी साहित्यिक पहचान दिला रहा है इसलिए एक सच्चे साहित्यकार के लिए जरूरी हो जाता है कि वह व्यंग्य का, कैसा भी उत्पादन करे। परंतु ललित के लिए ऐसी कोई विवशता नहीं है, उनकी विवशता तो विसंगतियों को देखकर जन्म लेती है।

देखकर अच्छा लगता है कि हिंदी व्यंग्य का यह युवा स्वर परांपरागत एवं चालू विषयों के 'बंधन' में नहीं पड़ा है और इसी कारण उनकी रचनाओं में रचनात्मक ताजगी है। यही कारण है कि उनकी व्यंग्य रचना, रचनात्मक चिंतन से

युक्त अपनी पूर्णता के साथ अभिव्यक्त होती हैं।

लालित्य ललित अपने आस-पास से विषय उठाते हैं। वे सामयिक विषय उठाते हैं पर सामायिकता की सीमा में बँधते नहीं हैं। वे एक सजग रचनाकार हैं और अपने आस-पास पर उनकी गिद्ध दृष्टि रहती है। उनकी यह गिद्ध दृष्टि विसंगतियों को पकड़ने में सिद्धहस्त है। वे नाम चर्चा नहीं प्रवृत्ति चर्चा करते हैं।

उनकी एक और खूबी जो मुझे आकर्षित करती है, वह है विसंगतियों की पकड़ और उन पर बेबाक प्रहार। उनमें व्यंग्य की आवश्यक बेबाकी है। इस प्रक्रिया में किसी को नहीं बख्शते हैं। अनेक बार तो वे स्वयं को भी लक्षित कर लेते हैं। विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए, हमारे अन्य अधिकांश युवा रचनाकारों की तरह राजनीतिक विसंगतियां उनकी सीमा नहीं हैं।

जिस तरह से बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने अपने पैर पसारे हैं, जिस तरह से हमारी सुंदरियाँ के सिर विश्व सौंदर्य प्रतियोगिताओं के मुकुट से सुशोभित होने लगे, जिस तरह से हमारे सस्ते श्रम का लाभ उठाकर हमें 'मूल्यवान' बनाया जा रहा है, जिस तरह पैसा कमाने की मशीन बने युवाओं का पारिवारिक और सामाजिक जीवन छीना जा रहा है और जिस तरह पीछे के दरवाजे से व्यक्तिवाद हमारे समाज में प्रविष्ट कर चुका है उसके प्रति सावधान होने की आवश्यकता है।

आज हमारे जीवन से सादगी गायब हो रही है और उसका स्थान चकाचौंधी जीवन ले रहा है। हमारी सोच बहुत कुछ शहरी हो गई है। वे बाजारवाद, अनैतिक होते समाज, हिंदी भाषा के व्यापारियों, आदर्शहीन डॉक्टरों आदि पर सीधा आक्रमण करते हैं।

इसके लिए जिस सचेत दृष्टि, व्यंग्य के मुहावरे एवं चेतना की आवश्यक्ता है, वह ललित में दृष्टिगत होती है। लालित्य ललित ने लिखा है ''इस बाजारवाद में सब बिक रहा है। आप 'उत्पाद' बनो और पड़ोसी कब आपको बेच दे, कोई गारंटी नहीं। गारंटी तो ना आपकी है और ना मेरी है। पति-पत्नी में नाराजगी तो प्रेमिका सहारा देती है। प्रेमिका नाराज तो कुलीग सांत्वना देती है तो यह चल रहा है आज के दौर में।''

''पापा ने कार ली है, मुंडे को दी है और मुंडा ना पढ़दा है ना लिखदा है बाप दे पैसे पर ऐश करदा है। बिल्डर्स फ्लैट बना चुके नजारे अब हर बस्ती में है। नये-नये लखपति हर गली में नैनो बने पड़े है और इससे एक फायदा स्थानीय रेस्टोरेंटों के मालिकों को भी हुआ। 'किट्टी' बाजार फल-फूल रहा है। तंबोला का प्रचलन पहले से बढ़ा है। और हमारा भारतीय पुरुष सोचने लगा है कि दो सिम वाला फोन लूँ या नहीं।''

ललित की युवा दृष्टि जहाँ मॉल, लड़कियो और बाजार के उत्पादों पर रहती है और आधुनिक होते जीवन की विसंगतियों को रेखांकित करती है वहीं वह कुछ सार्थक एवं मानवीय संबंधों से युक्त मूल्यों के प्रतीकों को भी तलाशती है। लालित्य के प्रिय पात्र पांडेयजी पिज्जा, बर्गर आदि के स्थान पर समोसे और जलेबियों का नैसर्गिक रस लेते अधिक दृष्टिगत होते हैं। ललित की रचनाओं में पांडेयजी के सक्रिय होते ही एक अलग तरह की गंध रचना में आ जाती है। प

ांडेयजी की सोच के माध्यम से वे ओढ़ी हुई आधुनिकता पर सार्थक प्रहार करते हैं। वह अपनी ही पीढ़ी से प्रश्न करते हैं वैसे भी मौसम मूंगफली और सकरकंदी का हैय मानते हो या नहीं। सारा-सारा दिन मोबाईल में घुसे रहते हो, क्या मोबाइल को ही भगवान समझ लिया। आज देश के हर घर में बेशक भोजन हो या ना हो, सर पर छत हो या ना हो पर मोबाइल जरूर होगा।

बेशक उसको चलाने के लिए छज्जू से या बिरजू से उधार ही क्यों ना लेना पड़े।'' अति आधुनिकता एवं गेजेटस की गुलामी के प्रति वह सावधान हैं। हमारी बदलती जीवन शैली पर प्रहार करते हुए वे प्रतीकात्मक रूप से अप्रत्यक्ष प्रहार करते हुए लिखते हैं

इस विचित्र संसार में रहने का बड़ा सुख है जब तक

आप रेल की पटरी किनारे सोते हैं धूम-धड़ाम होती रहे तो भी आपको भरपूर नींद आती है यदि आपका पलायन वहां से कर दिया जाए तो आपकी बेचैनी बढ़ जाती है और आप नींद की कमी के शिकार खुद को महसूस करने लगते हो। चाहे गोली या नशा करोय वो जब आएगी तब आएगी।''

लालित्य ललित में लेखन की जठराग्नि विद्यमान है जो उन्हें बिना लिखे चैन से नहीं बैठने देती। वे नियमित लेखन में तो विश्वास करते ही हैं। लालित्य ललित स्वछंद व्यक्तित्व के स्वामी हैं। इस कारण वे कुछ हठी भी हैं। उन्हें जो करना है, जो लिखना है, सो करना लिखना है।

उनकी यही स्वछंदता उनके लेखन में भी है और यही स्वछंदता उन्हें स्पष्टवादी भी बनाती है। ललित किसी पतंग की तरह नहीं हैं जिसकी डोर किसी और के हाथ होती है और उसकी अंगुलियों में बंधी वो ठुमके लगाती है।

या फिर अनुकूल हवा की प्रतीक्षा करती है कि अनुकूल हवा बहे और वह उड़े। या कोई उसके लिए अनुकूल हवा बनाए। जो ये भ्रम पाले हों कि ललित की डोर उनके हाथ में है, वे पाले रहें। ललित भी उन्हें इसी भ्रम में रहने देता है।

ललित तो स्वच्छंद वायु की तरह है जो कहीं भी विचरण कर सकती है। वायु आज आपको शीतलता दे रही है तो कल दूसरे को दे सकती है और आपको गर्म हवा। ललित वो हवा है जो अपने अस्तित्व का मूर्त अहसास भी दिलाती है और अपनी आवश्यक्ता भी सिद्ध करती है। ललित की कलम विभिन्न विषयों में इसी वायु की तरह बहती है।

मुझे अच्छा लगता है देखकर कि वह अपने लेखन को निरंतर बेहतर करने में लगे रहते हैं। लालित्य ललित की एक व्यंग्य रचना है' दिवाली का सन्नाटा'। ललित ने जब यह रचना मुझे भेजी तो मुझे लगा कि रचना की जमीन मुझे बहुत अच्छी है पर इसमे सुधार की आवश्यकता है।

इस रचना को यदि चिंतन एवं सामाजिक सरोकारीय दृष्टि के साथ लिखा जाए तो यह और बेहतर हो सकती है। रचनकार का लक्ष्य जहाँ एक ओर अपने लिखें से मानव समाज को निरंतर बेहतर करने का रचनात्मक प्रयत्न करना है वहीं अपने लिखे को भी निरंतर बेहतर करने का प्रयास भी तो है। मैंने लालित्य ललित को कुछ सुझाव दिए और उसने उस रचना को अपनी दृष्टि से सुधारकर पुनः लिखा और मुझे भेज दिया।

मैंने सुधारी गयी रचना को अपनी संपादकीय समझ के साथ कुछ तराशा और लालित्य ललित को एक नजर मारने को भेज दिया। उसकी प्रतिक्रिया सकारात्मक थी।

इसे मैं ललित की अब तक की रचनाओं में श्रेष्ठ मानता हूँ। ऐसी कुछ और व्यंग्य रचनाओं के चलते खिलंदड़े स्वभाव से युक्त ललित का व्यंग्यकार अपने आस-पास की विसंगतियों गंभीरता से समझने और उन पर प्रखर प्रहार करने वाला व्यंग्य लेखक बनने की प्रक्रिया में दृष्टिगत होता है। 'दिवाली का सन्नाटा' का आंरभिक वाक्य ही पढ़ें तो रचनाकार से समाजिक सरोकार, उसकी भाषिक व्यंजना और कल्पनाशीलता समझ में आ जाती है।

ललित ने लिखा है दिवाली आने को थी पर लक्ष्मी जी की कृपा किसी किसान के जीवन में सूखे-सी पसरी पड़ी थी।'' आंरभिक वाक्य ही स्पष्ट कर देता है कि लेखक किस समाजिक विसंगति से दुखी है और उसकी करुणाजनित व्यंग्य दृष्टि आपको कहां ले जाना चाहती है।

ललित की रचनाओं का कथ्य अधिकांशतः निम्न मध्यवर्गीय परिवेश में अपनी वस्तु तलाशता है। यही कारण है कि उसने विलायती राम पांडेय जैसे निम्न मध्यवर्गीय चरित्र का निर्माण किया है। उसके जीवन के विभिन्न पक्ष अलग-अलग रचनाओं में उसके व्यक्तित्व का समूह बनाते हैं।

'दिवाली का सन्नाटा' में एक करुणा है। मध्यवर्ग के जीवन और उसके सपनों से साक्षात्कार है। ललित ने न केवल मध्यवर्गीय परिवार की विसंगतियों एवं उनकी करुणाजनित परिस्थितियों को लक्षित किया है अपितु एक व्यापक आधार देते हुए आज के समय में उपभोक्तावादी संस्कृति के तहत 'सबंधों' को व्यापारी बनाने को विवश

मनुष्य को भी रेखांकित किया है। हमारा समय अनेक प्रकार के लुभावने स्वप्नों द्वारा अप्रत्यक्ष शोषण का खेल खेल रहा है। हमारा समय वंचित को विवश कर रहा है कि या तो वह अपनी आत्मा को मारे अथवा अपनी आत्महत्या करे। इसी का शिकार पांडेय जी भी हैं।

पे कमीशन की घोषणा से उन्हें लगता है कि पैर से चादर बढ़ी हो गई है। परिवार की इच्छाओं के दिवास्वप्न अपना जाल बुनने लगते हैं। एक हजार आने की उम्मीद में दो हजार के स्वप्न बुने जाते हैं। पर स्वप्न तो टूटकर बिखरने एवं तत्जनित कष्ट के लिए होते हैं।

भारतीय निम्न मध्वर्गीय पांडेयजी अपने टूटते स्वप्न का कष्ट तो सह सकते हैं, पर परिवार के। इसलिए ही 'घर की दीवालीय खुशी के चलते अपनी एक किडनी का समझौता विलायती राम पांडेय ने कर लिया था। एक सेठ की बीमार लड़की की किडनी के बदले कुछ लाख रुपए में उसने अपने घर के लिए खुशियों को अपने घर में लाना कबूल किया था।''

इस व्यंग्य रचना का अंत झिंझोड़ देता है। इस रचना की ताकत को पढ़कर ही समझा जा सकता है। इसी रचना में ललित ने इधर अँगूठी के इंतजार में रामप्यारी की उँगुली चिकनगुनिया के मरीज सी दर्द करने लगी थी।'

या फिर, 'सर्दी आते ही कुछ बजे न बजे पर अपने इकलौते पांडेय जी की नाक ऐसे बजने लगती है जैसे आपने किसी लोकल एफ एम का टेंटुआ हल्के से दबा दिया हो और उसकी आवाज जोर से निकल पड़ी।''

जैसी नवीन उपमा का प्रयोग किया है। ललित अपनी शैली का निर्माणकर रहे हैं। भीड़ में स्वयं को अलग करने के लिए आपका कथ्य और शैली बहुत महत्वपूर्ण होती है। कथ्य आपके सामाजिक सरोकारों और आपकी दृष्टि को स्पष्ट करता है और शैली आपके लेखकीय व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

इस तरह की रचना के लेखन के लिए ललित को अपने लेखकीय स्वभाव का बहुत कुछ त्यागना होगा। ठहरकर अपना विश्लेषण करना बहुत आवश्यक है।

अच्छा लगता है देखकर लालित्य ललित हास्य व्यंग्य लेखन का किशोर अब युवा हो रहा है। लालित्य ललिय की हास्य व्यंग्य रचनाएँ 'भारत भास्कर' के सभी छह संस्करणों में प्रतिदिन प्रकाशित होती रही हैं और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को भी समृद्ध कर रही हैं।

ललित को प्रतिदिन पढ़कर मुझे ये लगता है जैसे ललित जो लिख रहे हैं वो एक धारावाहिक की तरह है। एक उत्सुकता निर्मित होती है कि ललित ने जो आज बात कही, कल क्या कहेगा, ये जो चरित्र आज ये गुल खिला रहा है, कल कौन-सा खिलाएगा। और अपनी इस ताकत के कारण वे बहुत जल्दी व्यंग्य उपन्यास लिख सकते है।

जो लिख दिया सो लिख दिया

रणविजय राव के सवालों पर लालित्य ललित के जवाब

(एक ही पीढ़ी के जब सहयात्री जब आमने-सामने होते हैं तो बहुत कुछ बाँटते हैं पर साथ ही अनेक सवालों से मुठभेड़ भी करते रहे हैं। आप उससे समुचित साक्षात्कार कर पाते हैं जिसके न केवल साहित्य अपितु जीवन को भी करीब से देखते हैं। रणविजय राव सामाजिक सरोकारों से जुड़े युवा रचनाकार हैं। साहित्य रचना को वे गंभीर कर्म मानते हैं। यही कारण है कि लालित्य ललित से संवाद करने के लिए उनसे आग्रह किया गया।)

संपादक

रणविजय राव : आप अब आप विलायतीराम पांडेय हैं या लालित्य ललित? लालित्य ललित मतलब क्या?

लालित्य ललित : देखिय, मेरा लेखकीय नाम लालित्य ललित है, पूरा नाम ललित किशोर मंडोरा है। नाम को जानने के लिए फ़्लैश बैक में जाना पड़ेगा, जब डॉ. कमल

किशोर गोयनका एम.ए के दिनों में क्लास लेते थे। वे कहते थे कि मेरा नाम कमलकिशोर गोयनका है और तुम्हारा बढ़िया और सुंदर नाम है, फिर ये लालित्य ललित क्यों?

हमने भी किसी पिनक में कह दिया कि सर लेखन की दुनिया में अलग-सा दिखने के लिए उपनाम का सहारा लिया। अब तो लोग देखते ही कहने लगते है कि लालित्य ललित उर्फ विलायती राम पांडेय। कई असली पांडेय भी मेरे मित्र हैं, जिसमें राकेश पांडेय और जयप्रकाश पांडेय। वे भी अपनी खुशी जाहिर करते हैं कि क्या भईया पांडेय को छोड़ोगे नहीं वैसे मज़ाक में कहते हैं।

'अब लालित्य ललित मतलब क्या'

सीधा सा जवाब दूँ तो लालित्य ललित उस इकाई का नाम है, उस प्रतीक का नाम है जो सजग है और सामाजिक विसंगतियों को देख तत्काल बैचेन हो जाता है। उसकी जठराग्नि लेखन के माध्यम से प्रस्फुटित हो जाती है। पांडेय जी किरदार के माध्यम से वे हमेशा एक्टिव मॉड पर रहते हैं। एक बार तो प्रोफेसर बलदेव भाई शर्मा ने कहीं कह दिया था कि पांडेय जी से बच कर रहना चाहिये कि क्या पता उनके समक्ष कुछ मुँह से निकल जाए और वह अखबार की सुर्खियाँ बन जाए!

रणविजय राव : कहाँ आप कविताओं में रमे थे। व्यंग्य में कैसे कूद गए? और कूदे भी ऐसे जैसे सबको हराने पर तुले हैं?

लालित्य ललित : बहुत सही कहा। कविताएँ शुरू से लिखता रहा। पहले सुरेंद्र शर्मा की क्षणिकाएँ स्कूल में मित्रों को सुनाता था। फिर किसी ने कहा कि आपको अपना लिखना चाहिए, बस उसी दिन से लिखने लगा।

पहला कविता संग्रह आने से पहले 61 कवियों की रचनाओं का संचयन निकाल दिया "कविता सम्भव" के नाम से। जब सुधीश पचौरी की एक पुस्तक आई थी कविता का अंत, ऐसे समय में कविता सम्भव लाना बड़ी बात थी, कम से कम मेरे लिए।

व्यंग्य में आना भी हैरतअंगेज रहा। मेरे पड़ोस में डॉ. प्रेम जनमेजय और डॉ. हरीश नवल रहते हैं। उनसे मिलता था।

दोनों की रचनाएँ पढ़ सुनकर अच्छा लगता। दोनों मिलने पर अपनी रचनाएँ सुनाते। मैं उन पर राय भी देता। बस यह सोचिये कि वहीं से व्यंग्य नामक वायरस ने मुझे जकड़ लिया। और ऐसे जकड़ा कि बाकी आप जानते ही हैं।मेरे व्यंग्य को पाठकों तक लाने में डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल का नाम सर्वोपरि है और रहेगा। उसके बाद उन्होंने मेरे दो और व्यंग्य संग्रह प्रकाशित किये, जिसमें 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग, 2015 में और 'विलायती राम पांडेय', 2016 में। उसके बाद से अब तक मेरे 18 व्यंग्य संग्रह आ गए हैं। देश के बेहतरीन प्रकाशकों से और कई संग्रह अभी पाइप लाइन में हैं।

रणविजय राव : व्यंग्य को किस तरह का वायरस मानते हैं आप, महामारी जैसा जानलेवा या फिर प्यार जैसा खूबसूरत वायरस जो प्यार में जान देता है? क्या आप भी यह वायरस फैला रहे हैं?

लालित्य ललित : क्या खूबसूरत सवाल किया, बिलकुल अपने मिजाज जैसा। आज व्यंग्य जीवन की जरूरत बन गया है। आदमी घर से विसंगतियों से भिड़ता है और दैनिक क्रिया-कलाप में भी। मेरे जैसा जमीनी आदमी इसके बिना रह नहीं सकता। भीतर के द्वंद को उकेरने में व्यंग्य मुझे उद्वेलित करता है, यही वजह है कि इस संक्रमण का शिकार मैं भी हूँ और मैं चाहता हूँ कि व्यंग्य के आनंद से संक्रमित जितने भी हो सकें, वह कम है। मुझे विसंगतियाँ निमंत्रित करती हैं और मैं पांडेय जी को पीछे लगा देता हूँ।

रणविजय राव : ऐसा लगता है कि आपको लेखन की भूख है। आखिर इतनी ऊर्जा लाते कहाँ से हैं?

लालित्य ललित : वाह! सही कहा। वास्तव में ये रचनात्मक भूख ही है, जो मुझे चुप रहने नहीं देती। कई बार तो मैं बैठे-बैठे लिख देता हूँ। उंगलियां चलती रहती हैं। दिमाग एक्टिव रहता है। ऊर्जा देने वाला कोई अज्ञात शक्तिमान है जो सदैव मेरे भीतर मुझ को संचालित करता रहता है। लिखना मुझे अच्छा लगता है।

रणविजय राव : क्या आप अपने लिखे को सुधारते हैं, पुनः लिखते हैं या फिर जो लिख दिया सो लिख दिया?

लालित्य ललित : इतना समय नहीं है मेरे पास। मैं बहुत कम मामलों में उसे सुधारता हूँ, एक में ही फाइनल करने की आदत है। मेरे दफ्तर में कुछ सहयोगी पहले पत्र का ड्राफ्ट बनायेंगे और देखेंगे इतने में डाक-विभाग का समय निकल जाता है, मैं फौरन देख पत्र निर्देशित पते पर प्रेषित कर देता हूँ। यह मेरा मिजाज है, जो बना रहेगा, पर आपका सवाल बड़ा वाजिब है। कविताओं के मामले में एक बार लिखने के बाद दुबारा पढ़ लेता हूँ।

रणविजय राव : आपको व्यंग्यकार बनाने में प्रेम जनमेजय जी का बड़ा योगदान है, ऐसा लोग मानते हैं। हरीश नवल जी की भी नजर आपके व्यंग्य पर रहती है। आपका क्या कहना है?

लालित्य ललित : निश्चित ही दोनों आदरणीय हैं, उनका स्नेह और आशीर्वाद है मेरे साथ। कभी-कभार वैचारिक मतभेद भी होते हैं। पर स्वस्थ परम्परा का निर्वाह करते हुए हम एक हैं। जब कोई यह कहता है कि पश्चिम विहार में व्यंग्य त्रयी है, खुशी होती है। मैं तो अकिंचन हूँ और व्यंग्य का विद्यार्थी हूँ, और वे दोनों एक विभागाध्यक्ष की भूमिका में रहे हैं और रहना भी चाहिए। वैसे प्रेम जी के निर्देश रचनाओं पर मिलते रहते हैं जिसका मैं पालन भी करता हूँ।

हर व्यंग्यकार नई पीढ़ी को प्रेरित करता है और करता आया है। यह सही है। गगनांचल से लेकर प्रेम जनमेजय जी और अब हरीश नवल जी रचनात्मक सहयोग लेते रहे हैं, आपको बता दूँ कि गगनांचल में मुझे लिखने का ब्रेक कथाकार और समहुत पत्रिका के सम्पादक डॉ. अमरेंद्र मिश्र ने दिया। उन्होंने मुझसे सोलह वर्ष कॉलम लिखवाया। नंदन जी, राजकुमार गौतम के लिए भी मैं गगनांचल में सहयोग देने से कभी हिचका नहीं।

हरीश जी से मैंने बहुत कुछ सीखा है और मैं यहाँ कहना चाहूँगा कि जहाँ से कुछ अच्छी सीख मिले, उसे फौरन लेने में हिचकना नहीं चाहिए।

रणविजय राव : आप भी अच्छी सीख देने में कभी नहीं हिचकते होंगे? और कोई अच्छी सीख नहीं लेता तो अगली बार क्या करते हैं, सीख देते रहते हैं कि उसका दरवाजा बंद

कर देते हैं?

लालित्य ललित : सीख का क्या है भाई साहब। जहाँ से कोई अच्छी सीख मिलती है, उसे फौरन ले लेता हूँ। सम्वेदनशील भी हूँ और जिद्दी भी। कई मामलों में प्रेम जनमेजय जी से डबल। यही वजह है एक लम्बा कारवाँ मैंने खड़ा कर दिया है जो जानते हैं कि यह कारवाँ कोई एक दिन में खड़ा नहीं हुआ। जिससे मिलते हैं, बिना स्वार्थ के मिलते हैं। किसी से भी पूछ लीजिये। देश के साथ विदेशों में भी मित्र समुदाय फैले हैं।

रणविजय राव : निस्संदेह 'व्यंग्य यात्रा' व्यंग्य जगत का ही नहीं बल्कि पूरे हिंदी साहित्य का भी एक बड़ा मंच है। आप उसके राष्ट्रीय समन्वयक हैं। आपके लेखकीय जीवन में व्यंग्य यात्रा का क्या योगदान है?

लालित्य ललित : ये आपने बड़ा सवाल कर दिया बड़ी बेबाकी से। निश्चित ही व्यंग्य यात्रा के लिए हम सब टीम वर्क की तरह काम करते हैं और करते आये हैं। इसका समन्वय कार्यशालाओं के सन्दर्भ में मैं करता आया हूँ, प्रेम जनमेजय जी थोड़े हिचकते हैं इन सब कामों से। वे पत्रिका और सत्र निर्धारण में सक्रिय रहते हैं।

हमारी भी कोशिश रहती है कि पत्रिका सही हाथों में जाएँ कार्यशालाओं से बौद्धिक सजगता कायम होती है। इसी कारण हमें अनेक रचनात्मक प्रतिभाओं से परिचय भी होता है। मेरी कई व्यंग्य रचनाओं का प्रकाशन प्रेम जनमेजय जी ने किया है।

व्यंग्य यात्रा ने मेरी रचनात्मक क्षमता को क्षितिज दिया। पत्रिका के माध्यम से गौतम सान्याल जैसे व्यंग्य समालोचकों से मिलने का अवसर हुआ।

दूसरी बात मैं कहना चाहूँगा कि प्रेम जनमेजय जी नरम दल से सम्बद्ध हैं और मैं गरमदल से। यदि प्रेम जनमेजय जी को कोई कुछ कह देता है तो उसकी जानकारी हमें फौरन मिल जाती है। मुझे यह भी लगता है कि व्यंग्य साहित्य में भी दुष्ट संक्रमण की कमी नहीं है। मैं अक्सर उन्हें कहता भी हूँ कि आपको अपनी पॉलिसी बदलनी चाहिए।

एक बार ज्ञान चतुर्वेदी जी ने किसी आलेख में या कहीं यह कह दिया कि प्रेम जनमेजय और हरीश नवल को मैंने कूड़े की मानिंद ढोया है।

सोचिये जरा!

मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि ऐसा कहना ही मानसिक दुर्बलता की निशानी है। भाई आप स्वस्थ नहीं हैं अपनी विचारधारा में। जबकि हरीश नवल जी ने इस बात को लेकर अपनी चिंताएँ भी जाहिर की, लेकिन प्रेम जनमेजय जी खामोश रहे। अब क्यों खामोश रहे। इसके बारे में आपको उनसे भी पूछना ही चाहिए।

रणविजय राव : क्या आपको लगता है कि व्यंग्य यात्रा ने आपके लेखन को भी समृद्ध किया है?

लालित्य ललित : इसके बारे में आपको बता ही चुका हूँ, कई बार तो प्रेम जी कह भी देते हैं कि ये पत्रिका लालित्य ललित की है, मैं भी कह देता हूँ कि इस बात को रिकार्ड में दर्ज होना चाहिए। आज व्यंग्य की अनेक पत्रिकाएँ हैं, पर आप देखिए उनका स्तर कहाँ है। उसकी सामग्री को लेकर सम्पादक की क्या चिंताएँ हैं।

जब मित्र सिफारिश करते हैं तो उनको मेरा निवेदन यह रहता है कि भईया पत्रिका के सम्पादक का निर्णय अंतिम होता है जो सर्वमान्य है। कई बार हमारी भी रचनाएँ उन्हें नहीं जमतीं तो तत्काल व्हाट्सएप या फशेन आ जाता है। हमें एक बार तो बुरा लगता है, पर सोचते हैं कि आखिर कमियों को दूर भी करना अनिवार्य है, बस बुरा नहीं मानते।

रणविजय राव : यदि आपको व्यंग्य यात्रा का सम्पादन मिल जाये तो कुछ बदलाव करेंगे? यदि हाँ तो कैसे, नहीं तो क्यों नहीं?

लालित्य ललित : वाह! देश का प्रधानमंत्री कौन-सी पाटी का नेता नहीं होना चाहता। वैसे इसे अन्यथा न लें, यह तो मजाक की बात हुई। वैसे प्रेम जनमेजय जी खुद चाहते हैं कि व्यंग्य यात्रा पत्रिका की बागडोर नए नेतृत्व को सौंपी जाएँ पर अभी वक्त है, जब समय आएगा तो उसकी घोषण स्वयं प्रेम जनमेजय जी करेंगे, आप आश्वस्त रहिये।

सारी जानकारी अभी ले लेना चाहते हैं। कुछ बातें बाद के लिए भी छोड़ दें।

रणविजय राव : अब आप जीवन के अर्द्धशतक पूरा करने की दहलीज पर खड़े हैं। इस अल्प आयु में भी आपने बहुत कुछ लिख लिया, बहुत कुछ हासिल भी कर लिया। एक फलदार वृक्ष की तरह झुकने की बजाए, एक तरह का अक्खड़पन नजर आता है आपके व्यक्तित्व में। क्या आपका यही स्वभाव है या आप जानबूझकर ऐसा करते हैं?

लालित्य ललित : देखिए मैं शुरू से जिद्दी रहा, स्कूल में एक बार एक अध्यापक को टॉयलट में बन्द कर दिया। वह बच्चों को मारता बहुत था। एक बार कॉलेज के एक टीचर ने हाथ मरोड़ दिया तो उसको यही कहा कि सर! आज यूथ स्पेशल पकड़ कर दिखाना। वे बेचारे शाम तक स्टाफ रूम में बैठे रहे। ये कुछ किस्से हैं जो याद रहने वाले हैं।

बहरहाल समय कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। बच्चे भी बड़े हो गए। कुछ समय बाद उन्हें उनका मनोवांछित मिलेगा और हमें हमारी महत्वकांक्षी योजनाओं का फल।

लिखना पैशन रहा है। मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, पर लिखना कभी नहीं। जिद्दी हूँ, था और रहूँगा। पर मुझे लगता है तत्काल रिएक्ट नहीं करना चाहिए, इस बात को मानता भी हूँ। पर गुस्सा आ ही जाता है, नहीं तो अपने पात्र विलायतीराम पांडेय के माध्यम से मैं बदला ले लेता हूँ, छोड़ता नहीं।

अक्खड़पन के बारे में कहूँ तो देखिये सुई एक तरफ पड़ी है, यदि किसी ने मंशागत रखी है तो आपका गुस्सा आना लाजिमी है। मैं भी उनमें से हूँ, यदि मुझे कोई छेड़े तो भुगतने को तैयार भी रहे। जानबूझकर कौन किसे तंग करता है। लेकिन जब से व्यंग्य लिखना शुरू किया है तो कई लोगों को लगता है कि ये कविता का आदमी हमारे क्षेत्र में क्यों आ गया?

अरे! स्वागत करना चाहिए कि व्यंग्य का विस्तार हो रहा है।

रणविजय राव : आप अपने लेखन को सकारात्मक मानते होंगे पर कई साहित्यकार आपके लेखन को नकारात्मक मानते हैं। उनको लगता है कि आपके लेखन में या आम प्रतिक्रिया में भी प्रतिशोध के भाव ज्यादा होते हैं। आपका क्या कहना है?

लालित्य ललित : देखिए राव साहब, मैं सकारात्मक ऊर्जा से लबरेज हूँ, रहता हूँ और रहता रहूँगा। अब वे क्या मानते हैं, क्यों मानते हैं मुझे यह नहीं पता। उनके मापने का निर्धारण क्या है? उनको किस सरकारी या गैरसरकारी समिति ने अनुबंधित किया है?

दरअसल, ये वे लोग हैं जो चूक चूके हैं। अब उनका लेखन से कोई सरोकार नहीं। केवल गप्पबाजी और चुगली चट्टे करना उनका शगल है। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ, सजग भी रहता हूँ। जब उनके ही मित्र बताते हैं तो विस्मित भी होता हूँ। बहरहाल ज्यादा कुछ नहीं कहना। मेरा यह मानना है कि हर आलोचना का जवाब लेखन से देना रचनात्मक कर्म है, जिसे मैं पूरे मन से करता हूँ। लेखन में वही प्रतिशोध दिखाई देगा जो उसने देखा और प्रहार करने के लिए निशाने को धनुष पर केंद्रित किया। और इसका पालन मैं बखूबी करता हूँ।

रणविजय राव : क्या ऐसा नहीं है कि इसी प्रतिशोध की भावना के कारण आपने अपने अनेक दुश्मन खड़े कर लिए हैं?

लालित्य ललित : वाह! मन की कही। हर सफल व्यक्ति के पीछे कई ऐसे लोग होते हैं जो उनकी सफलता से खुश नहीं होते। साहित्य में भी ऐसे किरदार बहुत हैं। कभी वक्त आने पर उन सभी के नाम लिए जाएँगे। वैसे स्वस्थ आलोचना का हमेशा स्वागत किया जाना चाहिए, पर हमारे यहाँ दुर्भाग्य ऐसा है कि स्वस्थ मानसिकता वाले आलोचकों ने भी अपनी खिड़कियाँ बन्द कर रखी हैं। उनको इस आचरण से बचना चाहिए।

मैं अपने लेखन धर्म से प्रसन्न हूँ और यदि कोई इससे भी अंसतुष्ट है तो उसके लिए मैं क्या कह सकता हूँ। इसको उनके व्यक्तिगत विकार समझ कर आगे बढ़ जाना चाहिए। आजकल मैं यही करता हूँ।

रणविजय राव : ललित भाई आपसे कौन-कौन असंतुष्ट हैं? क्या आपको यह नहीं लगता कि लेखकीय जीवन में सम्बन्धों के समीकरण बदलते रहते हैं। जिनसे कल आप

संतुष्ट थे आज असंतुष्ट हैं। सम्बन्धों में असंतुष्टि का बड़ा कारण आप क्या मानते हैं? मैं तो अपेक्षा बड़ा कारण मानता हूँ।

लालित्य ललित : मैंने देखा है कि आज स्वार्थ नाम का कीटाणु ज्यादा संक्रमित हुआ है। उसका फैलाव भी हुआ है, लेकिन उनकी उम्र स्थायी नहीं है, ज्यादा से ज्यादा कुछ पाँच सात वर्ष और। वे भी जान चुके हैं अपनी अवस्था और मान भी चुके हैं कि वे असलियत में चूक चुके हैं। वे ऐसे कारतूस बन चुके हैं जिनकी गोली से कोई मरने वाला भी नहीं। गली के कुत्ते तक उनकी दुनाली से डरते नहीं भाई साहब। बड़ी सहानुभुति होती है उनको और उनकी अवस्था को देख कर।

मुझसे वे लोग असन्तुष्ट हैं जो जीवन भर किसी दूसरे की प्रगति से कभी संतुष्ट ही नहीं हुए। मैंने अब ऐसे लोगों पर चिंतन-मनन करना छोड़ दिया है। मेरा काम बोलेगा और बेहतर तरीके से बोलेगा।

रणविजय राव : कुछ दिनों पूर्व अपने एक साक्षात्कार के दौरान कहा कि लिखना मेरे लिए बौद्धिक मल के सिवाय कुछ नहीं। इसकी बड़ी आलोचना हुई। ऐसा क्या सोच कर कहा आपने? इसके लिए तो बहुतेरे पर्यायवाची हैं। और भी किसी शब्द का चयन कर सकते थे?

लालित्य ललित : मेरे इस आशय को लेकर किसी ने फेसबुक पर एक पोस्ट लगाई और कुछ व्यंग्य के धुरंधरों ने अपनी क्षमता के मुताबिक अपने ज्ञान का परिचय भी दिया। मैं समझ गया, जिसने जो व्याख्या की, उनके शब्दकोश में वही सब कुछ था। जो जिसके पास होता है वह दूसरे को भी वही देने की कोशिश करता है।

बौद्धिक मल वाले मेरे वक्तव्य पर बहुत तीखी प्रतिक्रियाएँ हुई हैं लेकिन अफसोस इस बात का है कि बौद्धिक मल को केवल अभिधा के रूप में ही समझा गया। इस शब्द की ध्वनि को किसी ने पकड़ा नहीं। मेरा मानना है कि हमारे मन में कई तरह के द्वेष ईर्ष्याएँ और कुंठाएँ रहती हैं। यह सब बौद्धिक मल नहीं तो और क्या है?

मैं अपने लेखन के माध्यम से इन्हीं कमजोरियों से मुक्ति पाता हूँ। यानी लेखन उसी तरह से विरेचन है जिस तरह से पाठक या दर्शक रचना को पढ़कर या नाटक देख कर अपने इन्हीं मनो भावनाओं से मुक्ति पाता है।

खैर, जैसे बताया कि सबकी अपनी-अपनी व्याख्या है। उन सभी का स्वागत करना चाहिए। आखिर व्यंग्य के क्षितिज का विस्तार तो हुआ ही है।

रणविजय राव : जैसा कि आपने कहा, हमारे मन में कई तरह के द्वेष और कुंठाएँ रहती हैं और यही बौद्धिक मल है। आप अपने लेखन द्वारा इसी से मुक्ति पाते हैं। तो क्या लेखक अपनी रचना द्वारा अपने बौद्धिक मल का विरेचन करता है? क्या व्यंग्य लेखन व्यक्तिवादी होता है? नाटक देखकर जिसका विरेचन होता है वो दर्शक है। लेखक की भूमिका तो अलग है।

लालित्य ललित : व्यंग्य लेखन व्यक्तिवादी नहीं होता, वह व्यापक पटल पर अपनी जिम्मेदारी सुनिश्चित करता है और तात्कालिक उद्देश्य के लिये कभी लेखन किया ही नहीं जाना चाहिए। व्यंग्य लिखते समय किसी व्यक्ति विशेष को भी निशाना बनाने से भी बचना चाहिए, वाकई में व्यंग्य लेखन साहित्य की एक सर्वोत्कृष्ट विधा है, जिसे कौशलपूर्ण तरीके से लिखा जाना चाहिए और जिसका मैं पालन करता हूँ, करता रहूँगा आगे भी।

रणविजय राव : 'अब तक 75' के बाद 'इक्कीसवीं सदी की 101 श्रेष्ठ व्यंग्य' रचनाओं का संचयन। अब इसके बाद क्या?

लालित्य ललित : राव साहब, आप भूल रहे हैं। इससे पहले मैं चाटुकार कलवा नाम से एक संचयन निकाल चुका हूँ, जिसमें देश के 56 व्यंग्यकार शामिल किये गए।

उसके बाद एक और योजना मन में कुलबुला रही थी जिसे 'इक्कीसवीं सदी की 101 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' नाम दिया गया है। जिसे लेखकों के उत्साह देखते हुए इसे 131 में तब्दील कर दिया गया है।

इसमें देश और विदेश के चुनिंदा व्यंग्यकारों की रचनाओं को लिया जाएगा।

मुझे तो हैरानी इस बात की हुई कि महज चार-पाँच

दिनों में व्यंग्यकारों की रचनाओं से मेल हैंग कर गया। सोचिए कितना उत्साह है लोगों का व्यंग्य के प्रति! इस संचयन की गूंज अमेरिका से लेकर यूएई और न्यूजीलैंड, इटली, कनाडा तक से वाट्सप आ रहे हैं। लेकिन इस योजना के बाद इससे भी बड़ी एक मल्टिमेगा योजना आ रही है जिसको बाद में बताया जाएगा।?

रणविजय राव : क्या बीसवीं सदी के रचनाकार इक्कसवीं सदी से भिन्न हैं? इसका विभाजन किया जा सकता है क्या?

लालित्य ललित : विभाजन तो नहीं किया जा सकता, लेकिन जो व्यंग्यकार शार्प तरीके से निकलकर आ रहे हैं और अपनी जगह बनाने में कामयाब हुये हैं, निश्चित ही उनका स्वागत किया जाना चाहिए। आज मैं कह सकता हूँ कि देश में पाँच सौ से ज्यादा व्यंग्यकार नहीं हैं पर कवियों का अनुपात इससे कहीं ज्यादा है। हाँ, इसको आप जोड़ सकते हैं कि विसंगतियों को तराशने का पैमाना अब विकसित हो चुका है, वैविध्य भी। पहले जहाँ सुविधाएँ इतनी ज्यादा नहीं थीं जितनी अब है।

रणविजय राव : आप अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में कुछ बताएं। आपके कई पात्र पाठकों की जुबान पर चढ़ गए हैं। कुछ ऐसे पात्र हैं जिनसे पाठकों को भ्रम होता है कि कहीं ये मैं ही तो नहीं, चाहे वे पाठक महिला हों या पुरूष?

लालित्य ललित : देखिये राव साहब। जब पात्रों की कल्पना की थी, तब ये सोचा ही नहीं था कि ये मेरे लेखकीय परिवार के हिस्सा हो जाएँगे। सबसे ज्यादा तो कई महिलाएँ जब पूछती हैं कि क्या मैं ही आपकी देविका गजोधर हूँ!

ज़रा सोचिए क्या लगा होगा मुझे!

इसी तरह लपकुराम की रचना की तो एक जनाब घर ही आ गए कि ये क्या मतलब है!

हम तो आपके बचपने के हितैषी हैं। मैंने कहा कि आपकी पदवी नहीं छीन रहा हूँ, पर यह भी सच है कि आप वह पात्र नहीं जो आप सोच रहे हैं।

आज मेरे पास दो दर्जन भर पात्र हैं। अच्छा लगता है कि मेरे कुनबे में जहाँ मधुबाला है वहीं टिप्सी मुटरेजा है। झंडु सिंह गुलिया है तो रामकिशन पुनिया भी है। कल्लू कालिया है एवं और भी कई पात्र हैं जो रोजाना मुझसे बातें किया करते हैं। मुझे अपने पात्रों से नशा है, मोहब्बत है। यही वजह है कि पांडेय जी बन गए प्रधानमंत्री में अधिकांश पात्रों को मंत्रीमंडल में शामिल कर लिया था।

एक अच्छे सवाल के लिए बड़े वाला थैंक्यू।

रणविजय राव : आखिर आप इतने पात्रों को संभालते कैसे हैं?

लालित्य ललित : वाह! दरअसल मैं अपने पात्रों को जीता हूँ। पूरे का पूरा कुनबा है साहब। क्या एक पिता अपने बच्चों को भूल सकता है! क्या कहेंगे!

ऐसे ही मेरे पात्र मुझसे बात किया करते हैं और मैं उनको सलाह भी देता हूँ। और उनके साथ मित्रवत भी पेश आता हूँ।

रणविजय राव : इसके बाद क्या?

लालित्य ललित : जाहिर है समय का सदुपयोग करेंगे। कुछ रचनात्मक करेंगे। मानिए कुछ बड़ा ही होगा। सभी को विस्मित करने वाला प्रयास, जिसमें हम सफल भी होंगे। काम करना हमेशा से अच्छा लगता रहा है।

रणविजय राव : नए युवा व्यंग्यकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

लालित्य ललित : मैं अभी बुजुर्ग नहीं हुआ। संदेश देते हरीश नवल जी और प्रेम जनमेजय जी अच्छे लगते हैं। मैं तो इतना भर कहूँगा कि सम्मान करना सीखे नई पीढ़ी। लेखन के साथ जो वरिष्ठ पीढ़ी ने लिख दिया, अगर खरीद कर नहीं पढ़ सकते तो किसी पुस्तकालय की मदद से अवश्य पढ़िए।

आज भी शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल से लेकर मनोहरश्याम जोशी को पढ़ने की आवश्यकता है। उसके बाद जो पीढ़ी सक्रिय है, उनसे सम्वाद करिये। पुस्तक मेले में अवश्य जाइए। किसी लेखक को समझने के लिए आपको उसका लेखन अवश्य ही पढ़ना व समझना चाहिए।

व्यंग्य में फूहड़ता का स्थान नहीं

सुनील जैन राही

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा की अपनी खास पहचान है। इस विधा में अलग-अलग व्यंग्यकारों ने अपनी शैली में एक अनोखे तरीके से बात कही है। आज व्यंग्य की इस चर्चा का आरम्भ कर रहा हूँ, ऐसे साहित्यकार से जो व्यंग्य विषय के साथ डॉक्टरेट की उपाधि से विभूषित हैं, जिनकी कविताओं में गाँव की पीड़ा झलकती है, शहरी विद्रूपुता नजर आती है, समाज की सड़ांध महसूस होती है और आता है।

राजनीति का ऐसा मुखौटा जिसे कोई देखना नहीं चाहता, यानी एक भरा पूरा साहित्य जिस लेखनी से हमारे सामने आया है, उस लेखनी के धारक है लेखक, सम्पादक, कवि और व्यंग्यकार डॉ. लालित्य ललित।

प्रश्न : व्यंग्य साहित्य की जटिल विधा है, फिर आपने इस विषय को शोध के लिए क्यों?

उत्तर : चुना यह ठीक है कि व्यंग्य साहित्य की जटिल विधा है, लेकिन मैं हमेशा से चुनौतीपूर्ण कार्य करने की अपनी जिजीविषा के कारण साहित्य में भी कुछ ऐसा करने का मन बना कि अलग हटकर कुछ ऐसा कि जाए, जो मुश्किल हो, कठिन हो, और उस कार्य के निपटान में एक प्रकार का चैलेन्ज हो।

इस विषय को चुनने में मेरी मदद की मेरे आसपास के वातावरण ने, मुझे प्रेरित किया, जनमानस को झंझोडने के लिए, उनके मन में विकृति के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए। जहाँ हर प्रकार की सडांध दिखाई दी और जब उसका बारीकी से अवलोकन किया, तो लगा इस पर कुछ ऐसा किया जाए, जिससे समाज में एक नई सोच की अवधारणा फलीभूत हो।

प्रश्न : कविता, कहानी मीठी नींद की गोली है तो व्यंग्य कड़वा कसैला है, जो आपको झकझोरता है, सोचने पर मजबूर करता है, क्यों जरूरी है, इस विधा को जिन्दा बनाये रखना?

उत्तर : ऐसा नहीं है, मैं तकरीबन 30 साल से कविताएँ लिख रहा हूँ। मुझे परिस्थितियाँ मजबूर करती है और मैं उन्हें अभिव्यक्त करता हूँ। व्यंग्य या कटाक्ष ऐसे किया जाए कि दूसरे को झकझोर भी दे और उसे ठेस भी न पहुँचे। जीवन से व्यंग्य कभी खत्म नहीं होगा। व्यंग्य के बारे इससे अच्छी उक्ति और क्या होगी, "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल-लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।"

इस विधा को इसलिए बनाये रखना जरुरी है कि समाज को उसका मुखौटा और उस पर लगे काले-पीले धब्बे समय-समय पर दिखाई देते रहें, इस दिशा में हमारे कार्टूनिस्ट भी काफी सहयोग करते हैं।

प्रश्न : व्यंग्य और हास्य तथा उपहास में कितना फर्क है और ये कहाँ अलग-अलग दिखाई देते हैं? तीनों को अलग-अलग करने के लिए आप क्या उपयुक्त समझते हैं।

उत्तर : व्यंग्य और हास्य तथा उपहास में इतना ही फर्क है व्यंग्य में हास्य हो सकता है, हास्य में व्यंग्य नहीं हो सकता है, अगर हास्य में व्यंग्य आएगा तो वह फूहड़पन लगेगा। व्यंग्य में उपहास तो होता है, लेकिन एक ऐसा उपहास, एक ऐसी उपेक्षा जिस पर चाहकर भी गुस्सा नहीं किया जा सके। तीनों का उद्गम स्थान एक ही है वह है समाज।

प्रश्न : व्यंग्य में हास्य का कितना पुट होना चाहिए? व्यंग्य में अश्लीलता का स्थान है तो कितना? अगर नहीं तो क्यों नहीं?

उत्तर : व्यंग्य में अश्लीलता कतई नहीं होनी चाहिए। यह एक शिष्ट व्यंग्य की परिभाषा है। व्यंग्य में हास्य का पुट उतना ही होना चाहिए, जब तक वह अश्लीलता की सीमा, फूहड़पन की दहलीज को पार न करे।

प्रश्न : व्यंग की लोकप्रियता अवश्य बढी है, लेकिन वह साधारण जन से दूर क्यों हो रहा है? फूहड़ हास्य जो परोसा जा रहा है, उससे जनमानस को बचाने के बारे में आप क्या सोचते हैं व्यंग्य साधारण जन से ही उपजता है। यह बात जरूर है कि आज मंचीय कविता ने जो मिजाज बिगाडा है लटके-झटके और जी हजूरी करके, उससे जरूर नुकसान हुआ है, लेकिन वह भी अब अंतिम साँसें गिन रही है। उसके स्थान पर जोकरनुमा चुटकलों ने ले ली है, जिसने हास्य की गरिमा को जबरदस्त चोट पहुँचाई है।

मंच से आप पैसा कमा सकते है परंतु 'फूहड़ता' ना परोसे। इस अपराध के लिए आयोजक और श्रोता भी उतने ही जिम्मेदार है जितने इसको परोसने वाले। ऐसे रचनाकारों का बहिष्कार क्यों नहीं किया जाता? अगर बहिष्कार नहीं कर सकते तो कम से कम उन्हें सम्मानित भी न करें।

प्रश्न : छपने के लिए व्यंग्य लेखन या सामान्य लेखन हेतु उच्च पद पर आसीन होना जरूरी है क्या? क्या व्यंग्य के लिए कोई नीति निर्धारित है।

उत्तर : यह क्या सवाल हुआ यदि कोई रचनाकार साधन संपन्न है और वरिष्ठ पद पर है तो कुछ समय तक तो आप उसे स्वीकार करेंगे, लेकिन यदि उसके पास सृजन हेतु 'नया' कुछ नहीं होगा तो अस्वीकार करने में शर्म कैसी? व्यंग्य आप झोंपडी में बैठ कर, 'मेट्रो' में बैठ कर कहीं भी लिख सकते हैं। इसके लिए स्थान विशेष की आवश्यकता नहीं है, लेकिन बात में दम होना चाहिए।

प्रश्न : आज के व्यंग्यकारों से आप क्या उम्मीद करते हैं?

उत्तर : आज के व्यंग्यकार अपनी 'हद' पहचानें। लोगों को समझें। किसी की जी हजूरी ना करें। वक्त के मुताबिक लेखन को हथियार बनाएँ। धारदार प्रहार करें। छोटी-मोटी बातों से परे रहें।

प्रश्न : अंत में क्या आपको व्यंग्य सरकारी और गैर सरकारी दो भागों में विभाजित नहीं लगता इनमें ज्यादा सार्थक कौन है?

उत्तर : व्यंग्य हमेशा गैर सरकारी ही रहा है और सरकार पर, सरकारी नीतियों और कुप्रबंध पर चोट करता आया है। दूसरी सरल सी बात समझ लीजिए कि जो सत्ता में है। पद पर है। वह मस्ती से डकार लेता है और सामने वाला आप पर व्यंग्य करता है। इसके दो उदाहरण हैं, हमारे सामने एक रविन्द्र त्यागी और दूसरे शरद जोशी। रविन्द्र त्यागी सरकारी महकमे में रहने के बावजूद लिखते रहे और शरद स्वतंत्र रूप से लिखते रहे, यानी व्यंग्य न सरकारी होता है, न गैर सरकारी व्यंग्य विद्रूपुता परोसने वाला वह साधान है, जिससे समाज की सड़ांध को दूर किया जा सके।

कविता का अपना सौंदर्य है

चन्दन राय से संवाद

तमाम साहित्यकार कविता लिख रहे हैं और इंटरनेट या ब्लॉग की दुनिया में घर बैठे दूसरों से जुड रहे हैं। ऐसा बिलकुल नहीं है कि बच्चों को संस्कार टेलीविजन पर कोई धारावाहिक देखने से मिलेंगे, इसके लिए आपको किताब की शरण लेनी ही होगी। इलाहाबाद के संगम का जिसने मजा ले लिया हो, वो गंदे तालाब में भला क्यों नहाएगा? तो आइए मेरे साथ लालित्य ललित संग संवाद-स्नान कीजिए।

चंदन राय : साहित्य में कविता-लेखन की ओर झुकाव आपने कब महसूस किया?

लालित्य ललित : बात सातवीं आठवीं कक्षा की रही होगी। जहाँ तक लिखने की बात है तो ये संस्कार कुछ लोगों में जन्मजात होते हैं, तो कुछ दूसरों से प्रेरित होकर लिखते हैं, तो कुछ पर माहौल का असर होता है। रामदरश मिश्र की कविताएँ प्रेरणीय लगती थीं तो भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं से बचपन में ही काफी प्रभावित रहा। छोटी उम्र में जब शरारत करने का मन होता, तो दूसरे बच्चों से अलग कागज कलम लेकर कुछ न कुछ लिखने बैठ जाता था। धीरे-धीरे इसी कुछ न कुछ लिखने ने कविता का आकार लेना शुरू किया। उन दिनों कक्षा में बाबा नागार्जुन या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं का मंचीय पाठ भी किया करता था। छठी कक्षा में एक कविता पढी थी 'सुनो साथी। 'पूरी कविता मुझे आज भी अक्षरशः याद है, पर कवि का नाम याद नहीं आता। गुरू जी से बराबर पूछता कि यह रचना किसकी है? पर आजतक मुझे रचनाकार का नाम पता नहीं लग पाया।

प्रश्न : आज बच्चों के लिए कविता कहानियाँ कम लिखी जा रही हैं? नेशनल बुक ट्रस्ट इसके लिए क्या कर रही है?

उत्तर : आज कविता के लिए एक व्यापक इंटरनेट का जंजाल उपलब्ध है। तमाम साहित्यकार कविता लिख रहे हैं और इंटरनेट या ब्लॉग की दुनिया में घर बैठे दूसरों से जुड रहे हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि बच्चों को संस्कार टेलीविजन पर कोई धारावाहिक देखने से मिलेंगे, इसके लिए आपको किताब की शरण लेनी ही होगी। इलाहाबाद के संगम का जिसने मजा ले लिया हो, वो गंदे तालाब में भला क्यों नहाएगा? किताबों को पढा जाना एक अलग आनंद है। बच्चों के लिए अच्छी रचनाएँ छप रही हैं। अभी हम लोगों ने पंजाबी लेखक गुरूदयाल सिंह की रचनाओं का पंजाबी से हिन्दी में अनुवाद करवाया है।

प्रकाश मनु जैसे कितने रचनाकार बच्चों के लिए भी लिख रहे हैं। 500 से अधिक श्रेष्ठ भारतीय भाषाओं की रचनाओं को नेशनल बुक ट्रस्ट ने छापा है। हम लोग 8-10 प्रक्तान्तों के लेखक की अंतप्रर्तातीय गोष्ठियां भी करवाते रहते हैं, जिससे यह पता चलता है कि दूसरे जगहों पर हिन्दी की क्या स्थिति है? हरेक लेखक यह सोचता है कि उसकी रचनाएँ तुरंत छप जाएँ।

लेकिन सभी रचनाओं को तो हम जगह नहीं दे सकते, यह हमारी मजबूरी है। जो श्रेष्ठ रचनाएँ होती हैं, उन्हें किताब की शक्ल में पाठकों तक पहुँचाया जाता है। हमारे यहाँ की किताबें तो दूर-दराज के गाँवों, देहातों में भी पढी जाती हैं।

प्रश्न : भूमंडलीकरण और उदार अर्थव्यवस्था के दौर में, जब लोगों के पास किताब पढ़ने के लिए समय नहीं है, साहित्य के लिए कितनी जगह आप देखते हैं?

उत्तर : नेशनल बुक ट्रस्ट एक स्वायत्त संस्था है, जो मानव संसाधन विकास मंत्रलय के तहत काम करती है। हम लोग किताबों के प्राचार-प्रासार के लिए देश के सुदूर इलाकों तक का भ्रमण करते रहते हैं।

आप विश्वास न करेंगे, जहाँ पहुँचना आपके लिए कठिन होगा, वहाँ भी एनबीटी की किताबें आपको जरूर मिल जाएँगी। यह लोगों की मेहनत और लगन के कारण ही संभव हो सका है। हिमाचल में गदाऊ एक जगह है, जहाँ लोग शाम होते ही शराब पीकर देश-दुनिया से बेखबर हो जाते थे। लेकिन हमारे प्रयास के कारण वहाँ भी अब किताबें पढी जा रही हैं। जहाँ पहले लोग बिजली न रहने पर बैट्री लगाकर धारावाहिक या सिनेमा देखने में समय बर्बाद करते थे, वहाँ अब किताबों को पढने में समय लगा रहे हैं। ऐसे क्षेत्रों में जिलाधिकारी और बीडीओ की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। हम हरेक ऐसे क्षेत्रों तक पहुँचने की योजना बना रहे हैं, ताकि किताबें समाज में फिर से स्थापित की जा सकें। हम हिन्दी सहित दूसरी भाषाओं में भी विज्ञापन देते हैं, ताकि पाठकों तक दूर-दराज के गाँवों में पहुँच सकें। लोग साहित्य के क्षेत्र में नई किताबों से परिचित हो सकें।

प्रश्न : मुख्य धारा साहित्य की उपेक्षा के बाद भी दलित और स्त्री-विमर्श की एक अच्छी परंपरा चली है। क्या इस तरह के विमर्श से इनकी स्थिति पर भी कोई फर्क पडने की उम्मीद है?

उत्तर : मुझे लगता है साहित्य को दलित और स्त्री के घेरे से बाहर निकलकर समझने की जरूरत है। दलित शब्द हटा दें, तो साहित्य सबके लिए है। दलितों का खून हमसे अलग तो नहीं। दलित साहित्यकारों के अलावा भी कई ऐसे लेखक हैं, जो उनकी स्थितियों पर बेबाकी से लिख रहे हैं। आप गुरूदयाल सिंह की रचनाओं को ले लीजिए या अमरेंद्र सिंह की कहानी ही पढ लीजिए। दलित लेखन को लेकर रमणिका गुप्ता जी ने ही अपनी पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' के दो विशेषांक निकाले हैं। बहुत से लोग सराहनीय काम कर रहे हैं। ओम प्राकाश वाल्मीकि की रचनाओं को ही ले लें। रचनाओं को विशेष संप्रादाय या जाति से जोडकर देखना उचित नहीं। प्रेमचंद को आप किस खाने में रखेंगे। दलित एवं स्त्रियों की समाज में स्थिति को लेकर भी साहित्यकार चिंतित हैं और यह उनकी रचनाओं में साफ झलकती भी है।

प्रश्न : समय के परिवर्तन के साथ साहित्य का जो वर्तमान अंतर्संबंध है, क्या आप उससे संतुष्ट हैं?

उत्तर : आपातकाल के बाद स्थितियाँ तेजी से बदली हैं। मानवीय सरोकार तेजी से बदले हैं, तो मानवीय मूल्यों में भी ह्रास हुआ है। लोगों की सोच में बदलाव आया है। समय बदला है, तो साहित्य ने भी उन चीजों को जगह दी है। कोई साहित्य अपने समाज से विमुख कैसे हो सकता है? साहित्य तो समाज का ही प्रातिनिधित्व करता है। किसान आत्महत्या कर रहे हों, तो केवल खाते-पीते भारतीयों की ही बात कैसे की जा सकती है साहित्य में? हाँ, एक बात को लेकर जरूर परेशान होता हूँ कि हिन्दी की स्थिति अंग्रेजी से पिछड़ी क्यों है? कविता-संग्रह छपता है तो लोग आपस में बांट लेते हैं, दो शब्द लिख दीजिए।

हिन्दी साहित्यकारों में ऐसी बेचारगी तो नहीं होनी चाहिए। इस बात को लेकर दुखी जरूर हूँ।

प्रश्न : हिन्दी साहित्य में कविता कितनी संभावनाशील लगती है आपको? क्या समकालीन कविता परिदृश्य से आप संतुष्ट हैं?

प्रश्न : सुधीश पचौरी जैसे कुछ लोग हैं, जो कविता के अंत की घोषणा करने में लगे हैं। इनको ध्यान में रखकर ही 'कविता संभव' की रचना की गई। जीवन से कविता कैसे खत्म हो सकती है? जब तक साँस है, जीवन है, मूल्य जीवित हैं, कविता जिंदा रहेगी। कविता का अपना सौंदर्य है, रूपताल है, खुशबू है। कविता अपना काम कर रही है समाज में।

प्रश्न : आज पत्र-पत्रिकाओं में सार्थक साहित्य के लिए जगह कम होती जा रही है। ऐसे में कविता को लेकर आप क्या सोचते हैं?

उत्तर : इंटरनेट के युग में हम जैसे ही अपनी रचना फेसबुक पर डालते हैं, यह पाठकों के लिए व्यापक फलक पर उपलब्ध हो जाती है। मीडिया स्पेस नहीं दे रहा, लेकिन अच्छी कविता दूसरे संचार माध्यमों का इस्तेमाल कर लोगों

तक पहुँच रही है। हरेक भारतीय पर्व के समय ही देख लें। इंडिया टुडे हो या आउटलुक ये होली और दीपावली पर विशेषांक निकालते हैं। आज भी पत्रिकाओं में ऐसे अवसरों पर बांग्ला में श्रेष्ठ रचनाएँ छप रही हैं। देशबंधु के अक्षर पर्व की अपनी अलग विशेषता है। युवा रचनाकारों को वहाँ पूरी जगह उपलब्ध है। लेकिन सवाल ये है कि दूसरे ऐसा क्यों नहीं कर रहे। अभी एक उर्दू रचनाकार बता रहे थे कि उर्दू के रिसाले में कविता लिखूँगा, तो दो सौ, चार सौ रुपए मिलेंगे। इसकी बजाए अगर एक-दो प्लॉट बिकवा दूँगा, तो दलाली में ही कई हजार कमा लूँगा। ऐसी सोच वालों के लिए साहित्य में कोई जगह नहीं होनी चाहिए। आज भी लोग ये जानना चाहते हैं कि समाचार पत्रों में मंगलेश डबराल क्या कह रहे हैं, अशोक वाजपयी ने इस बार क्या लिखा है? एक सीमित दायरा तो जरूर है, लेकिन इसे और बढ़ाने की जरूरत है। इसमें हमारी, आपकी सबकी भागीदारी होनी चाहिए। रचनाकारों को आर्थिक सहयोग भी देना होगा। हरेक जगह चार-छह नाम शामिल हैं, जो सभी साहित्यिक मंच पर किताबों का लोकार्पण करते मिल जाएँगे। अब स्थितियाँ बदलनी चाहिए।

गजल और लोकगीतों को साहित्य में जो प्रातिष्ठा मिलनी चाहिए थी, नहीं मिल पाई है। एनबीटी ऐसी विधाओं को प्रोत्साहित करने के लिए क्या कर रही है?

हम तो लोगों के लिए मंच उपलब्ध करवा सकते हैं। भोपाल में आलोक श्रीवास्तव गजल में बढ़िया कर रहे हैं। जावेद अख्तर और गुलजार की बातें भी आवाम तक पहुँच रही हैं। अच्छी पांडुलिपी आती है, तो उसके प्राकाशन को पूरा स्थान दिया जाता है।

प्रश्न : इन दिनों आप क्या लिख-पढ़ रहे हैं?

उत्तर : अभी पिछले दिनों पुस्तक मेले में 'इंतजार करता घर' कविता-संग्रह का लोकार्पण किया गया है। एक और कविता-संग्रह 'चूल्हा उदास है' शीध्र ही आनेवाला है। ये कविताएँ आम आदमी के दुख-दर्द को कविता में बयान करती है। ये जमीन से जुड़ी कविताएँ हैं।

लोग जलते क्यों है!

लेखक : लालित्य ललित

ये उनकी आदत है
या
पुस्तैनी भाईचारा
जिसे निभाने काम न करता है
या
खुद की ईजाद की हुई
खुजली उन्हें आमंत्रित करती है
कि
आओ
मिलकर खुजलाये
ये प्रजाति जरा विशेष टाइप की होती है
जो न उम्र देखती है
न ही सामने वाले की इच्छा और प्रकृति
पता नहीं जलनखोर नामक ये कीटाणु उनमें
या
औरों में
कहाँ से आया!
क्या ये पौराणिक समय से है
क्या वर्तमान में इसने ज्यादा जोर पकड़ा है!
लेकिन लगता है साहब
ये कीटाणु सक्रिय बड़ा है
इसे हलवा खिला दो
तो भी खुश
न खिलाओ तो ऐसे मुंह बना लेंगे
जैसे इनकी पतंग काट दी हो
महंगाई भत्ता रोक दिया हो
बहरहाल
आपका काम है जलना
हमारा काम है जलाना
नमस्ते।

(पुस्तक मजदूर कहता है से)

व्यंग्य कल आज और कल

डॉ. लालित्य ललित से रामगोपाल शर्मा की बातचीत

रामगोपाल शर्मा : लालित्य जी आप व्यंग्य में क्यों आये! आप कविता में आवश्यक दम-खम रखने वाले नायाब चिंतक है! क्या कहना है आप का इस बारे में?

लालित्य ललित : देखिए शर्मा जी, आप ने सही कहा। मैं कविता का आदमी हूँ। उसको जीना पसंद है। अच्छा लगता था जब निमाड़ के लोक संस्कृति के विद्वान पंडित रामनारायण उपाध्याय ने एक बार कहा था कि दिल्ली जैसे कंक्रीट के शहर में इतने संवेदनशील कैसे रह लेते हो भाई!

कविता एक निर्झर झरना है जो बहता है मुझ में।अनायास ही विषय मेरे पास आते है और लिखने को कहते है। उनका निवेदन मैं ठुकरा नहीं सकता।

व्यंग्य मेरा नशा है। जब मैं अपने आस पास के दिग्गज व्यंग्यकारों को देखता था और महसूस करता था कि इनके व्यंग्य को अख़बार पूरा पूरा पेज देता है लेकिन कविताओं को एक कोने में स्थान मिलता है और लगता है कि कविताओं को फिलर की भांति इस्तेमाल कर लेने की आदत सम्पादकों को बन चुकी है। कई बार कविता में आप बात खुल कर और सही तरीके से व्यक्त नहीं कर सकते जो व्यंग्य में निशाना बना कर कहा जा सकता है। अपने आस-पास कितनी ही विसंगतियाँ फैली हुई है जो आपको लिखने के लिए निमंत्रित करती है।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी। क्या कविताओं के साथ व्यंग्य भी हाशिये पर आया है!

लालित्य ललित : शर्मा जी, ऐसा देखने में आया है कि मंचीय कविता आज महज चुटकलों पर आधारित हो कर रह गई है। ऐसे लगता है कि जैसे हम स्थानीय सब्जी मंडी में आ गए हो जहाँ हर सब्जी वाले कि सब्जी का भाव अलग अलग है, जबकि माल वही है। कितने ऐसे लोग है जो स्थापित है, मगर एक लंबे समय से दूसरों की रचनाओं को चोरी करते हुए वे आज सर्वोच्च मुकाम पर जमे बैठे है। सरकारी और गैरसरकारी सम्मान भी हथियाये बैठे है। उन्हें किसी किसिम की शर्म नहीं है कि लोग क्या कहेंगे!

वे चिकने घड़े है। ऐसे ही कुछ लोग व्यंग्य में भी है जो एक जमाने में सक्रिय थे, मगर अब लगभग चूक चुके है तो संस्थाएँ बना कर अपना पपलू फिट करने के जुगाड़ में है। वे ही संस्था के अध्यक्ष होते हैएसंस्थापक तो जन्मजात होते ही है इस किसिम के लोग। कुछ व्यंग्यकारों ने बरसों से कुछ नया सृजन नहीं किया तो वे आज मठाधीश बने बैठे है। कि कोई नया ग्राहक तो फसेंगा। वे इतना मधुर बोलते है कि लोग न चाहते हुए भी फंस जाते है। फिर शुरू होता है उनका गौरखधंधा! लोग उनसे खींचे चले आते है वे किसी देश की यात्रा करवाते है। एक टिकट फ्री मिलती है दस पर।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी! मैं समझ रहा हूँ आप का इशारा। पर आप यह भी मानिए कि काम तो कर ही रहे हैं न!

लालित्य ललित : जी, कामी लोग काम तो करते ही है। हैरानी तब होती है जब आप किसी पड़ोसी देश की व्यंग्य रचना का अल्ट्रेशन करने के बाद अपनी बताते है तो बड़ा दुख होता है।

अभी कुछ दिनों की बात है जब एक यात्रा के दौरान मंचीय कवयित्री डॉ. रमा सिंह ने मंच के कद्दावर कवियों के जो चिट्ठे खोले, वाकई शर्म से हम गढ़ गए कि पाठक उन कवियों के बारे में क्या सोचते थे और वे क्या निकले! लेकिन आज भी रमाशंकर अवस्थी जी और बाल स्वरूप राही, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी जैसे हस्ताक्षर हमारे पास है जिनकी वजह से मंचीय साहित्य बचा हुआ है। हालांकि अवस्थी जी अब नहीं है।

रामगोपाल शर्मा : लालित्य जी। एक और सवाल बनता है पहले के व्यंग्यकारों में और अब जो तेजी से कुकुरमुत्तों की तरह व्यंग्य में भी पौध आती दिख रही है उनके बारे में क्या कहेंगे!

लालित्य ललित : शर्मा जी, ये सवाल आपने बेहद वाजिब किया है। पहले के व्यंग्यकारों में शालीनता थी। जीवन के मुद्दों के प्रति ठसक थीं। जैसे रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई।

श्रीलाल जी और त्यागी जी से मेरा मिलना हुआ है। जीवन के प्रति उनकी सोच और चिंतन का दायरा विस्तृत था। लेकिन उसके बाद के व्यंग्यकारों में छीना झपटी चाहे पुरुस्कार का मामला हो, सरकारी सम्मान का या उत्तरप्रदेश का पुरुकार ही क्यों न हो! मैं यह मानता हूँ कि पुरस्कार लेखक को बड़ा नहीं बनाते लेखक के लेखन से लेखक बड़ा होता है।

पुरस्कार उसके पाठक होते है। अब देखिए मॉरीशस के विश्व हिंदी सम्मेलन में सदस्य तक अपनी पत्नियाँ, साला, दामाद, साडू तक सरकारी डेलोगेशन में चले गए। उनकी नीति और नीयत को देखिए। सरकार को भी चाहिए कि ऐसे सदस्यों को न रखें जिससे पूरे आयोजन को अपमान और आलोचना को झेलना पड़े। मुझे इस तरह की बातों से ऐसे मित्रों ने अवगत कराया जिन्हें इस तरह के समाचार मालूम थे।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी, आज कल व्यंग्य कितना भोथरा हुआ है या मारक! उस पर क्या कहना है!

लालित्य ललित : शर्मा जी, व्यंग्य वह चाकू है जिसकी धार हमेशा पैनी रहती है यदि उसकी धार कम भी हुई है तो उसे तेज करने की आवश्कयता है ताकि कोई भी विषय हमारी निगाह से न छूट कर निकल पाए।

आज हरीश कुमार सिंह, पिलकेन्द्र अरोड़ा, शांतिलाल जैन, मुकेश नेमा, कृष्ण कुमार आशु, अनुराग वाजपेयी, नीरज दइया, मधु शर्मा आशावादी और इधर के व्यंग्यकारों में अनूप मणि त्रिपाठी, लालित्य ललित, अनिता यादव, सुनीता शानू, संतोष त्रिवेदी से लेकर अमित श्रीवास्तव तक के नाम लिए जा सकते है। व्यंग्य आलोचना में जबलपुर के रमेश सैनी, झारखंड से दिलीप तेतरबे और आज रमेश तिवारी, एमएम चंद्रा से लेकर रणविजय राव का नाम लिया जा सकता है।

रामगोपाल शर्मा : लालित्य ललित जी, एक बात बताइए मन में जन्मी शंका बहुत समय से परेशान कर रही है कि क्या गालियों का होना किसी भी रचना में कहां तक सही है!

लालित्य ललित : देखिए, भाई साहब। गालियों को जहाँ शादी ब्याह के दौरान गीतों के तौर और दूल्हे के स्वागत करते हुए इस्तेमाल किया जाता था, वही यदि हम इन्हें व्यंग्य में उपयोग करने लगे तो क्या परोस रहे हैं। जरा सोचिए। पिछले दिनों अनवरत पत्रिका के संपादक दिलीप तेतरबे ने एक व्यंग्यकार को रख कर धोया था। उस व्यंग्यकार को कई महीने दस्त लगे रहे जीएसटी के साथ।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी। यह बताइए कि आप की पसंद के व्यंग्यकारों में सर्वश्रेस्ठ व्यंग्यकार कौन है!

लालित्य ललित : ये तो आपने घोर चिंतन में डाल दिया। जिसके नाम को नहीं लूँगा, वह दौड़ा चला आएगा। फिर भी एक लंबी लिस्ट है जिसमें शांतिलाल जैन, हरीश कुमार सिंह, पिलकेन्द्र अरोड़ा, मुकेश नेमा, सत्यदेव संवितेन्द्र, नीरज दइया से लेकर स्नेहलता पाठक, सुनीता शानू, अनिता यादव इत्यादि शामिल है।

रामगोपाल शर्मा : लालित्य ललित जी, कुछ पाठक कहते है कि आपके व्यंग्य में प्रेम जनमेजय का दृष्टिकोण प्रस्तुत होता है! इस पर क्या कहते हैं!

लालित्य ललित : देखिए, ये पाठकों का सोचना है।वे हमारे बुजुर्ग व्यंग्यकार हैं। वे समय-समय पर चेताते रहते है कि स्पीड लिमिट में रहें, अन्यथा नुकसान हो सकता है। वैसे प्रेम जनमेजय के व्यंग्य मुझे पसंद हैं और व्यंग्यकार

हरीश नवल की प्रस्तुति। आज भी उनका व्यंग्य तुसी करदे की हो!

मेरा फेवरिट है।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी, किसी और फेवरिट व्यंग्यकार का नाम लेना चाहेंगे!

लालित्य ललित : जी, मेरी पसन्द सूची में माध्यम संस्था के सचिव रहे रमाशंकर श्रीवास्तव आते हैं जिनका अंदाज और प्रस्तुति कमाल की है।

व्यंग्य लिखना और और उसे प्रस्तुत करना भी कला का कौशल है। जिसे हर व्यंग्य यात्री को सीखना पड़ेगा कि क्या अंदाज और क्या लेवल रखना होगा मंच के लिए और अपने पाठकों के लिये। इस कड़ी में हमारे पुरोधा गोपाल चतुर्वेदी, गोपाल व्यास सर्वोपरि है।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी, इन दिनों आप से अनेक लोग भयभीत हैं कि उनके सोचते ही आप का कोई न कोई नया व्यंग्य संग्रह आ जाता है! पिछले नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में आपके आधा दर्जन व्यंग्य संग्रहों ने धूम मचाई। क्या इस बार भी ऐसा ही कुछ होगा!

लालित्य ललित : शर्मा जी, लगता है आपने अपना होमवर्क बड़ा जबरदस्त किया है। इस बार यानी नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले 2020 में मुझे अपना ही रिकार्ड तोड़ना है।

रामगोपाल शर्मा : लालित्य ललित जी, एक बात और बताइए। सोशल मीडिया में भी आप एक्टिव हैं, कविताओं में भी। व्यंग्य के भी हुनरमंद खिलाड़ी की भूमिका में हो। आप किस विधा में अपने को रखना चाहते हैं!

लालित्य ललित : भाई साहब, मैं कविताओं में अपना आदर्श रामदरश मिश्र जी को मानता हूँ। व्यंग्य में कोई आदर्श नहीं बना पाया। व्यंग्य लिखता हूँ, कविताओं से प्रेम करता हूँ। सोशल मीडिया पर इसलिए एक्टिव रहता हूँ कि संसार भर की गतिविधियों से परिचित रहूँ।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी, एक आखिरी सवाल आप इस विधा में आने वाले व्यंग्य यात्रियों को क्या संदेश देना चाहते हैं कि वे इस विधा से अपने को जोड़ें!

लालित्य ललित : जीवन में विसंगतियों से जुड़ना ही होगा, हर लेखक को। यह आसान नहीं है। आप को अपने आस-पास ईमानदारी बरतनी होगी। चुगलखोर लोगों से दूर रहना होगा। कुछ लोगों ने पानी को नुकसान पहुँचाया है यहाँ पानी का अर्थ व्यंग्य की निश्चल धारा है, आज देखिए उन लोगों को जिनका कोई नाम लेने वाला भी नहीं। अपने दायरे में सिमट गए।

रामगोपाल शर्मा लालित्य ललित जी आप के पात्रों के बारे में भी कुछ बात हो जाये। आप के पांडेय जी और अन्य पात्रों की कल्पना कैसे कर लेते हैं!

लालित्य ललित : आप देखिए। आज गाड़ियों के कितने मॉडल्स है। वैसे ही लेखक अपनी दुनिया के लिए अपने पात्रों की कल्पना कर लेता है। आज मेरे पास दर्जन भर पात्र है।

जिसमें देविका गजोधर, मधुबाला, राधेलाल, लपकुराम, चिलमन और रूपमती के अलावा रामप्यारी भी है। मेरे पात्र मेरे आस-पास मंडराते है। हमें कहीं और से पात्रों को आयात करने की आवश्यकता नहीं। कुछ लोग तो आजकल प्याज आयात कर रहे हैं। अब कमी होगी तो उसका निदान तो करना ही पड़ेगा।

रामगोपाल शर्मा : ललित जी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद, आप ने अपना समय हमें दिया और इस बातचीत से निश्चित ही हमारे पाठक लाभांवित होंगे।

लालित्य ललित : शुक्रिया, शर्मा जी।

आज हमारी कविता के विषय कैसे बदल गए हैं, ये बात ललित की कविताएँ बतलाती हैं। ललित जीवन की प्राथमिकताओं के साथ उसकी चिंता भी करते हैं।

–गंगा प्रसाद विमल

व्यंग्य तीर चलाते हैं लालित्य ललित

सुनील जाधव से संवाद

डॉ. सुनील जाधव द्वारा सम्पादित अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रिका "शोध ऋतु" द्वारा यू टुबे लाइव पर आयोजित "शोध ऋतु वक्ता के चौथे क्रम में दिल्ली से प्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं कवि श्री लालित्य ललित से लिया गया साक्षात्कार ज्यों का त्यों प्रस्तुत।

किसी बात को कल्याणकारी उद्देश्य के साथ सीधे ढंग से न कहते हुए टेढ़े ढँग से कहना व्यंग्य कहलाता हैं। इस व्यंग्य को कहने वाला कह जाता हैं, सुनने वाला सुन लेता हैं और भीतर से तिलमिला उठता हैं। पर वह प्रतिक्रिया देना चाहकर भी नहीं दे पाता क्योंकि प्रतिक्रिया देना अर्थात अपने आपको हास्यास्पद बना लेना हो जाता हैं। वह व्यंग्य होता हैं। व्यंग्य समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, अर्थनीति, साहित्य आदि प्रत्येक क्षेत्र की कमियों, दोषों पर वार करता हैं और उसे सुधरने का मौका देता हैं।

एक ऐसा ही किस्सा मुझे याद आता हैं। एक बार दुष्यंत, कमलेश्वर और कुछ नये कवियों को रेडियों पर कवि सम्मेलन के लिए बुलाया गया था। कवि सम्मेलन समाप्त हुआ। नये कवियों ने कुछ खास कमाल नहीं दिखाया। इस बात का दुष्यंत को गुस्सा आया। उन्होंने सीधे अपना गुस्सा न प्रकट कर अलग ढँग से अपना गुस्सा प्रकट किया। उन्होंने नये कवि से कहा, "क्या आपका चेहरा मुझे कुछ देर के लिए उधार मिल सकता हैं।

व्यंग्यकार अपने लेखन रूपी धनुष्य से व्यंग्य रूपी बाण अर्थात् तीर ऐसे चलाता हैं कि वह सामने वाले के सीने के आरपार हो जाता हैं। ना वहाँ तीर दिखायी देता हैं, ना वहाँ कोई घाव दिखायी देता हैं। लेकिन सामनेवाला घायल जरुर हो जाता हैं।

पाथर पूजे हरी मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताके ये चाकी भली, पीसी खायें संसार।

कहने वाले कबीर की वाणियों में स्थित व्यंग्य हो या सूरदास की गोपियाँ और उद्धव संवाद में स्थित उलटबाँसी या व्यंग्य। भारतेंदु से लेकर नागार्जुन की कविताओं तक हमें यह व्यंग्य देखाई देता हैं। तो वहीं स्वतंत्र व्यंग्य विधा के रूप में हरीशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी से लेकर हरीश नवल तक यह व्यंग्य विपुल मात्रा में लिखा गया।

इसी व्यंग्य परम्परा में बड़े आदर के साथ जिस व्यंग्यकार का नाम लिया जाता हैं, वह श्री लालित्य ललित। व्यंग्यकार श्री लालित्य ललित जी से इसी व्यंग्य को आज हम विस्तार से सुनेंगे। मैं उनसे विशेष अनुरोध करता हूँ कि आप अपने वक्तव्य के साथ, अपने लेखन सम्बन्धी अनुभव एवं व्यंग्य संचयन सम्बन्धी जानकारी अवश्य प्रदान करें। उनका वक्तव्य आरम्भ करने से पहले आइये उनका परिचय देखते हैं।

27 जनवरी 1970, दिल्ली में जन्मे लालित्य ललित जी आज नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया में सम्पादक के पद पर कार्यरत हैं। आप के अबतक 35 कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक दर्जन से भी अधिक विदेशों की यात्राएँ आपने की हैं। आपको अनेक सरकारी व गैरसरकारी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आपकी अनेक रचनाएँ अनुदित हो चुकी हैं। इन दिनों आप सवार्धिक सक्रिय व चर्चित व्यंग्यकार हैं।

वक्तव्य : व्यंग्य तीर चलाते हैं!

व्यंग्य लिखते समय समाज की विसंगति पर प्रहार करना जरूरी है।

व्यंग्य वह हथियार है, जो आपको विचलित किये बिना दूसरे पर अटैक। करता है। जिसे आभासिक युद्ध कह सकते हैं। जिससे अच्छे भले मठाधीश उद्ध्वस्त हो जाते हैं।"

लालित्य ललित

'सुनील जाधव'

व्यंग्य बचपन शरारत और जिद्द के बारे में विस्तार से बताइए!

'लालित्य ललित'

व्यंग्य एक जटिल विषय है। मैं तो कविता का आदमी हूँ। मैं कविता करते-करते कब व्यंग्य में कूदा पता ही नहीं चला। बचपन में मैं बड़ा शरारती था। आपको मैं एक स्कूल का किस्सा सुनाता हूँ।

मैं बड़ा शरारती और जिद्दी था। मेरा बेटा भी बड़ा शरारती हैं और जिद्दी हैं। मुझे ड्राइंग नहीं आती थी। टीचर मेरी उँगलियों में जबरन पेन फँसा कर मुझसे ड्राइंग करवाते थे। जिस कारण मुझे बड़ी पीड़ा होती थी। यह पीड़ा मुझसे बर्दाश्त नहीं हुई और एक दिन मैंने टीचर को धमकी दे दी।

"आज आप स्कूल के बाहर निकल के बताना।"

मैं बड़ा जिद्दी था। वह जिद्दीपन आज भी मुझमें है।

जब मेरी पहली कविता छपी तो मैं बहुत खुश हुआ था। मेरी पहली कविता आकाशवाणी पर प्रसारित हुई। और मुझे 150 रु.का चेक मिला। मैं उस दिन इतना खुश था कि अपनी मोटर साईकिल पर हँसता-मुस्कुराता हुआ घर आया।

'सुनील जाधव'

सुना है आप की अभिनय में रूचि भी रुचि रही!

'लालित्य ललित'

मुझे अभिनय बड़ा पसंद था। मैं रामलीला में अभिनय करता था। मैं रामलीला के रावण महाराज पर हँसता था। क्योंकि वो बड़ा धीमा बोला करते थे। मैं उस समय शिवजी का अभिनय किया करता था। जिसे मोहल्ले की, आस-पड़ोस की स्त्रियाँ देखकर बड़ी खुश होती थी। और मेरे पैर छूती थी। मुझे आनंद की अनुभूति होती थी। यह तो बचपन के किस्से हैं। बचपन में हर व्यक्ति शरारती हुआ करता है।

'सुनील जाधव'

लेखन की शुरूआत कब और कैसे हुई!

'लालित्य ललित'

शुरू-शुरू में मैं हरियाणवी कवि सुरेन्द्र शर्मा की कविता सुनाया करता था। उनकी बड़ी लोकप्रिय कविता हैं

"ये जी, मैं ऊपर की बर्थ पर कईयां जाऊँ।
मन्ने बड़ा डर लागे है मैं गिर जाऊँगी।"
मैं बोलो : भाग्यवान तुम ऊपर तो जाओ
तुम्हारे जाते ही बर्थ नीचे ने आ जावेगी।
उस वक्त मुझे कई लोगों ने कहा,

"ललित भाई, आप हिंदी के व्यक्ति हैं, आप बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं।"

उस समय मैं किरोड़ी मल कॉलेज में पढाई करता था। जहाँ बिग.बी. अमिताभ बच्चन ने पढ़ चुके हैं। मेरी बेटी ने भी ने वहीं से एम.ए. अंग्रेजी में किया है। वहाँ एक बार मुझे कविता पढ़ने का मौका मिला था। आज से 25-30 साल पहले की बात है। मंच पर मेरे पसंदीदा कवि सुरेन्द्र शर्मा थे। मुझे कविता के लिए 1500 रु. का लिफ़ाफ़ा मिला था। आप सोच सकते हैं कि उस वक्त यह रकम कितनी बड़ी हुआ करती थी। उस वक्त मैं बहुत खुश था।

वहीं से मैंने हिंदी ऑनर्स, एम.ए. हिंदी की पढाई पूरी की। उसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में तीन माह का कोर्स "स्पोर्ट्स साइंस जर्नालिज्म" किया। उसके बाद मुझे आकाशवाणी पर मौका मिला। यहाँ मुझे बहुत सारे काम मिले।

आकशवाणी एवं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया में प्रवेश :

आकाशवाणी के बाद मैं नेशनल बुक ट्रस्ट में १९९५ के बाद आया। यह १९९४ की बात है। नेशनल बुक ट्रस्ट में नौकरी निकली थी। एक जगह के लिए १८ उमीदवार आये थे। मैंने देखा कि वहाँ कोई भी एक दूसरे को शुभकामनाएं नहीं दे रहा है। मैंने देखा कि वहाँ एक व्यक्ति बड़ा सिस्टीमेटिक देख रहा है। दस्तावेज, अख़बार की कतरन आदि। वह छतरपुर से आया था। मैंने उसे शुभकामनाएँ दी। और एनबीटी के प्रवेश द्वार के बाहर आ गया। दीवार फिश्ल्म के अमिताब बच्चन की तरह पीछे मुड़कर देखा और मैंने कहा,

"एबीटी इंडिया अगली बार पोस्ट एडवरटाईज करेगी तो फिर मुझे मना नहीं करेगी।"

और वहीं हुआ 25 अप्रैल, १९९५ को मैं परमानेंट एम्प्लॉय हुआ। मुझे हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़ का नोडल ऑफिसर नियुक्त किया गया।

मेरी पहली रचना प्रकाशित हुई १९९१ में। एक बार प्रेम जनमेजय के साथ मैं उनके स्कूटर पर बैठा। आपने मुझे अपने प्रिय प्रकाशक श्रीकृष्ण जी के पास छोड़ा। उस प्रकाशक के पास मेरा पहला कविता संकलन, "गाँव का खत शहर के नाम" आया। जो आजतक चर्चित संग्रहों में गिना जाता है।

'सुनील जाधव'

लेखन किसलिए करते हैं।

'लालित्य ललित'

मुझे किसी ने पूछा कि आप किस लिए लिखते हैं? मैं किस लिए लिखता हूँ, यह मुझे भी पता नहीं। लेकिन खुशी की बात यह है कि इस लोक डाउन मेरे तीन व्यग्य संग्रह आये हैं। "पांडेयजी और फेसबुक की दुनिया", "लॉकडाउन में पांडेयजी" "मजदूर कहता हैं" और यह खुशी की बात हैं कि यह किताब अमेजॉन पर अपलोड कर दी गई हैं।

आज की दुनिया में सबसे अधिक कोई संतुष्ट हैं, तो वह मैं हूँ। सबको लगता है कि लालित्य ललित क्या करते हैं? क्या खाते हैं? कौन सी चक्की का बादाम खाते है। वास्तव में मैं वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र से प्रभावित हूँ। उनकी एक ग़ज़ल है :

"जहाँ पहुँचे आप छलाँगे लगा के
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।"

मेरे व्यंग्य की इस यात्रा में लेखन में सहायक सिद्ध हुए हैं डॉ. प्रेम जनमेजय, मेरे गुरु नाटककार, कथाकार प्रताप सहगल रहे हैं। आपके पास जब सलाहकार हो तो वे आपको माँझते हैं। मेरे सलाहकार डॉ. हरीश नवल हैं। मुझे लगता है कि आपके शब्द ही आपको माँझते हैं।

"मैं सरल व्यक्ति हूँ। मुझे बातें बनाना नहीं आता। मैं आलोचक नहीं हूँ।

मैं केवल लिखता हूँ। लिखना मेरा पैशन है।"

मैंने बीकानेर में एक बार कहा था, साहित्य अकादेमी से सम्मानित लेखक मधु आचार्य आशावादी की पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर।

"शब्द मेरे पिता हैं और अनुभव मेरी माँ हैं।" इस वक्तव्य को वहाँ के सारे समाचार पत्रों ने कोट किया, तो बेहद अच्छा लगा।

मैं देश-विदेश की जब भी मन होता है, यात्रा करता हूँ। मुझे यात्रा करना पसंद है। मैं कई बार लोगों को परखता हूँ। कई बार परखने में मुझसे भूल हो जाती है। खैर कोई बात नहीं यही जीवन है। जीवन की त्रासदी है। जीवन के अनुभव हैं और अनुभव धीमे-धीमे ही मिला करते हैं।

'सुनील जाधव'

आपके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का संचयन भी देश में आपको चर्चित बना रहा है! ऐसा क्या है जो आपके संचयन चर्चा में आ जाते हैं!

'लालित्य ललित'

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में ५६ व्यंग्यकारों के संचयन चाटुकर कलवा के बाद अब देश के १२ प्रदेशों से श्रेष्ठ सक्रिय अब तक ७५ व्यंग्यकारों का संचयन इंडिया नेटबुक्स, नोयडा के डॉ. संजीव कुमार प्रकाशित कर रहे है। जिसमें बेहतरीन व्यंग्यकार है। अब इक्कीसवी सदी के १०१ व्यंग्यकारों का बीड़ा उठाया हैं। देश के व्यंग्य विधा के पाठकों के लिए एक नई व्यंग्य रचनाओं की शानदार कृति 2 अक्टूबर को मिलेगी।

'सुनील जाधव' आपके पसंदीदा व्यंग्य के अंश का पाठः

प्रसिद्ध व्यंग्य "लोकडाउन में पधारें भगवान जी!" के अंश का पाठ कर व्यंग्य के चाहनेवालों को मन्त्र मुग्ध कर दिया।

'लालित्य ललित' शुक्रिया। आपके मेहमान श्रोताओं और दर्शकों के साथ दुर्गम इलाकों के श्रोताओं ने रचना को मन से सुना, मुझे इससे बढ़िया पुरस्कार कोई दूसरा मिल ही

नहीं सकता।

'सुनील जाधव'

क्या आप मानते हैं! कि व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है!

'लालित्य ललित'

मुझे लम्बे-लम्बे व्यंग्य लिखना पसंद है। मेरा कोई भी व्यंग्य सात हजार या आठ हजार शब्दों से कम का तो कतई नहीं होता। अभी मेरा सबसे छोटा व्यंग्य लगभग साढे पांच हजार शब्दों का है। मुझे छोटा व्यंग्य लिखना ही नहीं आता कहने का तात्पर्य यह कि व्यंग्य का भविष्य बड़ा उज्ज्वल हैं आजकल व्यंग्यकार समाज की विसंगति को लेकर लिख रहें हैं। जिसका प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। लोग उसे पसंद कर रहे हैं।

'सुनील जाधव'

व्यंग्य के लिए क्या आवश्यक है?:

'लालित्य ललित'

व्यग्य में मौजूदा सत्ता पक्ष-विपक्ष नहीं होना चाहिए। डॉ.प्रेम जन्मेजय का मानना हैं कि, "लोकतान्त्रिक गणराज्य व्यवस्था में सभी बातें स्वीकार्य हैं। किसी बात में असहमति हो सकती हैं।"

किन्तु किंतु मेरा मानना हैं कि,

"व्यंग्य लिखते समय समाज की विसंगति पर प्रहार करना जरूरी है। व्यंग्य वह हथियार है, जो आपको विचलित किये बिना दूसरे पर अटैक करता हैं। जिसे आभासिक युद्ध कह सकते हैं। जिससे अच्छे भले मठाधीश ध्वस्त हो जाते हैं।"

व्यंग्य का संचयन करना इतना आसान नहीं है। इसमें दोस्त कम और दुश्मन अधिक बन जाते हैं। जो लोग मठाधीश बन चुके हैं, अब इनके ध्वस्त होने का समय आ गया है।

'सुनील जाधव'

अपनी कोई पसंदीदा कविता हमारे मित्रों के साथ साझा करना चाहेंगे!

"लड़की सब कुछ सिखाती हैं।
पंखोंवाले राजकुमार से मिलना चाहती हैं।
गोदी में खेलते कल्पित सोनू को दुलारना चाहती हैं
पिता के डर से
चुपचाप हवा कर देती है सपनों को
सीखचों में बहती ज्वाला बेटी के जिस्म से टकरा कर
सवाल करती है
बहुत से
बेटी हर उस सवाल से जूझना चाहती है
लड़की सब कुछ सीखना चाहती है।

'सुनील जाधव'

नये रचनाकरों के लिए मंच क्या कहना चाहेंगे!

'लालित्य ललित'

हमारे देश में प्रतिभा की कमी नहीं हैं। हमारा देश प्रतिभा सम्पन्न हैं। हर गाँव, कस्बा, तहसील, शहर में रचनाकार हैं। उन्हें मंच नहीं मिलता। यदि आप में प्रतिभा हैं। आपको नेशनल बुक ट्रस्ट राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंच देगा। आप हमसे जुड़िये। नेशनल बुक ट्रस्ट, हमेशा नई प्रतिभाओं का स्वागत करता आया है।

'सुनील जाधव'

आपके व्यंग्य संकलन के शीर्षक बड़े कैची होते है! क्या कारण है!

'लालित्य ललित'

शीर्षक यदि कैची हो तो लोग उसे पढ़ना पसंद करते हैं। आप मिठाई की दुकान से मिठाई खरीदेंगे जब वहाँ उजाला हो, जहाँ खुले विचार वाले और रोशनदार लोग हैं, लोग उससे जुड़ना पसंद करेंगे।

गिरिराज शरण अग्रवाल जी ने विलायती राम पांडेय को हाइलाइट किया और कहा कि उसे शक्ति दो, तब से अब तक पांडेयजी अपने काम में लगे हुए है। अब इस कुनबे का विस्तार हुआ है। इसमें विलायितीराम पांडेय, दगडू पांडेय आदि कई पात्र हैं। यह पात्र मुझसे बात करते हैं। जब मेरे पात्र मेरे साथ होते हैं, तब मुझे किसी और पात्र की

आवश्यकता नहीं। मेरे एक कथाकार ओड़िया की प्रतिभा राय से मैंने बात की तो उन्होंने बताया कि उनके पात्र उनसे बात करते हैं,

"मेरे पात्र जब मुझसे बात करते हैं, तो मैं एक्सीडेंट कर देती हूँ।"

लेकिन मेरे पात्र मेरे साथ होते हैं। मैं सजग रहता हूँ।

'सुनील जाधव'

पाठकों के लिए लेखन करते हुए क्या महसूस करते हैं!

'लालित्य ललित'

कुछ लोग पुरस्कार के लिए लिखते हैं। किन्तु मैं पाठकों के लिए लिखता हूँ। इस कारण कभी लिफ़ाफ़ा मिल जाता है। तो मैं अपनी घरवाली को दे देता हूँ। व्यंग्य लिखने से अब कुछ खर्च भी निकल जाते हैं। व्यंग्यकार को सजग रहना पढ़ता हैं। तभी वह टिक पायेगा। जो संभाला वह टिकाए जो टिका नहीं, वह बिका नहीं।

'सुनील जाधव'

क्या बालकों के लिए व्यंग्य भी व्यंग्य या हास्य कथाएँ, लिखने का प्लान किया है!

'लालित्य ललित'

मैंने हम होंगे कामयाब" बच्चों के लिए कहानी लिखी है। भविष्य में बालकों के लिए व्यंग्य लिखूँगा। अच्छा हुआ आपने याद दिलाया।

'सुनील जाधव'

नये व्यंग्यकरों के लिए संदेश देना चाहेंगे!

'लालित्य ललित'

वे मेहनत से पढ़ाई करें। कर्तव्य से दौड़े नहीं। वरिष्ठ व्यंग्यकारों का सम्मान करें। नियमित लिखते रहें। समकालीन व्यंग्य पढ़ें अवश्य। इसमें दो राय नहीं कि व्यंग्य का भविष्य उज्जवल हैं।

उसको कहा

लेखक : लालित्य ललित

तुम पर
उतना ही प्यार आता है
जितना तुम गुस्सा होती हो
चाय के सिप में
दिल की कशिश में
उतना ही स्वाद महसूस होता है
रिश्तों की तपिश का
मौसमी आशिकी का
मजेदार तो यह कि यह आंशिक नहीं
स्थायी है
मजबूत है
मैंने उसको कहा
तुम्हारे मन में
मैं बसता हूँ
आधार कार्ड की तरह
कहने लगी
तुम मेरे प्रेम का पैन कार्ड हो।।
जिसे
मैंने नहीं बदलना
जबतक सरकार का नियम न आ जाएं
मैंने उसे आश्वस्त किया
कोरोना रहेगा जबतक
सरकार रहेंगी
तबतक
अब वह खुश है
कहती है
न कहीं सरकार जाने वाली
न ही मैं
अब मैं भी खुश
उसकी हां में हां मिलाता रहा।

(पुस्तक मजदूर कहता है से)

मेरे लिए तुम्हारा होना : संस्मरण शृंखला

मेरी यादों के पहाड़ में वह खुशदिल शख्सियत : देवेन्द्र मेवाड़ी

वह दिन भला कैसे भूल सकता हूँ जब राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से मुझे मेरे सपनों को साकार होने की उस सूचना का पत्र मिला था। वह दिन था 21 अक्टूबर 2011। उसमें लिखा था 19 अक्टूबर 2011 आदरणीय श्री देवेंद्र मेवाड़ी जी, ट्रस्ट की 'विविध' पुस्तकमाला के तहत आप द्वारा लिखी पुस्तक 'मेरी यादों का पहाड़ प्रकाशनार्थ स्वीकृत की गई है। शीघ्र ही पुस्तक के संदर्भ में आपसे अनुरोध किया जाएगा। "डॉ. ललित मंडोरा, सहायक संपादक (हिंदी) पत्र में किसी डॉ. ललित मंडोरा के हस्ताक्षर थे जिन्हें मैं न जानता था न कभी उनसे मिला था। आचर्य मिश्रित खुशी के साथ मैं उस पत्र को देर तक देखता रहा और उस अपरिचित व्यक्ति डॉ. ललित मंडोरा के बारे में सोचता रहा। फिर उन्हें फोन किया। पूछा कि उनसे कब मिल सकता हूँ। वे बोले, अगले सप्ताह दीपावली की व्यस्तता रहेगी। उसके बाद किसी दिन फोन करके पता कर लें। आपको मैंने देखा भी नहीं है। अपने लेखक से मिल तो लें, कहते हुए उनके हँसने की आवाज सुनाई दी। आवाज से लगा, शायद खुशदिल इंसान हैं। उस दिन मैंने अपनी डायरी के पन्ने पर लिखा 'मेरे श्रम, मेरे लेखन की पहचान।' और, यह भी कि 'आज दोपहर बाद बुलबुल खूब तराने गाती रही, इस सर्दी की शुरुआत में।' उसी दिन मित्र, पद्मश्री डॉ. शेखर पाठक को एस.एम.एस करके यह खुशी की खबर दी क्योंकि उन्होंने फोन पर बताया था कि "वे दिल्ली आए थे और उन्हें राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष से किसी काम से मिलना था। झोले में आपकी पुस्तक 'मेरी यादों का पहाड़' की पांडुलिपि थी, उसे उन्हें यह कह कर दे आया हूँ कि पहाड़ की संस्कृति और जन-जीवन पर यह बहुत अच्छी पांडुलिपि है। वे शायद अपने संपादकों को उसे पढ़ने को देंगे।"

मैंने बुधवार 2 नवंबर को मंडोरा जी को फोन किया और बताया कि मैंने उनकी चिट्ठी के उत्तर में अपना पत्र भेज दिया है। उन्होंने जो कुछ कहा वह अनवर शऊर के शब्दों में- 'कशफी नहीं खुतूत किसी बात के लिए/तशरीफ़ लाइएगा मुलाक़ात के लिए!' बाद में मिलने के लिए एक बार फिर पूछा तो आवाज आई, जय हो! शनिवार को मिल सकते हैं। वेंकटेश्वर कॉलेज, धौला कुआँ में 'बुक बाज़ार' लगा है। वहाँ व्यंग्य पाठ का भी कार्यक्रम है। उसे भी सुनें। मुलाक़ात भी हो जाएगी।" सुन कर मन खुश हुआ कि चलो मुलाक़ात तो हो जाएगी। मैं भी तो देखूं कि कौन और कैसे हैं ये डॉ. ललित मंडोरा। शनिवार, 5 नवंबर को मैं वेंकटेश्वर कॉलेज के बुक बाज़ार में पहुँचा और यहाँ-वहाँ देख कर अनुमान लगाता रहा कि वे कौन हो सकते हैं? तभी कथाकार साथी बलराम और बाल साहित्यकार साथी रमेश तैलंग से भेंट हो गई। जाने-माने व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय भी मिल गए और कथाकार-चित्रकार राजकमल तथा मित्र प्रताप बिष्ट भी। मैंने तैलंग जी से पूछा, "डॉ. ललित मंडोरा से मिलना था। वे कहाँ हैं? कौन हैं, मैं पहचानता नहीं।"

वे बोले, "वे तो खुद अपनी पहचान हैं! भीड़ में भी वे अपनी कद-काठी से अलग पहचाने जा सकते हैं। वह देखिए, मंच की व्यवस्था कर रहे हैं। इधर ही आ रहे हैं।"

वे आए। खाते-पीते घर की लहीम-शहीम काया। मैंने अपना परिचय दिया, "मैं देवेंद्र मेवाड़ी हूँ।"

"जय हो! आपकी पांडुलिपि स्वीकृत हुई है प्रकाशन के लिए। मुझे बहुत अच्छी लगी वह। साहित्यिक कार्य है।"

फिर उन्होंने पूछा, "इसकी सॉफ्ट कॉपी तो होगी आपके पास?" मैंने कहा, "जी हाँ, कृतिदेव 010 में है हमारे पास।"

"हम शिवा फोंट का उपयोग करते हैं। कोई बात नहीं, आप भेज दीजिए। शिवा फोंट में कन्वर्ट करने की कोशिश करेंगे।" "रेखाचित्र भी हैं, मेरी बेटी ने बनाए हैं," मैंने कहा।

"उन्हें भी स्कैन करके भेज दीजिए।" वे बोले।

उसके बाद व्यंग्य पाठ शुरू हो गया। कुछ देर व्यंग्य पाठ सुनने के बाद मैं घर को लौट आया।

डॉ. ललित मंडोरा से वह मेरी पहली मुलाकात थी, उस

खुशदिल शख्सियत से। और उसी दिन इस रहस्य का भी पता लगा कि पत्र-पत्रिकाओं में हम यहाँ-वहाँ जिन डॉ. लालित्य ललित की कविताएँ और व्यंग्य लेख अक्सर पढ़ते हैं, वे भी वही डॉ. ललित मंडोरा हैं।

पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी भेज कर मैं निश्चिंत हो गया और इस बारे में अगली खबर का इंतजार करने लगा। इंतजार के उसी दौर में एक दिन देर रात किसी का फोन आया। फोन करने वाले ने पूछा, "क्या देवेंद्र मेवाड़ी बोल रहे हैं?"

"जी हाँ," मैंने कहा, "आप कौन?"

उन्होंने अपना नाम बताने के बजाय भावुक आवाज में कहा, "आपकी किताब ने मुझे बहुत भावुक कर दिया है। माँ पर लिखा अध्याय पढ़ कर बहुत सिसकता रहा।"

"कौन-सी किताब?" मैंने पूछा।

"मेरी यादों का पहाड़," उन्होंने कहा।

"वह तो अभी छपी नहीं है," मैंने कहा।

"मैं उसके प्रूफ पढ़ रहा हूँ। डॉ. ललित मंडोरा ने दिए हैं। पढ़ते-पढ़ते रह नहीं पाया, सोचा अभी अपनी बात कह दूँ, इसलिए इतनी रात को फोन कर रहा हूँ।"

"बहुत धन्यवाद। लेकिन, आप है कौन?"

"बिपिन" उन्होंने कहा और इसके साथ ही बात पूरी हो गई। फोन पर कोई बिपिन थे।

मेरे भीतर खुशी का ज्वार-सा उठा। सोचा, इसके मायने, 'मेरी यादों का पहाड़' पक्का छप रही है।

फिर 21 दिसंबर 2012 को डॉ. ललित मंडोरा का फोन आया, "मेरी यादों का पहाड़" के कवर का आर्ट वर्क पुनः भेजें। मैं आर्ट वर्क की सीडी बना कर ले गया और डॉ. मंडोरा से उनसे कार्यालय में मिला। उन्होंने आर्ट विभाग के लोगों से मेरी भेंट कराई और आर्ट वर्क समझने-समझाने की बात की। दो दिन बाद फिर डॉ. मंडोरा से मिला।

फिर आया वह ऐतिहासिक दिन, 22 फरवरी 2013, जब डॉ. मंडोरा ने फोन पर 'मेरी यादों का पहाड़' के छप जाने की सूचना और बधाई दी और दफ्तर में उनके साथ बैठे हिसार से आए डॉ. रवीन्द्र से भी बधाई दिलाई। 25 फरवरी 2013 को मैं और मेरी श्रीमती जी राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जाकर लेखकीय प्रतियाँ ले आए।

इस बीच 'मेरी यादों का पहाड़' पाठकों के पास पहुँच गई और पत्रिकाओं में उसकी समीक्षाए प्रकाशित होने का सिलसिला शुरू हो गया। 29 सितंबर 2013 को सुबह-सुबह शाहजहाँपुर में डॉ. ललित मंडोरा से फोन पर बात हुई। बोले, प्रातकालीन चाय के साथ 'दैनिक अमर उजाला' में 'मेरी यादों का पहाड़' की समीक्षा पढ़ रहा हूँ। समीक्षक है कल्लोल चक्रवर्ती। बहुत अच्छी समीक्षा लिखी है।

14 अक्टूबर को उन्होंने फोन पर यह खुशखबरी दी कि 26 अक्टूबर 2013 को कुमाऊं विश्वविद्यालय के अल्मोड़ा परिसर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की ओर से 'मेरी यादों का पहाड़' का लोकार्पण होगा। उसमें चलना है आपने।" वाह! यह मेरे लिए सचमुच बड़ी खुशी की बात थी।

इस खुशदिल अज़ीज़ इंसान से असली मुलाकात तो तब हुई जब हम लोकार्पण के लिए दिल्ली से शहर अल्मोड़ा को रवाना हुए। मंडोरा जी ने बताया कि 25 अक्टूबर को कल सुबह राजौरी गार्डन में मेट्रो स्टेशन के पीछे मिलते हैं। मैं 5:15 बजे घर से रवाना हुआ और वहाँ पहुँच गया। वहाँ से ठीक 6:30 बजे उनके साथ अल्मोड़ा को रवाना हुआ। गाड़ी के सारथी थे कोई श्री जोशी। दिल्ली से चलने के बाद रास्ते भर दुनिया भर की बातें होती रहीं और गाड़ी में डॉ. मंडोरा के ठहाके गूंजते रहे। इस बीच हम फेसबुक मित्र भी बन चुके थे। फेसबुक से और उस दिन की यात्रा में बातों-बातों में पता लगता गया कि डॉ. मंडोरा खुशदिल इंसान होने के साथ-साथ स्वादिष्ट भोजन के शौकीन और पारखी भी हैं। मैं मन ही मन डरा कि अब क्या होगा? क्योंकि डॉ. मंडोरा जितना भोजन के शौकीन हैं, मैं यात्रा में कुछ भी खाना पसंद नहीं करता हूँ। खैर, पिलखुवा आते-आते नाश्ते का वक्त हो गया। एक बड़े ढाबे में नाश्ता किया गया। मैंने भी चाय के साथ चुग्गा ले लिया। और, फिर गाड़ी हाइवे पर अल्मोड़ा को चल पड़ी। मुरादाबाद से पहले हाइवे पर शायद प्रेम ढाबे में दिन का भोजन किया गया और फिर हम आगे बढ़ चले।

हल्द्वानी, भवाली होते हुए गरम पानी पहुँचे जहाँ चाय के साथ पकौड़ों का आनंद लिया। फिर धीरे-धीरे पहाड़ की ऊँचाई चढ़ते-चढ़ते सायं 6:30 बजे अल्मोड़ा पहुँच गए।

शहर की शुरूआत में ही सेवाय होटल में रुकने की व्यवस्था थी। वहाँ पहुँच कर हाथ-मुँह धोया और अल्मोड़ा में शरद ऋतु की गुनगुनी ठंड में गरमा-गर्म चाय पी। रास्ते भर डॉ. मंडोरा से प्रकाशन जगत और साहित्य के क्षेत्र की तमाम बातें सुनते और उनके चुटकलों पर हँसते-हँसाते दूरी और समय का पता ही नहीं लगा था। रात्रि भोजन वहीं होटल में किया। देर शाम वक्ताओं में से एक, कथाकार डॉ. लक्ष्मण सिंह बटरोही भी होटल में पहुँच गए। बाकी वक्ता सुबह पहुँचने वाले थे। सुबह अल्मोड़ा के चारों ओर की पर्वतमालाएँ घने कोहरे से ढकी होने के कारण मेरा मन 'मेरी यादों के पहाड़' में भटकने लगा था। डॉ. ललित मंडोरा जल्दी तैयार होकर लोकार्पण समारोह की तैयारियों में जुट गए। उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय के अल्मोड़ा परिसर में जाकर पूरी व्यवस्था का जायजा लिया।

प्रातः ठीक 11 बजे कुमाऊँ विश्वविद्यालय के अल्मोड़ा परिसर में नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया की ओर से 'मेरी यादों का पहाड़' के लोकार्पण की शुरुआत हुई। मैंने अपने स्मृति-वन में कदमों की आहट सुन कर झाँका तो देखा कि यादों के कोहरे के बीच से निकल कर अतीत में विदा हो गई ईजा (माँ), बाज्यू, दादा, भाभी माँ और मेरे कई पितर इस अवसर पर आ खड़े हुए हैं। वर्तमान की ओर देखा तो पाया अपने तमाम मित्र, हितैशी और पाठक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संपादक डॉ. ललित मंडोरा, समाजसेवी डॉ. शमशेर बिष्ट, साहित्यकार डॉ. बटरोही, इतिहासकार डॉ. शेखर पाठक, वरिष्ठ पत्रकार डॉ. गोविंद सिंह, सेवानिवृत उच्च वन अधिकारी डॉ. जीवन सिंह मेहता के साथ-साथ स्थानीय लोगों में से भंडारी जी, बगडवाल जी, डॉ. देवसिंह पोखरिया, डॉ. शेर सिंह बिष्ट, डॉ. एस. एस. पथनी, डॉ. बिपिन शर्मा, डॉ. दिवा भट्ट, हयात सिंह रावत, उदय किरौला, हरीश बोरा, बेटी पुष्पा और शताधिक शुभाकांक्षी, पत्रकार मित्र, शिक्षक, जिज्ञासु शोधार्थी और विद्यार्थी वहाँ उपस्थित थे।

डॉ. ललित मंडोरा ने अपने वक्तव्य से लोकार्पण समारोह का शुभारंभ किया और 'मेरी यादों का पहाड़' के बारे में वहाँ उपस्थित लोगों को बताया कि यह पहाड़ की संस्कृति पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। उसके बाद डॉ. बटरोही, डॉ. शेखर पाठक, डॉ. शमशेर बिष्ट, डॉ. गोविद सिंह, मेहता जी, डॉ. पोखरिया अपने शब्दों में पुस्तक की विस्तृत व्याख्या करते रहे। उन्होंने उद्गम से लेकर पहाड़ों के बीच कल-कल, छल-छल बहती मेरी यादों की इस नदी को अविरल बहने देने में इसका साथ दिया। वर्तमान से अतीत, और अतीत से वर्तमान तक की एक अद्भुत यात्रा थी वह। एक अनोखा अनुभव। कार्यक्रम के बाद अभी आधा दिन शेष था। इसलिए हम सारथी के साथ पहले पहाड़ के न्याय के लोक देवता चितई के गोल्ल मंदिर और फिर प्राचीन मंदिरों की नगरी जागेश्वर धाम तक हो आए। जागेश्वर जाते समय मैंने मंडोरा जी को बताया कि सड़क के बाईं ओर नीचे बाड़ेछीना गाँव है जहाँ प्रसिद्ध साहित्यकार शैलेष मटियानी जी का जन्म हुआ। शाम का अंधेरा घिर आया था। अल्मोड़ा से चलने से पहले अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के साथी बिपिन शर्मा ने बहुत जोर देकर रात के खाने पर आमंत्रि करते हुए कहा कि आप लोगों को आना ही होगा। उनका प्यार देखकर रात का खाना उनके घर पर खाया जहाँ से ऊपर पहाड़ पर फैले अल्मोड़ा शहर की रोशनियाँ तारों भरे आकाश की तरह जगमगा रही थीं। उसे देखकर मुझे गुलज़ार की कविता की लाइनें याद आ रही थी :

इतना ज़री का काम नज़र आता है
फ़लक पर तारों का
जैसे रात में प्लेन से रोशन शहर दिखाई देते हैं!

उसी जगमगाते आसमान को देखकर होटल में लौटे। सुबह ठीक 7:30 बजे अल्मोड़ा से दिल्ली की ओर कूच किया और फिर वह पूरा दिन भी खुशदिल मंडोरा जी की संगत में बीता। रात हो गई थी। दिल्ली पहुँच कर उनसे विदा ली और मन ही मन में हैदर अली आतिश का शेर गुनगुनाता रहा किः "अब मुलाक़ात हुई है तो मुलाक़ात रहे/न मुलाक़ात थी जब तक कि मुलाक़ात न थी।" गर्ज़ यह कि अब गाहे-बगाहे मुलाक़ातें जारी हैं और उनसे साहित्यिक गप-शप चलती रहती है। डॉ. ललित मंडोरा के सक्रिय रचनात्मक तथा दीर्घ जीवन के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ!

लालित्य ललित एक मस्तमौला बहुआयामी व्यक्तित्व!

तेजेन्द्र शर्मा

लालित्य ललित ने इसी साल जनवरी माह में अपना पचासवां जन्मदिन मनाया है। यह जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है और इसी वर्ष उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक विशेषांक आना उसकी उपलब्धियों को रेखांकित करना होगा। लालित्य ललित ने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य की शिक्षा ली है। यानि कि उसकी नींव गहरी और मज़बूत है। उस पर ख़ास बात यह है कि अपने शोध के लिये भी अपने समय के हिसाब से नया विषय चुना 'साठोत्तरी व्यंग्य लेखन'। यानि कि पांडेय जी के बीज तो उसी समय पड़ गये थे जब लालित्य ललित पढ़ाई कर रहे था। लालित्य ललित का व्यक्तित्व भी बहु-आयामी है। दिल्ली में हर वर्ष आयोजित किये जाने वाले विश्व पुस्तक मेले का चेहरा बन कर उभरा है लालित्य। अपने काम को इतने प्रोफ़ेशनल ढंग से अंजाम देता है कि कई बार तो ईर्ष्या भी होने लगती है कि यह इन्सान कभी थकता क्यों नहीं।

पुस्तक मेले में आने वाले लगभग हर साहित्यकार, पत्रकार, कवि को लालित्य पहले नाम से पहचानता है। एक अच्छा मेज़बान भी है। सबके साथ खड़ा होकर फ़ोटो खिंचवाता है और फिर कुछ ही पलों में वो फशेटो फशेसबुक पर पोस्ट हो चुकी होती है। स्टॉल न. 12, के सबसे लोकप्रिय चेहरे पर एक स्थाई मुस्कान दिखाई देती है।

जहाँ एक तरफश लालित्य अपने जीवन की स्वर्ण जयन्ती मना रहा है, वहीं उसका नेशनल बुक ट्रस्ट का साथ भी रजत जयन्ती मना चुका है। यानि कि लालित्य नेशनल बुक ट्रस्ट के साथ पच्चीस सालों से काम कर रहा है।

लालित्य फशेसबुक का इस्तेमाल बहुत निपुणता से करता है। उसकी पोस्ट हमेशा क्रिस्प होती है और वह समझता है कि फेशसबुक का इस्तेमाल नेशनल बुक ट्रस्ट के साथ-साथ निजी विज्ञापन के लिये कैसे किया जा सकता है। उसकी फ़ेसबुक पोस्ट में भी व्यंग्य का पुट महसूस किया जा सकता है।

भोजन का आनन्द उठाना लालित्य ललित का प्रिय शगल है। जब कभी किसी ऑफ़ीशियल दौरे पर जाता है तो उस शहर के किसी ठेले पर खड़ा होकर वहाँ के विशेष व्यंजनों का आनन्द तो उठाता ही है, साथ ही साथ फ़ेसबुक पर उसकी फशेटो भी लगा देता है और एक बच्चे की तरह आन्नदित होकर सभी फ़ेसबुक मित्रों से अपनी ख़ुशी साझा करता है।

और फिर यदि घर में है तो राजेश्वरी जो भी नाश्ता या लंच बनाती है, उसका आनन्द सभी फ़ेसबुक मित्र उठा लेते हैं। चाहे गोभी का परांठा हो या इडलियाँ, पोहा, जलेबी हो या फिर चाट पकौड़ी लालित्य ललित फ़ोटो सबकी लगाता है और ख़ुशी बाँटता चलता है।

कई बार तो केवल मज़ा लेने के लिये ही सुबह-सुबह फ़ेसबुक पर पोस्ट कर देता है, 'बाज़ार में गोलगप्पे और आलू की टिक्की किस के मोहल्ले में मिल रही है! बताओ तो ज़रा।'

लालित्य की मित्रता अपने से बड़ों से भी उतनी ही है जितनी कि अपनों से छोटों से। युवा साहित्यकार उससे मिलकर ख़ुश होते हैं तो प्रताप सहगल, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल जैसे वरिष्ठ साहित्यकार भी लालित्य का प्रेम पाकर प्रसन्नचित दिखाई देते हैं।

लालित्य ललित ने अपने व्यंग्यों के लिये कुछ ख़ास किस्म के चरित्र पैदा कर लिये हैं। लपकूराम, राधेलाल शर्मा, रामखेलावन, रामप्यारी, चिलमन, असन्तुष्ट कुमार, दगड़ू पांडेय, गुलफ़ाम, सतबीर, देविका गजोधर, मनसुखराम, उसके व्यंग्यों में लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते रहते हैं। उसके चरित्रों को यदि कोई आलोचक खोजबीनी निगाह से

पढ़ने का प्रयास करे तो उसे असली जीवन के किरदारों को पहचानने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। ये सभी लोग लालित्य ललित के आस-पास के लोग हैं जो समय-समय पर अलग-अलग व्यंग्यों में आते-जाते रहते हैं।

निरंतरता लालित्य ललित के लेखन की एक प्रमुख विशेषता है। वह इतना रेगुलरली लिखता है कि कई बार तो हैरानी होने लगती है। अंग्रेज़ी में एक कहावत है ऐट दि ड्रॉप ऑफ़, हैट... यानि कि लालित्य इतने कम समय में कविता या व्यंग्य लिख लेता है जिसका अंदाज़ लगाना भी मुश्किल है। उसे अपनी अतुकाँत कविताएँ भी याद हो जाती हैं और वो उन्हें एक कहानी की तरह मुँहज़बानी सुना भी देता है... पूरे ड्रामाई अन्दाज़ में।

लालित्य का व्यंग्य गुदगुदाने वाला भी होता है तो वहीं बुरी तरह से चुभने वाला नश्तर भी हो सकता है। अपनी एक फ़ेसबुक पोस्ट में लालित्य लिखता है, 'कुछ लोग दूसरे के सुख से इत्ता दुखी होते हैं कि उनको मुँह की बवासीर हो जाती है।' यह वक्तव्य जिनके बारे में दिया गया है, वे सब इसे पढ़ेंगे भी और दुखी भी होंगे। मगर कुछ कह नहीं पाएंगे क्योंकि यह तो एक जनरल पोस्ट है जो प्रवृत्ति की बात कर रही है, किसी एक व्यक्ति पर केन्द्रित व्यंग्य नहीं है।

लालित्य ललित अपने आस-पास हो रही घटनाओं के प्रति ख़ासा सचेत रहता है। अपने हाल ही के व्यंग्य में वे लद्दाख में चीन और भारत की सेना के संघर्ष को भी अपना विषय बनाता है। व्यंग्य का शीर्षक है 'पांडेय जी चैनल और अंतरराष्ट्रीय सीमा' इतने गंभीर मुद्दे पर पहले तो व्यंग्यात्मक क़लम चलाना और फिर अचानक ही उसमें नया ट्विस्ट पैदा कर देना काबिले तारीफ़ बात है।... यह लालित्य की विशेषता है, "ई-पुस्तक की बात शुरू की और जनाब कहाँ से कहाँ पहुँच गए। वही हुआ, और दरीबा के दही भल्ले की बात शुरू की और चाँदनी चौक की आलू की टिक्की पर पहुँच गए। बिना खर्चा किए आभासित स्वाद लेने में वह बात नहीं आती जब तक आपकी उँगलियाँ चटनी में डूबी न हों और गोलगप्पे का पानी आपकी जिव्हा को तीखा और चटपटा न कर दें। अपनी कविताओं में भी लालित्य ललित ज़िन्दगी की ठोस हक़ीकत को पकड़े रखता है। अपनी कविता "अब लिखी नहीं जाएगी प्रेम कविताएँ में लालित्य ललित कहता है:

"उदास रहने लगी हैं, लड़कियाँ
वे नहीं जीना चाहतीं, सपनों को
जब पता है, उन्हें न तो पूरा होना है
तो ऐसे सपनों का क्या फ़ायदा!, वे जीना चाहती हैं
मौजूदा समय की शक्ति को पहचानते हुए।

अपना पचासवां जन्मदिन मना लेने के बाद लालित्य ललित को समझना होगा कि वह अब आहिस्ता-आहिस्ता युवा व्यंग्यकार से वरिष्ठ व्यंग्यकार की श्रेणी के निकट आ रहा है। अब उसके लेखन और व्यक्तित्व को अधिक कड़े ढंग से नापा और तोला जाएगा। मगर उसे अपने मस्त मौलापन को बनाए रखना होगा।

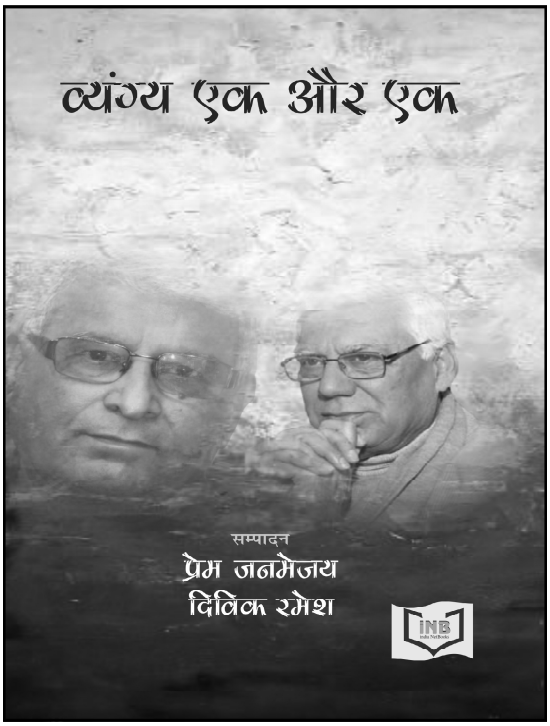

विलक्षण प्रतिभा वाला व्यक्तित्व

सुधा ओम ढींगरा

ललित भाई से मेरी पहचान बहुत पुरानी नहीं बस कुछ बरस पहले ही हम लोग मिले हैं। पर दोस्ती के लिए वर्ष नहीं 'क्लिक' चाहिए होता है। यह 'क्लिक' हर व्यक्ति में एक सा काम नहीं करता। अलग-अलग व्यक्तित्व, अलग-अलग स्वभाव, कभी समानता में दोस्ती होती है, कभी असमानता में दोस्ती होती है। ललित भाई के साथ मेरी दोस्ती का 'क्लिक' कैसे हुआ! अभी आगे बताती हूँ...। फेसबुक मित्र तो हम दोनों बहुत पहले से थे। एक दूसरे की पोस्ट खूब पढ़ा करते थे। मुझे लालित्य ललित की कविताएँ बहुत अच्छी लगती हैं, छंद मुक्त कविताएँ। रोज़मर्रा के संघर्ष और दुःख सुख को झेलतीं जीवन से भरपूर हर रोज़ सुबह उनकी एक कविता पढ़ने को मिलती। ललित भाई उन दिनों व्यंग्य नहीं लिखते थे। जितने आजकल लिखते हैं। पर व्यक्तिगत तौर पर एक भारत यात्रा के दौरान हम प्रेम जनमेजय जी के घर पर मिले। जब भी मैं भारत जाती हूँ, प्रेम भाई अपने घर एक गोष्ठी ज़रूर रखते हैं, वहीं पर मैं नए-पुराने साहित्यिक मित्रों से मिल लेती हूँ। प्रेम जनमेजय का घर मेरा मायका है। उसी गोष्ठी में मैंने ललित जी को अपनी तरह ही खुल कर हँसते पाया, बड़ा सहज-सा व्यक्तित्व, बस एक दोस्त के रूप में छोटे भाई से नज़र आए। लगा दोस्ती खूब निभेगी। फेसबुक से ही राजेश्वरी भाभी, संस्कृति और सूर्योदय को मैं जानती थी। तय किया कि उन्हें भी मिला जाएँ बस मैं और भाई पंकज सुबीर चले गए परिवार से मिलने। सारे परिवार ने बहुत मान दिया। सभी बेहद सरल हैं। सच में फिश्दा हो गई। एक और प्यारा-सा परिवार मिला। हम परदेसी तो प्यार के भूखे होते हैं। उन्हीं दिनों राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की तरफ से मैं एक संग्रह 'इतर' (प्रवासी महिला कथाकारों की कहानियाँ) का चयन, संपादन और भूमिका लिख रही थी, ललित जी ने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया। उस पूरे प्रॉजेक्ट के दौरान वे बहुत ही मस्तमौला व्यक्ति लगे, इज़ी गोइंग पर्सन।

हिन्दी चेतना के दिनों में मैंने प्रेम जनमेजय पर एक विशेषांक निकाला था। हिन्दी चेतना छोड़ने के बाद उसे पुस्तक रूप देने की इच्छा बलवती हुई। तब मैंने और लालित्य ललित ने प्रेम जनमेजय पर सार्थक व्यंग्य के यात्रीः प्रेम जनमेजय किताब का संपादन किया। सामग्री को पुस्तक का स्वरूप देने तक एक बार भी उन्होंने टोका नहीं रोका नहीं। हर कदम पर साथ खड़े रहे, हर जगह प्रोत्साहित किया। दो प्रोजैक्ट्स पर काम किया, कहीं अहम् आड़े नहीं आया, कहीं बड़प्पन नहीं दिखाया। बस कहकहे के साथ हँसी-खुशी सेए हमेशा बड़ी आत्मीयता और सम्मान से बात की। मेरी मित्रता सहज, सरल, सादा लोगों से स्वाभिकता हो जाती है, यही 'क्लिक' है। कईयों से मैं बरसों से मिल रही हूँ, लेकिन उनकी मित्रता बस बड़ी औपचारिक सी मित्रता है। लालित्य जी के साथ मैं इसलिए कहूँगी कि मेरी मित्रता है कि उनका स्वभाव व्यवहार मुझे अच्छा लगता है। बड़े परिवारिक व्यक्ति हैं मैं भी वैसी ही हूँ। खूब काम में व्यस्त रहते हैं और मुझे ऐसे लोग बहुत पसंद है। पिछले दिनों मेरी उनसे बात हुई तो मैंने हँसते हुए पूछा भाई, इतना कैसे लिख लेते हैं! तो वे भी उसी तरह हँसते हुए बोले कि आपको पूछना यह चाहिए, कि मैं कब नहीं लिखता! यह बहुत सम्मानीय बात है कि उन्होंने लेखन की निरंतरता को कायम रखा हुआ है। अनगिनत कविता संग्रह और व्यंग्य संग्रह (गिनूँगी नहीं माँ कहती थीं, गिनने से नज़र लगती है) लालित्य ललित के आ चुके हैं। मुझे उनकी एक और बात बहुत अच्छी लगती है कि किसी भी स्थिति में उन्हें खड़ा कर दिया जाए, वे उस क्षण का, उन परिस्थितियों का, उन हालात का बहुत ही आनंद मानते हैं, बहुत एन्जॉय

करते हैं। यह विलक्षण प्रतिभा है, जो हर किसी में नहीं होती। पुस्तक मेले के दिनों में भी मैं उनका यह रूप देख चुकी हूँ।

लालित्य भाई को खाने का बहुत शौक है, और वे फेसबुक पर अपने इस शौक का इज़हार करते हैं, किसका मन ललचाएगा, बिलकुल ध्यान नहीं देते। प्लेट में पड़ा तरह-तरह का भोजन दिखला कर खाते हैं। मेरी जैसी चटोरी के लिए तो अन्याय होता है। बस मैं भी अपने यहाँ नुक्कड़ की हॉट ब्रेड कैफ़े (चाट पापड़ी भंडार) पर जाकर वह खाती हूँ। एक दो बार कहा भी, मैंने भी नुक्कड़ की दुकान से जाकर खाया। दोनों तरफ से कहकहा लगा...। देखिए, आपको बता दिया है पर हम दोनों बहन भाई के खाने को नज़र मत लगा दीजियेगा। आगे से बताएँगे नहीं।

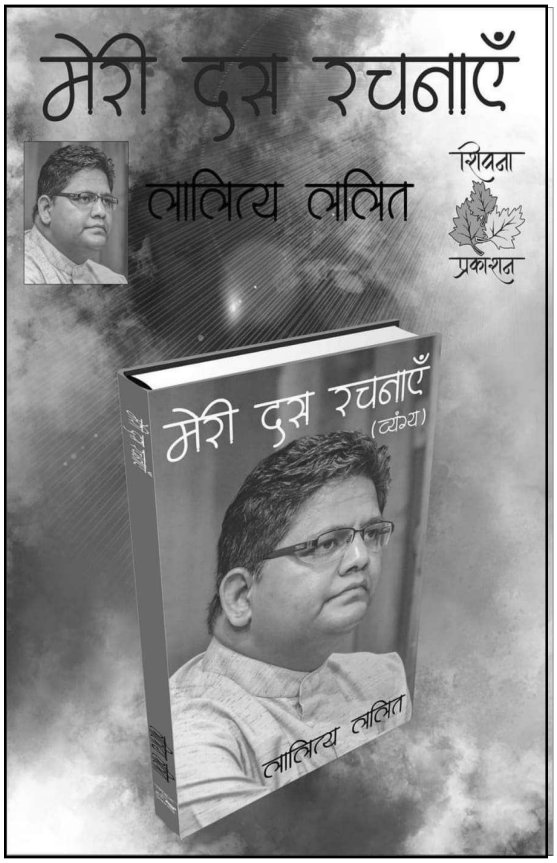

सब्जी वाला मुसद्दी

लेखक : लालित्य ललित

न प्रेम
न मृत्यु
न दुश्मनी
न ईर्ष्या
न मुनाफ़ा
न इश्क़
न चोरी
न सीना ज़ोरी
कुछ भी तो नहीं
कुछ अगर रुके है तो जरूरी होंगे न
कोरोना को प्रणाम
जिसने बांध दिया
हमें घर के भीतर
वरना हम भी आदमी काम के थे
खरबूजे ले लो
तरबूज ले लो
मीठे है बाबू
चख के ले लो
ये मुसद्दी के है बाबू
खेतों से लाया हूँ
इश्क़-ए-प्यार बाबू
आजा ओ बाबू
करा दो बोनी बाबू
पर बाबू चिल्लाता रहा
लोग सोते रहे
घरों में
मुसद्दी को यह नहीं पता था
आज सन्डे है
महानगर देर तक सोते है
बाबू बनाम मुसद्दी आवाज लगाता रहा
भीतर के कमरे में
सोना-मोना करवटें बदलते रहें।

(मजदूर कहता है पुस्तक से)

एक अपना सा चेहरा

सुरेश सेठ

ललित मंडोरा, लालित्य ललित और विलायतीराम पांडेय। एक कृतिकार, तीन चेहरे। तीनों चेहरों से भरपूर वाकफियत है मेरी। उसका पहला और बाद का प्रभाव एक ही है। अगर आपने इसके साथ कोई कोण नहीं रखा, तो इससे ट्यूनिंग हो सकती है। ललित मंडोरा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का संपादक।

अपने मुख्य संपादक की जी भरकर इज्जत करने वाला और अपने काम को डूबकर चाहने वाला। और शहर शहर के लेखकों पाठकों को न्यास की पुस्तकों से जोड़ने का संकल्प है। मेरा न्यास की इन चेष्टाओं से परिचय पुराना है। अरविंद कुमार, बलदवे सिंह बद्दन, और ललित मंडोरा। परन्तु इसकी नौकरी में मोबाइल, फेसबुक और व्हाट्सएप का भरपूर इस्तेमाल।

गोष्ठी में ही बैठे-बैठे उसकी रपट टंकित कर फेसबुक पर डालना...व्हाट्सएप पर संवाद में जुटना।

मोबाइल ललित का इतना बड़ा हथियार है उसके पल पल की खबर दोस्तों को रहती है और उससे ही नहीं, उसके मित्रों और उसके परिवार से भी दोस्तों के स्निग्ध संबंध जुड़ जाते हैं।

ये दोस्त, जालंधर, जयपुर से लेकर छत्तीसगढ़ तक फैले हैं, जो अपने दिल की मीठी खबर हर दिन एक दूसरे को देते हैं। क्या लिखा ही नहीं, क्या खाया और पीया भी, जिन्दगी को चस्के से कैसे जिया जा सकता है, यह ललित के पोस्ट आपको बताते हैं।

पोस्ट अलग-अलग शहरों के भोजन पथप्रदर्शक ही नहीं, इन भोज्य पदार्थों में लार टपकाते चस्के भी भर देती हैं। मंटो खुशवंत, और खुशवंत से रविन्द्र कालिया तक से दारू और शराब की महक साहित्य में खूब स्थापित हुई है लेकिन जलेबी, रबड़ी और चाट, चाय और लस्सी की महिमा ललित ने ही अपने पोस्टों में बखानी है। रविन्द्र कालिया ने लिखी 'गालिब हुई शराब' खुदा न करे ललित को भी अपने वे व्यंजन कभी छोड़ने लगे, जो उस जैसे साधारण आदमियों को पढ़ने से ही छप्पन भोग का अहसास देते हैं।

हिन्दी साहित्यकारों से रसरंजक की अपनी परम्परा है जो कामजोशी से अलग ध्वनि देती है। लेकिन ललित की पहली मौलिक देव साहित्य के खिलंदड़ेपन तो यह है कि उसने भोजनभट्ट होना भी एक सुप्रिय सुपाच्य अवान्तर प्रसंग के रूप में स्थापित कर दिया।

आप पूछेंगे अवान्तर प्रसंग कब तक? अब मुख्य प्रसंग पर भी आ जाइये तो उसका मुख्य प्रसंग है, उसके लेखक में से उभरता हुआ विलायती राम पांडेय का चुभलाता हुआ

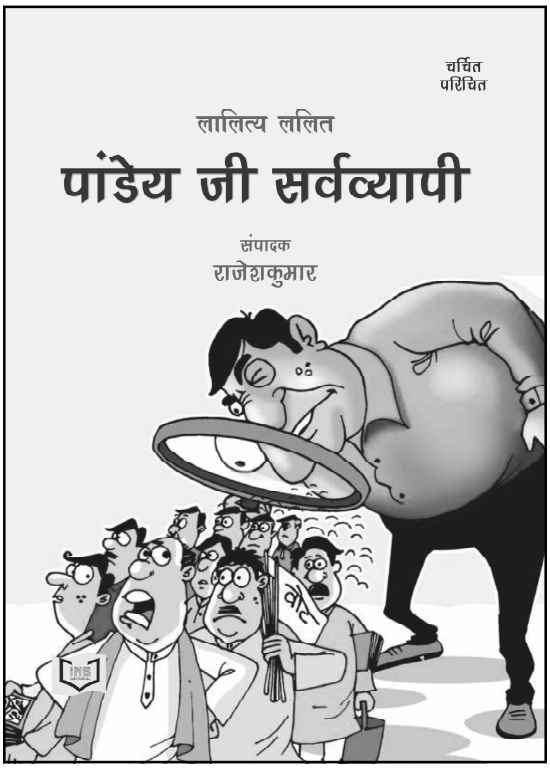

स्वर जो दैनिक जीवन की विसंगतियों विशेषताओं, उत्पीड़न, अन्याय, से अस्वीकृति की मुद्रा में टकरा जाने का साहस करता है। ललित की महारत है कि वह मोबाइल पर सीधे लिखकर इन विसंगतियों से टकरा सकता है। उसका यह टकराव लगभग रोज होता है, कभी व्यंग्य आलेख से और कभी कविताओं से।

रोज उसके रचनाकर्म का सामना शॉर्टकट संस्कृति में निष्णात हथेली पर सरसों जमाने, पल भर में सफलता की मशाल जलाने वाले, और साहित्य को लेखन कक्ष से निकाल कर देश-देश में कोलम्बस की तरह अपने व्यक्तित्व को आरती बनाने वाले लपकूरामों से होता है।

अपने पीछे अनुयायियों की भीड़ जुटाने, और प्रशंसकों को अनुचर बनाने के इस चक्रव्यूह को पहचानता है। उनके नकाब चाहे विनम्रता के हों या के भाषण के हों या संभाषण के इनाम के हो या इकराम के। उसका विलायती राम पांडेय किसी अभिमन्यु की तरह यह चक्रव्यूह भेदने को जुटा रहता है। कितने नकाब वह उतार पाया? इसकी खबर तो उसे ही होगी।

लेकिन इस अभिमन्यु को लेकर संघर्ष के महारथियों ने मारा नहीं अभी तक, इसकी खबर मुझे मिलती रहती है, जबकि पिछले दिनों उसके छः व्यंग्य संग्रहों का विमोचन एक साथ हो गया।

कविता को कारागर बनाने का संकल्प भी इधर लिखी उसकी कविताओं में नजर आने लगा है। पहले उनमें से तत्कालिक प्रक्रिया की सुवास आती थी। एक ताजारम कलम अपने ताजा दम पाठक बटोर लेती थी। लेकिन अब अपने परिवेश, उसमें से उभरते आक्रोश अन्याय, विसंगत विषमताओं को संज्ञान भी वे लेने लगी है।

धीरे-धीरे वह और भी सार्थक और परेशान करने वाली बनने लगी हैं। इधर ललित का लेखन पढ़ने के लिए मजबूर करने के बाद पाठक को गुस्से से भी भरने लगा है। यह उसकी लेखन यात्रा का नया मील का पत्थर है। व्यक्ति रूप में ललित यारों का यार, और जिसे पसन्द करे उसे अगाध सम्मान देने वाला व्यक्ति है। ऐसे लोगों के बारे में वह उनकी पीठ पीछे न गलत कहता है न गलत सुनता है। हाँ जो उसकी नजर से उतर जाए उसका प्रवेश उसकी डायरी में पुनः नहीं हो पाता, चाहे वह चाश्नी भरे कितने उपक्रम कर ले।

ललित मुँहफट की हद तक दबंग है। यह उसे पसन्द करने का मेरे पास अतिरिक्त कारण है। मेरा विचार है अगर उसे रचकाकर्म के चिड़ियाघर में छोड़ दिया जाए, तो वह कभी सियारों, लक्कड़बघों और लूमड़ों के कक्षों के पास रुकना पसन्द नहीं करेगा।

एक कहका मार कर वह आगे बढ़ जाएगा। आखिरकार आपने पूछा मेरे उसके साथ कैसे सम्बन्ध हैं। जी, न दोस्त के हैं न दुश्मन के, मुझे वह बिलकुल अपने छोटे भाई सा लगता है। या वैसा ही, जैसा मैं अपनी जवानी में था।

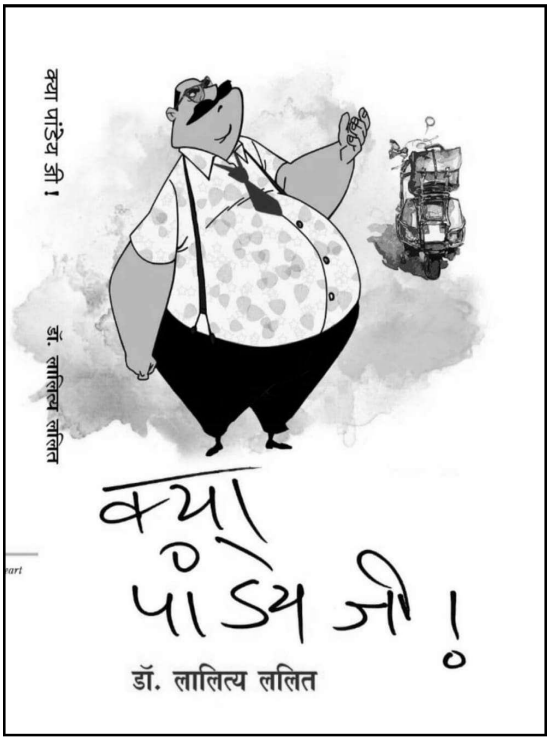

राजेश्वरी के मन की बातें

राजेश्वरी मंडोरा

पहली बार ललित जी से मिलना हुआ तब मन में बहुत हसीन सपने थे जो हर लड़की देखती है। देखने की रस्म हुई और पता नहीं कब पिताजी ने मेरी लाइफ ओके कर दी। घरवालों ने एक बार भी पसंद-नापसंद पूछने की जरूरत भी न समझी। हमने भी परिवार की रज़ा को अपनी रज़ा बना ली। सपने मैं शुरू से ही कम देखती हूँ। बस जी हो गई शादी।

होने वाले पति से अपेक्षाएँ किसकी नहीं होतीं। मेरी यही अपेक्षाएँ थी कि भावनाओं की कद्र करने वाला हो, सम्मान करने वाला हो।

जब ललित मुझे देखने आए, वही घिसा पिटा प्रश्न था कि खाना बनाना आता है? मैंने भी हामी भर दी। जनाब ने पूछा, 'कढ़ी बनानी आती है। मैं चारों खाने चित्त थी। बस अगले ही दिन कढ़ी बनाना सीखा।

हमारी शादी के समय एक गाना आया था।

घर से निकलते ही,
कुछ दूर चलते ही,
रस्ते में है उसका घर।

यह हम दोनों पर फिट होता था, क्योंकि उस समय मेरे घर के पास ही ललित जी का ग्रीन पार्क वाला ऑफिस था।

ललित जी की खाने की आदतों ने पता नहीं मुझे कब कुशल रसोइया बना दिया। नई-नई शादी हुई और जनाब खाने के इतने शौकीन कि मैं भी रोज नई-नई डिश बनाकर खिलाने लगी और उनके दिल पर राज करने लगी। जो नहीं भी आता था, बनाना सीखती थी।

व्यंजन बनाना कभी मेरा शौक नहीं रहा। शादी से पहले कभी किचन में काम करना पसंद नहीं था और आज हमसे कोई भी नवरत्न बनवा लो। पतिदेव खाने के शौकीन हों और बहुत तारीफ भी करने वाले हों तो व्यंजन बनाने का मज़ा

दोगुना हो जाता है। ललित ऐसे ही हैं। कुशल गृहणी बनाने में ललित जी का बहुत बड़ा हाथ है।

ललित जी इतने फरमाइशी हैं कि कभी-कभी मन नहीं होता उनकी फरमाइश पूरी करने का। जनाब गुस्से में ऐसे देखते हैं जैसे हमने कितना बड़ा गुनाह किया हो। पर ललित जी की अच्छी आदत, यह भी है उनकी फरमाइश का अगर बेमन से भी बना दूँ, बहुत खुश होकर खाते हैं।

मैं कभी नहीं भूल सकती। ललित जी ऑफिस टूर पर गए थे और मेरी मम्मी का निधन हो गया था। ऐसी खबर और वो भी अपनी माँ की! सुबह 6 बजे का समय था। मैंने अपने आप को संभाला। ससुर जी को चाय बनाकर दी और

बेटी संस्कृति को लेकर निकल पड़ी। ऑटो रिक्शा का इंतजार कर रही थी। और कोई जाने को तैयार न था। आँखों में आँसू दबाए माँ बेटी खड़े थे, तभी किसी जानकार ने इतनी सुबह बाहर खड़े देखा तो कारण पूछा। आँखों से आँसू हर-हर बहने लगे। फिर उन्होंने मुझे ऑटो रिक्शा करा कर दिया। ऐसे कठिन समय में ललित मेरे साथ नहीं थे, इस बात को मैं कभी नहीं भूलूँगी।

रोज़ फरमाइशी खाना बनाती रहो और हाँ में हाँ मिलाती रहो तो तुम रानी से कम नहीं। तबियत खराब हो तब भी खाना बनाओ तो खाने की तारीफ होती है। तबियत पूछने का तो दूर-दूर तक ख्याल नहीं रहता। पिता होने का फर्ज तो सभी निभाते हैं, पर मजाल है जो कभी किताब खोलकर यह कह दें कि बच्चों आओ आज मैं पढ़ाता हूँ।

पांडेय जी क्या बने मेरे हँसते खेलते परिवार में घुन लग गया। पागल की तरह बोलते रहो, टीवी चल रहा है या बंद है। लगे हैं अपनी दुनिया में। चाहे वह गजोधर हो या रामखेलावन मेरा कोई इन्ट्रेस्ट नहीं यह सब जानने का, क्योंकि मैं अपनी दुनिया में बहुत खुश हूँ। मेरी दुनिया मैं, मेरा पति और मेरे बच्चे हैं।

उनको पांडेय जी बनना पसंद है, बने रहें। पर परिवार को तो टाइम दें। उम्र के साथ दिल सॉफ्ट हो जाता है, पर पांडेय जी जब से बने हैं हमेशा गुर्राते रहते हैं। फिर भी मैं खुश हूँए क्योंकि लिखना उनकी जिंदगी है। विचारों से हम दोनों एक दूसरे से कोसों दूर हैं पर ईश्वर की कृपा मैं सिर माथे रखती हूँ।

सब कुछ देते हैं ललित जी। हर इच्छा पूरी करते हैं। और मैं सुखी भी हूँ। फिर भी एक कसक हमेशा बनी रहती है मुझे समय नहीं देते। पांडेय जी जब से बने सारी घर-बाहर की जिम्मेदारी मेरे सिर लाद दी है। आप कहेंगे कौन सी बात पर गुस्सा आता है? एक बात हो तो बताऊँ! पर फिर भी ईश्वर का धन्यवाद करती हूँ। उसने जो दिया है, बहुत दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जब तक कविता लिखते थे तब तो फिर भी परिवार के नज़दीक थे। अब तो उनकी अलग ही दुनिया है। कुछ साल पहले ललित बहुत मददगार और प्यार करने वाले पति थे। अब तो दोस्तों, अपनी किताबों और अपनी लेखनी को प्यार करते हैं। जब मैं अलमारी साफ करती थी, स्टूल पर चढ़कर मुझे बच्चे की तरह गोदी में भरकर नीचे उतार देते थे।

कहीं घूमने जाने के लिए एक इशारा करना पड़ता था, जनाब तैयार रहते थे। और अब...पर अपनी किताब लेने या देने जाना हो तो घोड़े की तरह भागते हैं। जिस आजादी के लिए हर औरत तरसती है मेरे परिवार ने मुझे वह आजादी और प्यार दिया है। शायद यह मेरी सेवा का ही फल है।

एक और किस्सा

घर बनने का फैसला हुआ। तीन भाई हैं ललित जी। अब झगड़ा यह था कि कौन, कौन सा फ्लोर लेगा। मैंने टॉप फ्लोर की फरमाइश रखी। सब राजी थे। नहीं राजी थे तो ससुर जी, क्योंकि वह किसी और बहू बेटे के साथ रहने को तैयार न थे। और वह टॉप फ्लोर पर रहना नहीं चाहते थे। मुझे यह कहने लगे कि अगर तुम ग्राउंड फ्लोर नहीं लोगी तो मैं भी किसी और के साथ रहने वाला नहीं हूँ। ओल्ड ऐज होम चला जाऊँगा। मरती क्या न करती। उनकी मर्जी से आज ग्राउंड फ्लोर पर रह रही हूँ और टॉप फ्लोर कोई बाहर का बंदा ले गया।

एक और किस्सा

जनाब ऑफिस के टूर से बाहर गए थे। बेटी संस्कृति बीमार पड़ गई। उसे बालाजी अस्पताल दिखाने ले गई। डॉ. ने हालत देखकर एडमिट करने को कहा। एडमिट का नाम सुनते ही मैं सफेद पड़ गई और मेरी ऑखों में आंसू भर आए। पर मैंने अपने आपको संभाला और एडमिट करने की तैयारी में लग गई। जब उन्होंने सब फार्म भरवा लिए तो 20,000 रुपये की डिमँड रखी। मेरे पास 5000 रुपये थे। संस्कृति की ताई जी को फोन किया। उनका जवाब था कुछ भी कर सकती हूँ, पैसे नहीं दे पाऊँगी। खैर, पास के एक दोस्त को मैंने फोन किया। मेरी स्कूली दोस्त पैसे व मेरे लिए

नाश्ता लेकर अस्पताल आई। जब ललित जी को पता चला तो ललित जी ने पांच मिनट में किसी के द्वारा पैसे अस्पताल भिजवाए थे। फिर फोन पर जब संस्कृति और ललित की बात हुई दोनों खूब रोये थे। और ललित जी ने वायदा किया

कि अब लम्बे टूर पर नहीं जाऊँगा। परिवार सफर करता है। मुझे ललित जी के लिखने से कोई दिक्कत नहीं। खूब लिखें। खूब किताबें छपें। खूब यश मिले उनको। बस मुझे और अपने परिवार को समय दें। बाहरी दुनिया में इतना खो गए हैं कि परिवार बिसरा दिया है। कब तक मौन रहूँ मैं। अब नहीं होता।

परिवार अच्छा होना।

इच्छाओं की पूर्ति होना।

रोज़ एकसा जीवन जीना।

क्या यही जीवन है।

शायद यही जीवन है।

सबको बदलना चाहते हैं। नहीं बदलना चाहते तो स्वयं।

कॉम्परोमाइज़, कॉम्परोमाइज़, कॉम्परोमाइज़। क्या यही जीवन है।

ललित जी के पास इतना मसाला नहीं होगा सर जितना मेरे पास है। किताब उन पर नहीं मुझ पर निकलनी चाहिए।

गाड़ी का किस्सा

जनाब दो बार गाड़ी बदल चुके हैं। और दोनों बार वैगन आर ही ली। तीसरी बार भी वही लेना चाह रहे थे, पर मैंने कहा आपकी पर्सनैलिटी के हिसाब से यह गाड़ी आप पर जँचती नहीं।

इस बार एसयूवी लेंगे तो जनाब का गुस्सा आसमान पर चढ़ गया। कुछ दिन बाद फिर गाड़ी का किस्सा छिड़ा। किसी तरह मान गए, कहने लगे इतने पैसे कहाँ से आएंगे। किसी तरह सब जुगाड़ बैठा लिया। खुशी-खुशी हमने भी अपने बैंक से चैक दे दिया।

गाड़ी आ गई। जब गाड़ी देखने गए जनाब को गाड़ी इतनी पसंद आई, ट्राई भी न किया और बुक करा दी। खुशी-खुशी दो महीने बाद गाड़ी आई। ऑफिस गाड़ी कम लेकर जाते थे कि इस पर मेरा हाथ नहीं बैठा। मैं यही कहती, चलाओगे तो हाथ बैठेगा न। गाड़ी ले जाने लगे। आए दिन गाड़ी के लिए मुझे सुनाते, 'तुमने गाड़ी ऐसी दिलाई है, मुझे कम्फरटेबल नहीं है।

मैंने भी गुस्से में कह दिया, दो सारी इन्फॉर्मेशन। अभी ओएलएक्स पर डाल देती हूँ। रोज का झगड़ा तो खत्म होगा, तब से चुप्पी साधे हैं।

बहुत मेहनत से इस घर में पैर पक्के किए हैं, नहीं तो कभी भी सुनने को मिल जाता था, अपने घर चली जाओ।

रही व्यंजन की बात तो मैं चायनीज़ व्यंजन बच्चों की फरमाइश पर ही बनाती हूँ। ललित जी को भारतीय व्यंजन ही पसंद आते हैं। ज्यादातर भारतीय व्यंजन ही बनाती हूँ। लॉकडाउन में तो इतने व्यंजन बनाए हैं जिसकी सभी हदें पार हो गईं।

इतना सब कुछ करने के बाद तो मैं आदर्श बहू, आदर्श पत्नी और आदर्श माँ की हकदार बनती ही हूँ।

लालित्य ललित दिलकश दिलदार दोस्त

डॉ. श्याम सखा श्याम

लालित्य ललित माने मेरे गाँव का छोरा। जी जेनेटिकली य बेशक उसकी पैदाइश परवरिश पढ़ाई लिखाई दिल्ली में हुई हो लेकिन है तो जेनेटिकली ठेठ रोहतकी क्यों उसके पिता से लेकर अनेक पीढ़ियाँ मेरे शहर की जो हैं। वैसे भी दिल्ली पहले कौरवों पांडवों से लेकर अन्पाल, पृथ्वीराज ही नहीं मुगलों के जिस दिल्ली सूबे की राजधानी रही वह संयुक्त हरियाणा ही तो था जिसकी सीमाएँ अम्बाला से नीम का थाना सहारनपुर से सिरसा तक थी। यह इतिहास कैप्टन वॉल्टर हेमिल्टन की 1824 में लन्दन से प्रकाशित और गूगल पर उपलब्ध पुस्तक डिस्क्रिपश्न ऑफ़ हिन्दुस्तान एंड नेब्रिंग कंट्रीज में देख सकते हैं। और दोस्तों रोहतक नगर सत्यवादी राजा हरिश्चंदर के पुत्र रोहतास ने बसाया था। अपना ललित भी एकदम सत्यवादी ठाठी बन्दा है अभिमान तो शायद उसके डीलडोल से घबराकर पास फटकता ही नहीं। पहली नजर में ही आप पहचान लेंगे की बंदा केवल बुद्धिजीवी नहीं है दिलदार है। हँसमुख तो है ही आप उसकी देहयष्टि फिजिओनोमि देखकर धोखा खा सकते हैं कि बंदा कोई बड़ा व्यापारी होगा लगेगा नहीं कि रेस के घोड़े की तरह व्यंग्य व कविताओं के किले फतह कर रहा होगा।

ललित की साहित्यिक उपलब्धियों के बारे में तो अनेक साहित्यकार मित्रों ने लिखा होगा मैं उसकी आत्मीयता उसके बेलौस हरदिल अजीज मिलनसार स्वभाव की झांकी दिखला रहा हूँ आपको।

यारों का यार अपना यह छुटका भाई। यकीन न हो तो भारत के किसी कोने में किसी भी स्वनामधन्य लेखक को फोन कर कहें कि क्या आप ललित को जानते हैं तो अगर वह यह ना कहे हाँ ललित मेरा यार है तो कॉल के पैसे मुझसे वसूलें। मेरी पहली मुलाकशत तो हरियाणा साहित्य अकादमी के व्यंग्य कुम्भ में हुई लेकिन कब दिल मिल गए इसका ब्यौरा नहीं है बस जान लीजिए उसी दिन से। उसके बाद तो मुलाकातों का सिलसिला चल पड़ा। जिस मुलाक़ात का जिक्र मैं करने जा रहा हूँ हुआ ऐसे कि दो बार हिमाचल पुस्तक मेले जाते हुए जब वह मेरे पास पँचकूले नहीं आ सका तो मैंने एक दिन फोन पर कहा अबकी बार चुँगी पर मेरे आदमी बैठे मिलेंगे। ललित का जवाब था बड़े भाई एक घंटे में हम आ रहे हैं बलदल सहित आलू के परांठे तैयार रखिए फोन कट गया। मुझे लगा कि मजाक कर रहा है मैंने फोन किया तो राजेश्वरी ने उठाया लगा घर पर ही होंगे पूछा ललित कहाँ है तो जवाब था भाई साहिब एक घंटे में हम सब पहुँच रहे हैं आपके पास मंडी हिमाचल जा रहे थे इरादा था आपके पास वापसी में आने का लेकिन आपका फ़ोन आ गया। बड़ा अच्छा लगा। पत्नी को बताया की ललित आ रहा है सपरिवार। वह सहायिका के साथ रसोई संभालने लगी और मैंने 4 बोतल बीयर फ्रीजर में रख दी एक अपने लिए तीन ललित के लिए।

ललित, राजेश्वरी, संस्कृति व सूर्य के साथ पहुँचे तो हम बैठ गए बीयर पीने कभी राजेशवरी कभी संस्कृति याद दिलाती रहीं कि देर हो रही है मगर दो लेखक और बीयर की कॉकटेल कब समय के पाबन्द रहते वे तो बातून महिलाओं की तरह अब इसे मन पसंद दोस्ती नहीं तो क्या कहेंगे। उसके स्वस्थ दीर्घ जीवन और उज्ज्वल लेखकीय भविष्य की दुआ के साथ सिमटने की इजाजत चाहूँगा।

लालित्य की कविताएँ कुछ भी ऐसा नहीं छोड़ना चाहती हैं जो अधूरा हो। ये कविताएँ सम्भ्रम का जंगल जीने से बचाती हैं। ये तस्वीरें सचमुच बोलती हैं और कुछ ज्यादा ही बोलती हैं।

–कन्हैयालाल नन्दन

लालित्य ललित जी से मेरा पहला साक्षात्कार

पुष्पिंदरा चगती भंडारी

एक काव्य गोष्ठी जिसमे भाग लेने का सुअवसर मिला मुझे, उसमें विशिष्ट अतिथि रहे, नेशनल बुक ट्रस्ट के हिंदी सम्पादक : ललित मंडोरा

साहित्यिक जगत में जिन्हें

Lalitya Lalit नाम से जाना जाता है।

गोष्ठी के बाद उन्होंने मुझ से बात करते हुए पूछा क्या मेरा कोई एकल काव्य संग्रह है, मेरे न कहने पर उन्होंने मिलने के लिए कहा। गोष्ठी के संयोजक से उनका नम्बर लिया और whatsapp उसे हमने किया तो उनका जवाब आया करीब दो तीन दिन इमेल हैं, मेरी पहली सोच (ईमानदारी से बता रही हूँ,) यही थी कि वो गोष्ठी की बातें थीं, और ये सच्चाई है। लोगों के चेहरे अकेलेपन में अलग होते हैं और पब्लिक के सामने अलग। पर तुरंत इनका अगला मैसेज आया और इतने समय में मुझे अपनी बेहतरीन एक सौ एक कविताएँ चुन लेने को कहा। फिर करीब तीन चार दिन बाद दुबारा उन्हें massage किया तो बहुत सहजता से कहा आप समय निकाल कर किसी दिन हमारे ऑफिस आ जाइए। बात हो जाएगी, चाय भी पी लेंगे आपके साथ खुद पर शर्म भी आयी, बहुत सारी बिना किसी को जाने उनके बारे में राय कैसे बना सकते हैं। मैंने अपनी सुविधानुसार दिन, समय तय किया और मिलने पहुँच गयी (पहुँचने में करीब बीस मिनट की late भी हुई, ट्रैफिक की वजह से) बात करते हुए ज़िक्र भी नहीं किया उन्होंने।

मिलकर विश्वास नहीं हुआ इतने ऊंचे पद पर कार्यरत ललित जी इतने सीधे और down to earth इंसान होंगे। तब इन्होंने बताया कि नेशनल बुक ट्रस्ट कविताएँ नहीं छापते पर इन्होंने स्वयं ही व्यवस्था की, कि INB India Net Book से निःशुल्क मेरी कविताएँ छपेंगी और कोई शर्त नहीं कि कितनी किताबें मुझे लेनी ही होंगी, फिर बातों-बातों में मेरी किताब का preface लिखने की बात भी मान गए, इतने बड़े जाने-पहचाने साहित्यकार जिनकी कई पुस्तकें छप चुकी हैं।

16 व्यंग्य संग्रह, 34 कविता संग्रह, 25 कहानी की पुस्तकें, नवसाक्षरों के लिए, कुछ संचयन, कई भाषाओं में कविताओं और व्यंग्य का अनुवाद, To be precise जब मुझ जैसे नौसिखिए के पहले संग्रह का preface लिख रहे हैं तो खुद पर गर्व कर सकती हूँ न इतना ही नहीं Book fair में मेरी book release भी करवा दी।।

आखिर में यही निष्कर्ष निकाला कि उच्च पदों पर काम करने वाले सहृदय और सरल भी हो सकते हैं अब कोई भी कहेगा तो ललित जी की तस्वीर आँखों के आगे आएगी।

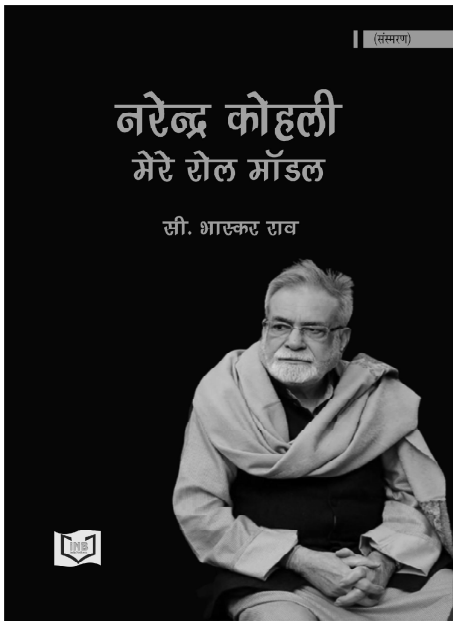

My Father From My Eyes

Sanskriti Mandora

Love. Do you think it needs any definition? Don't you think it itself is A whole sentence. Something which holds innumerable meanings for all of us. Something which always makes us go weak on our knees. Something which is the main reason of someone's happiness and despair. Something which makes us believe in the feeling of togetherness. Something which makes you strong and

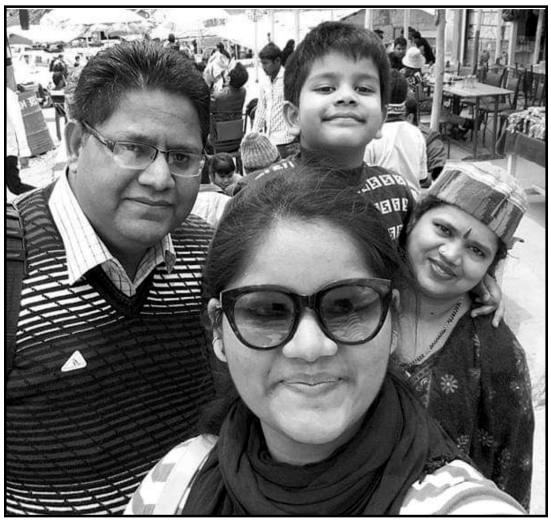

weak all at the same time. Something which makes you fall and might turn out the best fall of your life. Something that you witness when your child takes her first step. Something which just cannot be defined in words. Well, the list goes on and on. This collection of poems were initially written in Hindi but now all of it has been translated in English and will talk mainly about love and its various forms, relationships, hopes, society, corruption, and every single thing which will connect with you. But the gist of everything will be love. Maybe because that's all we need. Right?

Seeing my dad putting in so much efforts to pen down three to four poems each day, sometimes more and posting it all on Facebook looked rather weird to me at first. But this time when I finally took out some time to go through each poem of his, I could really feel A connection with them. The way he writes is very relatable, easy to understand and would mostly pick up the right nerve of the subject he is talking about. Though mainly he is a foodie and people who know him personally are very much aware of this. So yes, you would definitely find references of food as well. But then talking specifically about the poems in this book, they make you familiar with the dead hopes of a lover who wants his beloved back. Sometimes about the happiness which he tries to find being alone which is completely corrupt as

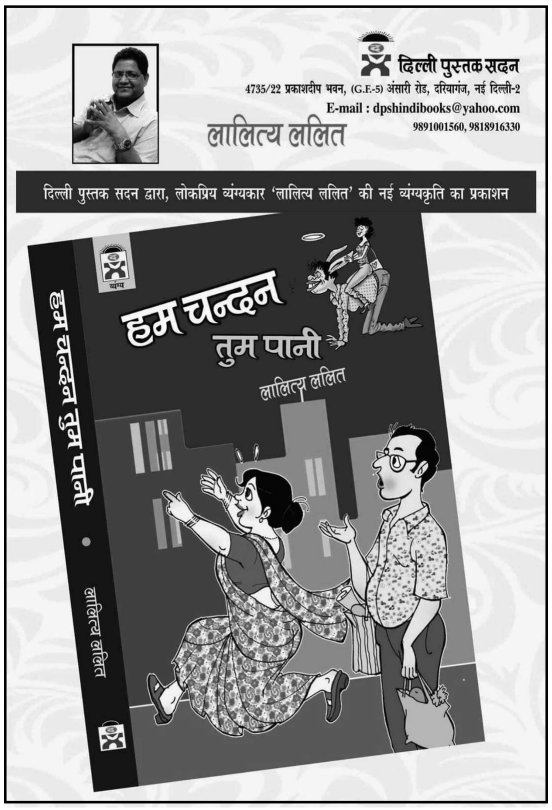

that's just an escape from the reality. You'll find the poet travelling and searching for that someone whom he might never find. He also talks about feigned relationships which have completely lost the essence of true certainly be the most relating thing for all of you.

Worldly pleasures, corrupted society, relations, family, soliloquy is everything you'll be acquainted with. Just to make you familiar with the poet; he is the most chilled out and fun loving person in a room full of people, someone who has a ever smiling face(though I as his daughater has seen the opposite as well), who loves to surf through Facebook all day and oh he also works at the National Book Trust of India as an Assistant Editor in Hindi. He is A person who loves travelling and is a proud holder of many literary awards.

But all of it did not really stand out for me until one day the door bell rang and there I saw a reporter and a photographer from Hindustan Times and those people told me that they are here to interview my dad about his recent books. I could not really believe it for once and digest the fact that 'are they really going to interview him? Has he written something great?" Well, of course he did. But then it was just inner feelings of a small girl who really didn't know much about what her father used to write. So, apologies dad. From that very dad, I guess the respect and love for him has just increased to an enormous level; not to forget that it was not their before but this was something which was quite an achievement. I almost felt like a proud daughater. The article which got published in the newspaper was later printed again in various editions all over North India.

Well, this was it from my side. I hope you people have a good read ahead.

व्यंग्य के सुपरिचित हस्ताक्षर भाई दिलीप तेतरबे

डॉ. लालित्य ललित

दिलीप तेतर्बे किसी परिचय के मोहताज नहीं है। वे अपनी धुन के पक्के वाले व्यंग्य यात्री है। अपने स्टूडेंट्स में खासे लोकप्रिय है, पत्रकार बन जाते है तो कभी सम्पादक की भूमिका में उतर आते है। कई बार लगता है कि वे मौसम के बदलते मिजाज की माफिश्क अपने को बदलते रहते है। व्यंग्य को समर्पित पत्रिका अनवरत का सम्पादन भी करते है, बड़ी और ब्रेकिंग न्यूज आजतक किसी से मदद की गुहार नहीं लगाई, जैसे कि अन्य सम्पादक बन्धु भिक्षां देहि पुकारा करते है। पत्रिका निकालना बेहद जोखिम भरा काम है। पहले-पहल मैंने इनसे मुलाकात नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर हुई, फिर तो एक सिलसिला ही बन गया। तब से लेकर लगातार डलहौजी, कुल्लु, श्रीगंगानगर की यात्राओं में दिलीप जी का साथ रहा।

अपने व्यंग्यात्मक नजरिये से ये जिसकी धुलाई करते है, फिर वह पानी नहीं मांगता, अपितु मिमियाता रहता है।

चाहे अब कोई तोप माने या इतिहास रचियता। सबको एक नजरिये से देखने का काम दिलीप तेतर्बे ने बखूबी किया है।

ये जितने अपने व्यंग्य में सधे हुए है, उतने ही व्यंग्य आलोचना में भी। यही कारण है कि बालेंदु शेखर तिवारी भी इनकी बेहद प्रशंसा करते थे।

बहरहाल दिलीप एक योग्य, समर्पित व आशावान लेखक है, जिनके पास शैली है, भाव है और मिक्सर ग्राइंडर है। वे जानते हैं कि किस को किस भाव से संबोधित करना है और किस का सम्मान किस लेवल पर करना है।

मजेदार बात तो यह है कि जिन तथाकथित रचनाकारों को अपने स्तर से इन्होंने बजाया तो वे दूसरे मित्रों से जनसम्पर्क करते देखे गए।

ज्यादा कुछ नहीं कहते हुए इतना भर, कि दिलीप तेतर्बे का लेखन पुनः नए मिजाज के अनुरूप पाठकों तक पहुँच रहा है और इसकी अनुगूंज एक लंबी अवधि तक रहने वाली है।

मैं कहाँ रही

लेखक : डॉ. संजीव कुमार

बचपन में
मैं रही पिता की 'बिटिया'
बुजुर्गों की उपेक्षा
के साथ पली
थोड़ी बड़ी होकर
बन गई
भाई की बहन
और गुजर गई तरुणायी
इसी छाया तले
जब आया यौवन
तो बन गई मैं
किसी की बीवी
किसी की बहू
फिर बेटे-बेटी की माँ
पर सोचती हूँ
शुरू से आखिर तक
मैं कहाँ रही?

(पुस्तक : शहर-शहर सैलाब)

ईमानदारी से लिखे गए व्यंग्य

डॉ. लालित्य ललित

इधर कुछ समय से व्यंग्य यात्रियों की रचनाएँ पढ़ने का मौका मिला है। लॉकडाउन में कुछ ज्यादा ही।देश और दुनिया भर के व्यंग्यकारों के लिए अनूठा सोचने का प्रयास काम कर गया। सबको कहा गया कि कोई छोटा बड़ा नहींएसबको अपनी रचनाएँ पढ़ते हुए भेजनी है, और उसका वीडियो भी बना कर भेजना है।

ऐसे में शुरू में लगा कि क्या प्रयास सफल होगा या बीच मझधार में लोग साथ छोड़ जायेंगे, मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

व्यंग्ययात्री जुड़ते चले गए। अब वह चाहे अरविंद तिवारी हो, रमेश सैनी, बुलाकी शर्मा हो, झारखंड से दिलीप तेतरबे हो हरियाणा से प्रेम विज, महाराष्ट्र से समीक्षा तैलंग हो, दुबई से नेहा शर्मा, जयपुर से प्रभात गोस्वामी, उज्जैन से हरीश कुमार सिंह, पिलकेन्द्र अरोड़ा, केपी सक्सेना 'दूसरे' यानि ऐसा लगने लगा कि जो इस मुहिम में शामिल नहीं हुआ, उसका लॉकडाउन में कुछ भी सोचना बेकार गया।

अब आते हैं इस संग्रह के व्यंग्य लेखक प्रभात गोस्वामी की ओर। जो संयुक्त निदेशक जैसे महत्वपूर्ण पद से सेवामुक्त हुए। लगातार व्यंग्य विधा की ओर उन्मुख प्रभात जी ने सेवा में रहते हुए वह कीर्तिमान स्थापित भले ही न किया हो, पर सेवा उपरांत जितनी तेजी से रन बनाना शुरू किया, उसके सुखद परिणाम का नतीजा है, यह संग्रह।

बहुमत की बकरी। जैसा कि नाम से ही लगता है कि कुछ रोचक होने वाला है। आइये आपको बता दें कि मैं व्यंग्य का विद्यार्थी हूँ, जिसका मन कुछ न कुछ नए पढ़ने में रहता है। ऐसे में प्रभात भाई का व्यंग्य पहली नजर में भा गया।

संतुलित भाषा, शब्दों का चयन और किसी के मन में उतरने का माद्दा प्रभात गोस्वामी के व्यंग्यों को पढ़ने के बाद यह आँकलन किया जा सकता है।

लॉकडाउन में जिस तेजी से मैंने एक फ़ेहरिस्त व्यंग्यकारों की देख जिसमें भोपाल के मुकेश नेमा, शिकोहाबाद के अरविंद तिवारी, दिल्ली के प्रेम जनमेजय, उज्जैन से हरीश कुमार सिंह, कोटा से शरद उपाध्याय और अतुल चतुर्वेदी ने किसी किसिम की सक्रियता में कोई भी कमीं नहीं दिखाई, जबकि बड़े-बड़े तुर्रम खाँ, बनाम व्यंग्य समलोचक इस दौरान क्वांरटीन में नजर आएं।

ऐसे माहौल में जो नाम उभर कर आया वह प्रभात गोस्वामी का ही है। यूँ तो राजस्थान में अनेक नाम है, लगभग दर्जन भर, मगर सक्रिय कितने!

कुछ ऐसे जो मठाधीश हो गए, सत्ता सुख पा गए, वे अंतर्ध्यान अवस्था में आ गए। उनका अब कुछ नहीं हो सकता। लेकिन बड़ी ईमानदारी और शिद्दत से प्रभात भाई ने मोर्चा सम्भाले रखा।

इनके व्यंग्य पाठकों को जोड़ते है या यूँ कहिए अपनी ओर आकर्षित करते हैं। मानो गोस्वामी जी ने कोई चुम्बक विकसित कर लिया हो, आखिर हम विकासशील देश के आजाद नागरिक है जिसकी अभिव्यक्ति के संकट पर फिलहाल कोई खतरा नहीं है, बाद का बाद में देखा जाएगा।

संग्रह को पढ़ते हुए लेखक ने जहाँ लिखा है जैसा कि मेरी बात में खुद को रेखांकित करते हुए कहा।

"व्यंग्य मेरी रगों में दौड़ता रहा है। मैं तो कहूँगा कि अब वह रगों के माध्यम से स्पीड पकड़ गया है, लेकिन वह स्पीड़ किसी भी कीमत पर व्यंग्यकार ने बेक़ाबू नहीं होने दी, इस बात का ध्यान रखा गया है।

कमाल और हैरानी की बात यह है कि बहुमत की बकरी प्रभात जी का पहला व्यंग्य संग्रह है, लेकिन पढ़ते हुए आप यह पता नहीं कर पायेंगे कि यह उनका पहला लेखनी प्रेम।

है जो अब जाकर प्रकट मुद्रा में अवतरित हुआ है।

इन्होंने अपने व्यंग्य के तीर अनेक विषयों पर केंद्रित किये, जिसमें बहुराष्ट्रीय कम्पनी में काम कर रहे बंधुआ मजदूरों को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। जैसे वह आता है, थका मांदा और आसमान के शून्य को निहारता है।

एक और बड़ी बात आसानी से कहने का साहस व्यंग्यकार ने कर दिखाया देश व्यवस्था से नहीं बहुमत से चलता है।

व्यंग्य पढ़ते हुए मेरा ध्यान अनेक पात्रों की तरफ भी गया जिसमें टल्लू प्रसाद, गरीबदास पलीता प्रसाद यानी पीपी भाई प्रमुख रहें।

सामयिक विषयों की हवा को पकड़ने का अदम्य साहसपूर्ण कार्य प्रभात गोस्वामी जी ने किया, वह आने वाली पीढ़ी के लिए एक अनुकरणीय तथ्य है।

यूँ तो प्रेम किसी भी उम्र में किया जा सकता है, उसको कोई रोक-टोक या प्रतिबन्ध नहीं है।

संग्रह में अनेक मार्के के व्यंग्य है। 49 व्यंग्य शामिल है। लघु कुटीर व्यवस्था के तहत लिखने का सायास कौशल प्रस्तुत किया है, प्रभात गोस्वामी ने।

मुझे तो इतना भर कहना है कि व्यंग्य बिरादरी के कुनबे को एक नया सदस्य मिला है। अब निश्चित ही व्यंग्य समृद्ध होगा, ऐसी कामना है, मेरी। आपकी भी मनोकामना पूर्ण हो।

अधिक से अधिक संख्या में संग्रह पाठकों तक पहुँचे। ऐसा विश्वास है, संकट के समय में निखिल पब्लिशर्स के निदेशक निश्चित ही मुरारी मोहन शर्मा बधाई के पात्र हैं जिनके माध्यम से यह सुंदर संग्रह आया।

बधाई प्रभात गोस्वामी जी पुनः।

अगली बार नए संग्रह में इस संग्रह से प्राप्त प्रतिक्रियाओं को समावेश करते हुए आगे बढ़ेंगे।

तुम्हारी आँखें बखूबी बोलती है

लेखक : लालित्य ललित

सच किसी ने कहा
कि
तुम्हारी आँखें बखूबी बोलती है
आँखें बोलती है
पर कैसे बोलती होंगी!
मुँह बोलते तो सुना है
अब ये आँखें कैसे बोलती होंगी!
सोच रहा हूँ
कि
कितना सच है!
कितना झूठ
कौन कितना बोलता है
कितना सच कहा होगा!
अब सोचना पड़ैगा कि
कहीं किसी ने और कुछ कह दिया होगा
तो
क्या होगा!
दो जोड़ी आँखें खोजने लगीं
इधर से उधर
उधर से इधर
कहीं से आवाजें आने लगीं
आपकी आँखें बोलती हैं
कौन झूठ बोलता है
उतने शिद्दत से
जितनी शिद्दत से मैंने भी नहीं देखा
बेचारी आँखों ने मायूसी में
अपने आप से कहा।

(पुस्तक : बारिश सी तुम)

अशोक व्यास के व्यंग्यों से गुरजना

डॉ. लालित्य ललित

आजकल अशोक व्यास के व्यंग्य खासे चर्चा में हैं। एक सीधे-साधे व्यक्ति नाम अशोक व्यास, जो व्यावरा में जन्में। पहले तो लगा कि लूणकरण सर (राजस्थान) के पास के होंगे, पर ये मध्यप्रदेश निवासी है। अशोक व्यास ने अपने क्षेत्र में काम भी कर लिया। पुरस्कृत भी हो गए। लेकिन अभी भी रचनात्मक है, सक्रिय है।

कई साहित्यिक ग्रुप में भी देखे जाते हैं और फेसबुक के माध्यम से सोशल मीडिया पर भी एक्टिव है।

विचारों का टैंकर पहला व्यंग्य संग्रह था, अब जो आपके सामने है वह टिकाऊ चमचों की वापसी है।

शीर्षक बेहद रोचक है जो अनायास अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए उकसाता है।

हमारा समाज जो है बिना उकसाये कुछ नहीं करता। इसलिए व्यंग्यकार इस रेखा से तटस्थ है, वह कुछ न कुछ करता है और ऐसी महीन चोट करता है कि आदमी बरनोल लगाता फिरता है।

ऐसा ही कुछ और भी हुआ कि दिल्ली का एक व्यंग्यकार जब अपना ही रिकार्ड ध्वस्त करता है पिछली बार का, तो एक चूक गए व्यंग्यकार ये कहते दिखाई देते है कि क्या हो रहा है! कौन छाप रहा है!

क्यूँ छाप रहा है। वैसे यह जलन और कूड़न से पीड़ित लोगों का भी युग है। अरे भाई कोई लिख रहा है तो उसे शुभकामनाएं दें, लिखने की मिसालें पेश करें। पर नहीं उन्होंने अंड का बंड बोलना ही है।

बहरहाल टिकाऊ चमचों की वापसी नाम से ही ये कृति बिंदास है।

अशोक भाई का एक व्यंग्य मेरे संपादन में चाटुकार कलवा में भी शामिल किया गया है।

दिल से लिखते हैं और दिल उनका हो जाता है।

वैसे मध्य प्रदेश में इस समय अनेक सक्रिय व्यंग्यकार है जिनमें शांति लाल जैन, पिलकेन्द्र अरोड़ा, मुकेश जोशी, हरीश कुमार सिंह, रमेश सैनी, रमाकांत ताम्रकर, जयप्रकाश पांडेय, संजय जोशी सजग, देवेंद्र जोशी से लेकर कई वयोवृद्ध भी है जो उम्र के साथ-साथ लिखने में पीछे नहीं है।

प्रस्तुत संग्रह में 26 व्यंग्य आलेख है। अशोक व्यास के विषय बेहद सामयिक है बल्कि यूं कहिये कि अशोक जी की दृष्टि पैनी है जो कोई भी विषय छोड़ने को तैयार ही नहीं। पहले सरकारी सेवा में थे तो उनपर कई धाराएँ लग सकती थीं, लेकिन अब वे मुक्त है कुछ भी कह सकते है, दिल से भी और सोशल मीडिया से भी।

टिकाऊ चम्मच की वापसी पढ़ते हुए मुम्बई के वागीश सारस्वत और प्रेम जनमेजय की व्यंग्य रचनाएँ याद आ गई।

व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक जोरदार है। पढ़ने को उकसाते है।

अशोक व्यास की पांडुलिपी में कई व्यंग्य विसंगतियों के रौद्र रूप की माफ़िक बड़े हैं और कुछ टमेटो सूप की माफ़िक छोटे।

स्थानीय विषयों को आधार बनाते अशोक की चिंताएँ वाजिब है, सामयिक दर्शन बोध है और अकल्पनीय दुस्साहस उठाने का जोखिम भी अशोक व्यास ने उठाया है।

मेरी शुभकामनाएँ अशोक व्यास के साथ है। भविष्य में और भी बेहतर लिखेंगे ताकि राज्य सरकार से मिलना वाला पुरस्कार मिलेगा तभी तो अप्रोच देश की राजधानी तक पहुँचेगी।

आज व्यंग्य को अक्सर लोग भर्ती का अभियान मान लेते है। कॉलम राइटिंग को व्यंग्य से इतर मान लिया जाता है जबकि अखबारों की दुनिया देखते हुए विषयगत लिखने के लिए लेखक प्रतिबद्ध होता है। इस विषय को भी हमें

ध्यान में रखना होगा। आज व्यंग्य विसंगीतियों पर जरूरी प्रहार करता है। यह वह चाकू है जिसकी धार हमेशा धारदार रहनी चाहिए।

अशोक व्यास के पास भाषा है और उसकी प्रस्तुति का भाव भी। उनके पाठकों को समझना होगा कि व्यंग्य हमेशा आप की जी हजूरी करें, वह नहीं होगा।

व्यंग्य हमेशा सतर्कता से आप पर नजर बनाए हुए है। आप की नजर से कोई नहीं बच सकता।

ऐसा ही भाव अशोक के व्यंग्य पढ़ते समय महसूस हुआ। मैं जरूर चाहूंगा कि आने वाले संग्रह में अशोक व्यास जी की चिंताएँ राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय जगत की हो और वे अपने पाठकों, प्रकाशकों और मित्रों का ध्यान जबरदस्ती खींचने में कामयाब हों।

निश्चित ही अशोक व्यास इस मंत्र को समझते हुए अपनी और से अपने पाठकों की नजर में खरे उतरेंगे।

इस समय व्यंग्य का सेक्टर किसी उद्योग की माफ़िक फल फूल रहा है, आज हर प्रदेश में सौ से ज्यादा छोटे-मोटे, भारी भरकम व्यंग्य लेखक अपनी चिंताएँ लेकर मननशील है, लेखन में ध्वस्त है, कुछ व्यस्त है और कुछ त्रस्त भी।

बहुत कम लेखक है जो आज आपकी खुशी में उत्साहित है अन्यथा सब चेहरे पर कुछ और दिमाग में कुछ लिए मुंडी हिलाए नजर आते है।

मुझे लगता है कि इस कुनबे के लोगों को मठाधीश बनने की बजाए एक दूसरे को सम्मान से देखना चाहिए।

कुछ तो ऐसे भी है जो जिंदा रहते पुरस्कार आरम्भ करने में भी पीछे नहीं। आज कई सारे स्कूल और ओपन स्कूल व्यंग्य के चल रहे है।

ऐसे संक्रमित समय में अशोक लिख रहे हैं और यह कम बड़ी बात नहीं। बिना किसी दल, संगठन के आप लिख रहे हैं आपकी चिंताएँ मौलिक है, इसलिए आप से लोग जुड़ रहे हैं।

किसी एप्लिकेशन की तरह तुम

लेखक : लालित्य ललित

तुमने समूचे तौर पर
मुझे डाउनलोड कर लिया है
सच बताऊँ
मैं भी अब डिलीट होना नहीं चाहता
बेशक कोई वायरस कितना ही पंगा कर ले
पर अपना बाल भी बांका नहीं कर सकता
लिसन बाई न वे
यू आर वेरी क्लोज टू मी
अदर वाइज कोई भी न मेरे प्रण को डिगा सकता
मुझ में तुम किसी एप्लिकेशन की मानिंद समा गई हो
लकी है समय
या तुम
या हम दोनों
प्रेम पागल नहीं करता
पगलेट समय की गुहार लगाता है।
यू आर जस्ट माय स्मार्ट फोन
बट मैं आई टेल यू वन थिंग
आय एम टोटली ए वेरी सिंपल फेलो
नाओ चीयर्स
हैपी
डेट्स इट
माय स्मार्टफोन
लव यू,
तुम्हारे बगैर मेरा अस्तित्व कुछ भी नहीं
यकीन मानो तुम।

(पुस्तक : बारिश सी तुम से)

नया वितान रचती प्रियंका जादौन की कविताएँ

डॉ. लालित्य ललित

प्रियंका जादौन एक नया स्वर है जिसकी विचारधारा अनायास ध्यान आकर्षित करती है।

उसके पास कहने को बहुत कुछ है। जैसा कि आमतौर पर इस उम्र के रचनाकारों में दिखाई देता है। प्रियंका की कविताओं को शुरू में सरसरी तौर पर देखा लेकिन बाद में प्रियंका की गहरी आस्था ने उसके मिजाज से यह महसूस किया कि इस रचनाकार में कुछ तो स्पार्क है।

प्रियंका का मन दो धारा में चलता दिखाई देता है। कभी इसका मन कहानियों में पात्र पिरोता है तो कवि कविताओं में अपने को तलाशता है।

मैंने प्रियंका को व्यंग्य व कहानियों में रमते हुए भी देखा।

कई प्रतियोगिताओं में सस्वर पाठ करते हुए भी मैं साक्षी बना। यूं कह लीजिए कि प्रियंका की प्रगति को मैंने नजदीक से देखा है।

प्रस्तुत इस संग्रह में प्रियंका की 45 कविताएँ है।

इसमें माँ है, पतंग है, एहसास, भगवान भी है, तो चांद के साथ आईना भी नजर आता है। वही कब्रिस्तान भी यानि सामाजिक सरोकारों के आईने में अपनी भावांजलि को लिखने में प्रियंका ने कोई कसर नहीं छोड़ी है।

कहते भी है लेखक जैसे देखता है वैसे ही उसे कागज पर उतार देता है। कुछ ऐसा ही प्रियंका के साथ में भी इन कविताओं के साथ हुआ है।

पहली ही कविता में देखें तो वह रचना 'माँ' है जिसमें प्रियंका कहती है

"कुदरत की हसीन
कृति है माँ
ईश्वर का तौफा है माँ
जिंदगी की सबसे बड़ी
जरूरत है मेरी माँ"

महिला सशक्तीकरण को केंद्र में रख कर भी प्रियंका ने लड़कियाँ कविता में कहा है–

हाँ कम नहीं है
किसी भी क्षेत्र में
चाहे हो शिक्षा हो या कोई खेल
कम नहीं है
आजकल की लड़कियाँ

वहीं प्रेम का एक अलग रंग भरती रचना की जो नए पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती दिखती हैः

जाने वो कैसे होगी?
जाने वो कैसे होगी?
जो मेरी जिंदगी के खालीपन को
अपने अंदर समेट लेगी?

वही दूसरी ओर पहाड़, परिचय, एहसास, भूल जाता हूँ ऐसी रचनाएँ है जिनके साथ पाठक सहयात्री होना चाहता है।

एक रचना जिसने ध्यान खींचा मेरा। वह है मोहब्बत!

वो पूछती है मोहब्बत
क्या है?
है कोई बन्दगी या कोई खता है?
कोई एहसास है या कोई चुम्बन है
जरा बताओ
ये क्या सिलसिला है?

ये कविता अनायास अपने आपसे सवाल करती है और लगातार विचार मंथन को उद्वेलित करती दिखती है।

अपने भविष्य को लेकर भी रचनाकार इतनी सशंकित

भी है जिसका खतरा "यादें" कविता में दिखाई देता है।

अक्सर लेखक भावना संपन्न होता है। उसके मन में कई तरह का द्वन्द चलता रहता है। जिसका एहसास इस तरह की कई रचनाओं में दिखाई देता है।

इन कविताओं में आक्रोश भी है और जन चेतना का उद्घोष भी। लेखिका ने स्त्री चेतना की मुहिम का पक्ष भी रखा है और उनके समर्थन की पुरजोश कोशिश भी की है आज स्त्री को ऐसा नहीं समझा जाएँ कि वह उपलब्ध कोई मांसपिंड या रसगुल्ला है कि कोई भी उसको गप्प कर लें।

एक और बड़ी प्यारी कविता है। चलो न साथ रहते है

अपने आप में एक सुंदर रचना है जो दिल को छूती है। स्पन्दित करती है।

कुल मिला कर कहना चाहूंगा कि प्रियंका जादौन की कविताएँ बिल्कुल ताजा स्वर है। नए एहसासों का उद्धघोष करती है।

इसमें नई चेतना है, नया स्वर है और नई विचारधारा भी है। जिसमें आत्मीयता है और देश को मिजाज को बुनती ये कविताएँ नया वितान रचेगी। नया माहौल बनाएगी। ऐसी उम्मीद है।

बधाई प्रियंका को कि उसकी कविताएँ पढ़ने का मौका मुझे प्रकाशक के माध्यम से पढ़ने को मिला।

आज प्रियंका साहित्य बिरादरी में शामिल हो गई है। पुनः बधाई व शुभकामनाएं।

ललित की भाषा सीधी-सरल है। उसमें भारी भरकम शब्दों का न मकड़जाल है, न कोई गैर जरूरी जलेबियाँ जो विषय को बोझिल बना कर रख दें। उनकी शैली में हल्का कटाक्ष और व्यंग्य का मिला-जुला रूप भी उजागर होता है। जो उनकी कविताओं को यादगार बनाता है।

नासिरा शर्मा(प्रख्यात कथाकार)

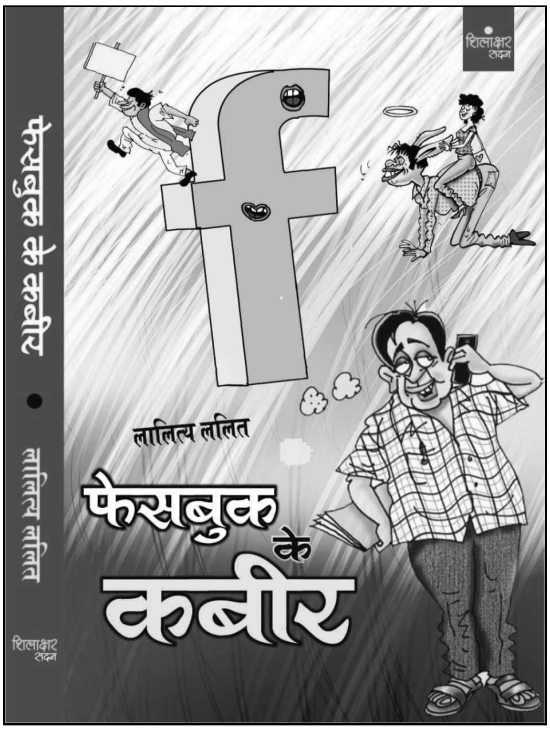

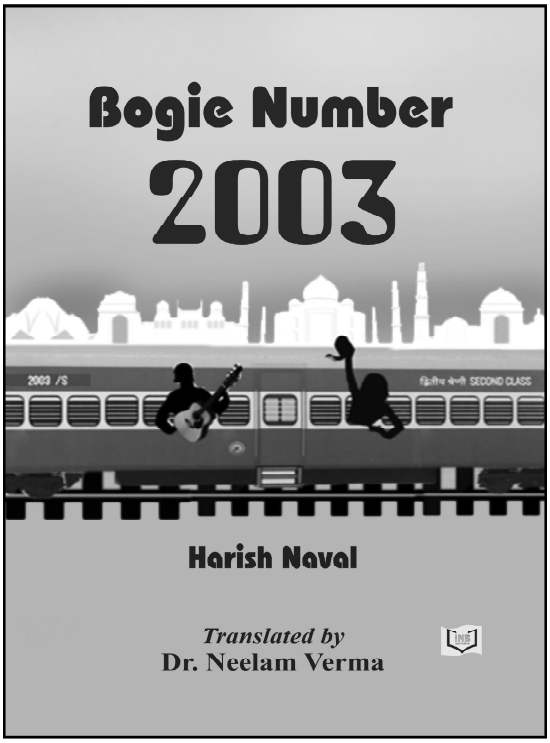

पारुल तोमर की कविताओं से गुजरना

डॉ. लालित्य ललित

एक लंबे समय से रचनाकार की रचनाओं को देखता पढ़ता आ रहा था, लेकिन ढेर सारी रचनाओं को पढ़ पाने का सौभाग्य आज मिल ही गया। इन रचनाओं को पढ़ कर लगा कि इन कविताओं के बारे में यदि कहा जाए कि इनका होना

यानि लुप्त होती जा रही संस्कृति और लोक मानकों की स्मृतियाँ फिर से जेहन में पुनःजीवित हो उठीं। यह साक्ष्य इनका प्रमाण है।

पहली ही कविता 'ईश्वर' इसका उदारहण हैं जहाँ एक छोटी सी लड़की अपने पिता से जिद करती हैः

"बाबा गंडेरी बना कर दो न"

इन रचनाओं को पढ़ते समय लगता है कि कोई चित्र सा रचनाकार ने हमारे सामने खींच दिया होय परंपरावादी मूल्यों के नजदीक ये रचनाएँ कहीं हमारी अनिवार्य धड़कनें बनने को उत्सुक है।

शहर के लोग प्रायः 'संझा बाती' जैसे महत्वपूर्ण प्रकरण से अनभिज्ञ है या वे इसे अपनाना नहीं चाहते, लेकिन ये हमारे चिंतन के अनिवार्य और आवश्यक घटक है जो जाने अनजाने हमें चौतन्य बनाते है।

'उसने कहा' नामक एक जिंदादिल रचना है, जिसका उल्लेख करना ज़रूरी समझ रहा हूँ

"उसने कहा"
फूलों से खिलो
वह हँसी बन खनक गई
खुशबू सी उड़ों
वह कण-कण में महक गई
बदरी सी बरसो
वह तृप्ति बनकर छिड़क गई
गीत-संगीत सी गूंजों
वह वीणा के तारों में संवर गई
वह तितली, चिड़िया, नदी नहीं थी
वह शायद एक लड़की थी।

अद्‌भुत समन्वय है, कविता में और किशोरावस्था के सपने सरीख़ी वह उन्मुक्त रचना।

इन कविताओं में विषय कहीं बाहर से आयातित नहीं है, बल्कि अपने परिवेश के ही है। जिसमें लालबत्ती, माँ, हथेलियाँ, जीवन, पिता, रिश्ते, कामवालियाँ, स्त्री, सपने, वक्त, चाँद, किताबें, रंग, मौसम, बूंदें, धूप और वसन्त के साथ गांव की कसक को याद किया गया है।

इसी तरह 'पुर्नमिलन' कविता में एक अव्यक्त पीड़ा है, जैसेः

"तुम यकायक मेरा हाथ पकड़ कर
मुझे कनखियों से देखते बोले
चलो अपने घर चलते हैं
और तुम्हारी बची फीकी कॉफी
मीठी होने लगी थीं
कॉफी हाउस मुस्कुरा उठा था"

इसी तरह "तुम ही तुम" रचना भी अद्‌भुत भाव को लेकर प्रस्तुत हैः

"हर शब्द में तुम, हर भाव में तुम
मैं सरगम चाहे कोई रचूं
हर गीत में तुम ही तुम मुस्कराते हो"

और भी कई रचनाएँ है जो साथ लिए चलती है, इस यात्रा में जिनमें "साथ-साथ, जब तुम आ जाते हो, मैं नदी हूँ?, तुमसे मिलने के बाद प्रमुख है। जिनका स्वर मन को स्पर्श करता है और देह उस संगीत के साथ चल देती है।

पारुल तोमर की इन कविताओं से गुजरने के बाद मुझे लगने लगा है कि बहुत दिनों बाद एक सांस्कृतिक यात्रा पर निकल आया हूँ। इन रचनाओं में एक ठहराव है, जीवन के

प्रति आसक्ति है, अपनों के लिए प्रेम है। और कहीं भी नहीं लगता कि ये वे रचनाएँ है जो किसी किसी चित्रकार ने शब्द प्रस्तुत कर दी हो। आखिर चित्रकार की भावनाएं भी इसमें निहित है।

एक एहसास, एक स्पंदन सा रचनात्मक सुखद वातावरण को तैयार करने में ये रचनाएँ हर उस नए रचनाकार के लिए भी प्रवेश द्वार की तरह काम करेंगी।

पारुल की कविताएँ पढ़ते हुए मुझे मुम्बई की राखी कनकने, हल्द्वानी की सौम्या दुआ, दिल्ली की तृप्ति अग्रवाल, कल्पना पांडेय, प्रियंका सैनी, प्रियंका जादौन, हिसार की रश्मि बजाज का याद आ जाना स्वाभाविक लगा। ये वे नाम है जो बिना किसी राजनीति के अपनी पहचान बनाने में सक्षम है। सही मायने में भारतीय समय ल कविता के माध्यम से साक्षात्कार करने में समर्थ है।

कविताओं की शक्ति है कि वह आपको अपनी और आकर्षित करें और आपको पढ़ा ले जाने में समर्थ हों, इन कविताओं में वह बात है जो आपको अपनी और खींचने में समर्थ है, इनमें एक आत्मीयता है अनुराग है और जीवन के प्रति नए दृष्टिकोण का अनुपम लालित्य बोध भी इन रचनाओं में प्रस्फुटित होता है। बहुत जल्द पारुल तोमर की रचनाएँ हर पाठक को गुड फील वाले तत्व से परिचय करवाने वाली हैं।

पारुल तोमर के इस संग्रह "संझा बाती" के लिए मेरी शुभकामनाएँ कि आपने इतनी सुंदर, सार्थक कविताओं को पढ़ने का अवसर दिया, इसी बहाने मैं अपनी बात रख सका।

निश्चित ही पारुल की कविताएँ बेहतरीन सोच की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसे पाठक जगत द्वारा अवश्य सराहा जाएगा।

लालित्य ललित हँसोड़ स्वभाव के है। अपनी हँसी और हँसी प्रद वचनों से वातावरण में उल्लास भर देते हैं। लालित्य ललित खुले हुए स्वभाव के हैं। वे सबके साथ जुड़े हुए हैं। वे भी कवि हैं किंतु कवि होने का गर्व उन्हें नहीं है अतः सबके साथ होना, उठना बैठना उन्हें अच्छा लगता है।

लालित्य ललित के आने से ही एनबीटी से मेरा सम्बन्ध बना, उससे पहले मेरा कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने मेरा कहानी संग्रह मांगा और कुछ कहानियां मांगी और प्रकाशित कर दी, उससे पहले किसी ने न कहा और न मैंने ही कोई प्रयास किया।

लालित्य ललित कल और आज के द्वंद से रूबरू होते है। अपने समय में आए अच्छे-बुरे बदलाव की शिनाख्त करते है। यानी कि लालित्य ललित का कथ्य जगत वैविध्यपूर्ण है। अच्छी बात यह है कि इनकी कविताओं में सफगाई और बहाव है, इसलिए ललित मुझे पसन्द है।

रामदरश मिश्र,
साहित्य अकादेमी से सम्मानित

पुष्पिंदरा चगती भंडारी की कविताएँ स्पंदित करती हैं

डॉ. लालित्य ललित

"लम्हा भर का साथ तुम्हारा" कविता संग्रह पुष्पिंदरा चगती भंडारी का है। जिनकी कविताएँ अभी हाल ही में दिल्ली के एक कार्यक्रम में सुनने का मौका मिला जहाँ मैं मुख्य अतिथि के तौर पर आमंत्रित था।

पुष्पिंदरा जी एक आम स्त्रियों की तरह गृहणी है जिसका काम-काज घर, परिवार और रिश्ते-नातों के सुख दुख का हाल-चाल पूछने और टेलीविजन के सीरियल्स पर टीका टिप्पणी करने में जाता है।

लेकिन मैंने नजदीक से महसूस किया कि इनकी रचनाओं में एक प्रतिशोध है एक प्रकार की जिजीविषा है समाज को अपने स्तर पर जानने की कि वाकई में ये वैमनस्य, ये वैराग्य क्यों है!

क्यों आज मनुष्य अपने ही लोगों से कटा हुआ है!

किस ओर तेजी से भागते चले जा रहे है लोग! किसी के पास भी समय नहीं। किसी से भी बात करने के लिए।ये एक किस्म का सवाल उठ रहा है जिसका जवाब हम सभी को मिल कर उठाना ही होगा।

ऐसे समय में जब तनाव और राष्ट्रीय समस्याओं के साथ जब हम अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर बात करने में नहीं हिचक रहे है। तो उस मौके पर एक लम्हा हमें जहाँ जीवंत बनाए रखता है, वही हमें तरोताज़ा भी रखता है।

श्रीमती भंडारी की कविताओं में पाठकों को बांधे रखने की क्षमता है वही ये रचनाएँ हमें आश्वस्त करती है कि सृजनात्मक होना हर व्यक्ति का लक्ष्य है, वह होता भी है लेकिन उसकी पहुँच और एप्रोच करने का तरीका उचित नहीं होता।

ये कविताएँ आम जीवन की कविताएँ है, जिनमें रसोई भी है और स्नेहसिक्त दुलार भी। कोई भी कह सकता है कि इन रचनाओं में उनका दर्द, उनकी अभिव्यक्ति समाई हुई है।

जैसे एक रचना में देखें तो

कई बार
जब तुम
मेरे पास नहीं होते हो...
तो भी न जाने क्यों
ये एहसास मुझ पर हावी हो जाता है
कि तुम यहीं कहीं हो
मेरे पास, बहुत पास।

अद्‌भुत तरह की अभिव्यक्ति किसी को भी अपना सा बना देने के लिए पर्याप्त है। सरल, सुकोमल और स्पन्दित करती रचनाएँ निश्चित ही पाठकों का स्नेह व विश्वास अर्जित करेगी।

इसी तरह एक अन्य रचना का शिल्प आकर्षित करता है

सुनो तो...
मुझे तुम्हारी पहली चाय का
दूसरा घूँट बनना है।
पहले घूँट में तो
सिर्फ चाय का परिचय होता है...

बल्कि कहूंगा कि ये कविताएँ, नए जमाने और नए मिजाज की रचनाएँ है। कवयित्री की उम्र पर न जाइएगा। न ही फोटो से कोई अंदाजा लगाइएगा। इस रचनाकार के भीतर रचनात्मकता इस कदर है कि पढ़ने वाला मुरीद हुए बिना रह न सकेगा।

नए शब्दों का प्रयोग हुआ है। हिंदी इंग्लिश के शब्दों का उपयोग अब प्रचलन में है।

अब इस रचना को ही देखते हैं

आज तुम को देखा फिर से
लगा वक्त थम गया
धड़कन रुक सी गई...

अनायास ये पंक्तियाँ पढ़ते समय बहुत वर्षों पहले लिखी अपनी ही पंक्तियाँ जेहन में कौंध गई

महबूब के शहर में
कदम रखते ही
खामोश लहरों ने
मचलना शुरू कर दिया।

संवेदनशील रचनाएँ जहाँ हमें अपना बनने पर उकसा रही है, वही हम ये भी महसूस कर रहे है कि ये रचनाएँ कहीं अपने आस-पास की है।

संग्रह में कुछ रचनाएँ छोटी है तो कुछ बड़ी। सब रचनाएँ

पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो कोई चित्रकार अपने ब्रश से किसी पेंटिंग से रंग भरता हुआ हमें अपने साथ देखे गए सपनों में साँझा कर रहा हो।

सुंदर और सार्थक कविताओं को प्रकाश में लाने के लिए कर्मठ, समर्पित और निष्ठावान प्रकाशक भाई संजीव कुमार जी को बधाई कि उन्होंने बहुत ही कम समय में रचनाकारों के बीच में अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया है। ये श्रीमती भंडारी का पहला कविता संग्रह है, जिसके लिए उन्हें बधाई व शुभकामनाएँ दी जा सकती है। अगले संग्रह में और मजबूत रचनाओं को पाठक जगत से अवगत कराएगी।

बारिश सी तुम

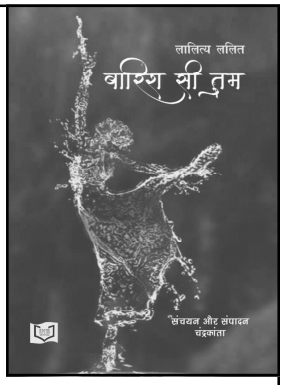

(बारिश सी तुम :
लालित्य ललित)

तुम भीगो रही हो
सिरे से
मुझे
अच्छा लगता है
मन करता है कि
झूम जाऊँ मैं भी इसी तरह
किसी फिरकी की मानिंद
जैसे गाँव के बच्चे पानी में खेलते दौड़ते चले जाते हो
याद है
तुम्हें वह दिन
जब दोनों किसी पेड़ की टहनी पर
बैठकर
पूरा-पूरा दिन बिता दिया करते थे
कभी गिलहरी को देखते
कभी दोनों अपने को निहारते
कितना सुकूँ था
उन दिनों में
जब बारिशें लगातार चलती थी
माँ तुम्हारी और बापू मेरे खोजा करते थे
हम उन्हें मिलते थे
आम के बगीचे में
आमों को खाते हुए
आज हम एक है
और हमारे अनेक है
कैसे बदल गया जीवन का ककहरा
वे रास्ते
वे मंजिलें
और हमारा नहीं बदला तो आशियाना
वही जज्बात
वही प्यार
और हमारी महोब्बतों का अलजेब्रा
यू ही भीगती रहना तुम
मेरे मन के आंगन में
मेरे बगीचे में
ऐसे ही
ढेर सारा प्यार
अकल्पनीय और अज्ञात सी भावनाओं के जैसा
सोचो और निहारो
बारिश की बूंदों को जो बदल गई हैं तेज बौछारों में
मुझे पसन्द हैं
वे मूसलाधार बारिशों की याद
जब किसी टपरी को खोजा करते थे
सुड़कते हुए चाय की तलाश में
क्या लम्हे
क्या बारिशों और वे महोब्बतें
आज भी दुगुना कर रही है
हमारी प्रेम की पींगे।

संपादक के मन लालित्य ललित की कुछ रचनाएँ

दिवाली का सन्नाटा : लालित्य ललित

दिवाली आने को थी पर लक्ष्मी जी कृपा किसी किसान के जीवन में सूखे सी पसरी पड़ी थी। पांडेयजी पैर और चादर में संतुलन बिठाने के लिए जोड़-घटा का महत्वपूर्ण जुगाड़ जमा रहे थे। जितना जोड़ जमाते उतना ही घाटा हो जाता। जोड़ घटा के सवालों को हल करने में पांडेयजी बचपन में मास्टर जी के सामने मुर्गा बनते रहे और आजकल परिवार के सामने बनते हैं। जब आठवीं में गणित की आंसरशीट में गलत जीरो लगा बैठे तो क्या पिटाई हुई थी, याद आते ही माँ कसम पूरे बदन में झुरझुरी दौड़ जाती हैं। यादें भी न जवानी में किसी प्रेमिका के लहराते बालों की तरह और बुढ़ापे में चुनाव हारे नेता की तरह आ ही जाती हैं। पांडेय जी तो वैसे भी पुराने विचारों के आदमी हैं इसलिए परिवार की खुशी के लिए हर जुगाड़ जमाने और त्याग के लिए तत्पर रहते हैं।

इसी बीच दफ्तर के चपरासी माँगेराम ने बिन माँगे ब्रेकिंग न्यूज दी साहब पे कमीशन की घोषणा हो गयी है।'

चादर पैर से बड़ी हो गई। पांडेय जी के जीवन में वसंत छा गया। अपने जीवन में वसंत छाए तो थोड़ा दूसरे के जीवन में छवाने का सुख दिल को दरिया कर देता है। पांडेय जी ने बीस रुपए की बख्शीश माँगेराम को दी और बोले यह ले चाय समोसे की ऐश कर।' माँगेराम ने जो सैल्यूट पांडेय जी को मारा वैसा वो बड़े साहब को भी नहीं मारता है। वैसे माँगेराम काम न करने की भी ऐश करता है।

पांडेय जी ने तत्काल पत्नी को ब्रेकिंग न्यूज दी, पत्नी ने बेटी को दी, बेटी ने छोटे भाई को दी और कमअक्ल छोटे भाई ने दादा-दादी को भी दे दी। सबको अपनी अपनी चादर बड़ी होने का सुख मिला। चादर पांडेय जी की बड़ी हुई थी और सुख...करियर और कुछ नगद नारायण की ब्रेकिंग न्यूज ने पांडेयजी उधार माता की शरण में भेज दिया। आज ऐश कर लेंगे और कल उधार चुका देंगें। त्योहारों पर क्या धाँसू सेल लगती है। सेल पर ऐसी भीड़ जमती है कि लगता है जैसे मुफ्त बंट रहा है। इस बार पांडेय जी भी धाँसू सेल लूटेंगें। त्यौहार का मजा त्यौहार आने से पहले हैं।

बाजार अपने यौवन पर था। बाजार ऐसा मंत्र है जिसके आगे बड़े-बड़ों की कापाल भारती अनुलोम विलोम करने में तब्दील हो जाती है। इसके साथ वोह फ्री, उसके साथ वोह फ्री। यह तो ऐसे ही हुआ, पत्नी के साथ साली फ्री और सास भी फ्री। कोई नहीं चाहता। पर फ्री तो जैसा भी हो झेलना ही पड़ता है। अब आप जिसे चुनाव में चुनते हैं, वह मंत्री बनता है उसके साथ फ्री मंत्री सुख उठाने वाले उसके परिवार को झेलना ही पड़ता है।

किसी को एक गाली दो तो दो सुनने को मिलती है। ऐसे ही हजार आने की उम्मीद हो तो लिस्ट दो हजार खर्चे की बनती है।

पांडेयजी के परिवार में लिस्ट अभियान चालू हो गया जैसे शांतता कोर्ट चालू होता है।

पत्नी की फरमाइश है कि इस बार दीवाली पर हीरे की अँगूठी लूंगी, उसने तो अखबार से वह पन्ना भी काट कर सम्भाल रखा है। अक्सर सरकारी कर्मचारियों की पत्नियाँ सपने ऐसे देखती है जैसे वे किसी अंबानी या अडानी के घर से सम्बन्ध रखते हो, यहाँ हफ्ते में खिचड़ी मिल जाए तो गनीमत है। वैसे भी महीना तो ऐसे निकलता है जैसे बरसात का पतनाला।

उधर बच्चे आएँ दिन फरमाइशों का आइना दिखाने लगे पापा, देखो न शिल्पा ने भी अब की दिवाली से पहले आई फोन ले लिया, आपने कहा था, इस बार पक्का से दिलवाऊँगा...पापा याद रखना दीवाली आने वाली है,बीस दिन बचे हैं। कल मोंटी भी बतला रहा था, अमेजन डाट

कॉम और स्नैपडील पर भी पैंतालीस परसेंट डिस्काउंट का ऑफर चल रहा है। पापा प्लान करो न। उधर पापा जी बनाम विलायती राम पांडेय कुछ सोच पाते कि गाँव से आई फरमाईशी चिट्ठी घूम गई। बुजुर्ग बाबू जी की थी, लिखा था बेटा, खुश रहो, हमारी दुआ है अपने परिवार को खुशी देने में कामयाब रहो, चीनू ने फोन पर बताया कि सरकार से इस बार बहुत बढ़ोत्तरी होने जा रही है...हमें कुछ नहीं चाहिए, हमारा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है। हम तो धोती कुर्ते वाले हैं। बस इस बार वक्त मिले तो अपनी माँ को शहर के अस्पताल में दिखा देना...। इनदिनों आँखों में तकलीफ रहती है। शेष कुशल बच्चों को प्यार तुम्हारा पिता बटेशर नाथ पांडेय।

बहरहाल दोस्तों का भी कहना क्या, वे भी कहाँ रुकते हैं, जब पेट फलक च्युट कर रहा हो, किसी अनाधिकृत बस्ती में बिजली की गैरकानूनी सप्लाई की माफिक, आती है तो क्या आती है अति हो जाती है और नहीं आती तो गली के नुक्कड़ पर खड़ा शर्मा का लौंडा कितना ही हीरो बन कर खड़ा हो, जोरदार पार्टी की प्रतीक्षा फील इन दी ब्लेंक्स पेश कर देता है।

पांडेय जी अक्सर इस प्रकार के आकस्मिक हमलों से खासे परेशान दिखते थे, पर अपना गुस्सा दिखा नहीं पाते थे। जबसे वोट देने लायक हुए हैं आश्वासन लेने देने की भाषा आ गई है। किसी क दिल न तोड़ते...। रामप्यारी से कहते, रामप्यारी जी, आपकी पसंद तो बड़ी चौखी हैं, बिलकुल लाएँगे न!

बात आई गई हो गई। रोज की जिंदगी में आम आदमी क्या खाएँ और क्या निचोड़े। रोज का यही नियम था। पांडेय का अपने पिता से स्नेह ऐसे ही था जैसे केंद्र सरकार का विरोधी पार्टी की राज्य सरकार से ं।

बेचारा भारतीय पति, नियम कायदे से बँधा है। आजकल पांडेय जी की आँखों से नींद ऐसे गायब थी जैसे किसी गरीब लेखक की रॉयल्टी पिछले पाँच बरस से नहीं मिली हो। कमाल की बात यह आजकल उसी का प्रकाशक उसी की किताब के बदौलत महंगी गाड़ी में इश्क फरमाता दिख रहा है। कागजों में उस गरीब लेखक की किताब गरीब ही रहती है।

इधर अँगूठी के इंतजार में रामप्यारी की उंगुली चिकनगुनिया के मरीज सी दर्द करने लगी थी। वह रोज बयान करती और पांडेय जी बापू के अंदर से बंद कान से सुन लेते। पर जब रामप्यारी का दर्द बंद कान के पर्दे फाड़ने लगा तो पांडेय जी भड़क गए तुझे सोलिटियर हीरे की अंगूठी चाहिए, मेरे ससुर की ज्वेलरी की शॉप हैं न!

यह परिवार का नियम है कि यदि पति एक के भाव से भड़कता है तो पत्नी दस के भाव से भड़कती है।

रामप्यारी ने, झट फरमान सुना दिया कि सुन लो, कान से या कान बंद हों तो वाटेवर जहाँ कहीं से भी सुन सकते हो वहाँ से, कह दिया तो कह दिया। इस बार लेनी है हीरे की अंगूठी। वरना।

यह वरना बड़े बड़ों की वाट लगा देता है। अंगूठी चाहे कम वजन की हो बात में वजन था। और पांडेयजी थे पुराने मूल्य के आदमी।

इधर मुहल्ले वाले बड़े खुश थे देखते हैं पांडेयजी की दीवाली, इस बार क्या गुल खिलाती हैं। वैसे भी पड़ोसियों को यही अच्छा लगता है किसी के फड्डे में टांग कैसे अढ़ाई जाए। बाजार में रौनक जरूरत से ज्यादा थीं। चाइना लाइट्स आँखों को चुंधियां रही थीं। सरकार के नियमों की अवहेलना करना हमारे व्यापारियों का जन्मसिद्ध अधिकार है। उनका असूल है, पैसा कमाना है और इसके लिए साम-दाम, दंड-भेद सब जाहिर हैं।

इधर पांडेयजी सोच रहे थे, वेतन आयोग पर सबकी निगाह हैं, मंत्रालय वाले खा के हजम भी कर गए, और एक वे हैं जो स्वायत्त संस्थान में है। उनका फरमान अभी आया नहीं। कैसे होगी दीवाली। क्या फीकी रहेंगी। क्या अंगूठी आएगी या नहीं आएगी। उनकी हालत बिलकुल वैसी थी जैसे पड़ोसी देश का कल्लू बड़े दिन से चिल्ला रहा हैं कि देखे कब तक डराते हो, परमाणु हमारे पास भी हैं। आये दिन

दोनों तरफों के टी.वी. चैनल्स ने तो लगभग हमला बोल ही दिया था। कई पार्टियों के मुखियाओं ने तो यहाँ तक कह दिया था, उस तरफ के कलाकार अपनी फिल्मों में लोगे तो बहिष्कार तो करेंगे ही, साथ ही पिटाई भी करेंगे। अजब लोकतंत्र था, जहाँ बोलने में हर किसी को डर लगता था। सब शेर थे, पर अपने-अपने घरों के।

दोनों तरफ से बयां बाजी अपने यौवन पर है। बाजार में माल पहले की अपेक्षा ज्यादा है। त्यौहार है, सो दुकानदारों को उम्मीद है, सामान निकलेगा ही। पर बाजार में मंदी हैं।

इधर घर में माहौल गर्म है। इस बार अंगूठी आएगी, बच्चों की माँगें कैसे पूरी होंगी, माँ बाबू जी को कैसे टरकाएंगे। अपनी तो पेंट क्या पायजामा भी नहीं आएगा। दोस्तों से कंजूस का सम्मान बिना शाल के मिलेगा। पांडेयजी का चिंतन विमर्श कर रहा था काश पैसे का पेड़ होता, जब चाहे हिला लेत, और झाड़ से पैसे टपक पड़ते। पर न तो पेड़ है, न पर्यावरण है, न वेतन आयोग की चिट्ठी आई हैं। स्वायत्त संस्थानों को। उनकी दिवाली बिलकुल वैसी मनेगी, जैसे अनार है तो उसमें रोशन करता मसाला गायब है, फुलझड़ी है तो वह सीली है, गीली है, माचिस और सूना सूना है मुहल्ला। कहीं से कोई आवाज नहीं, न पटाखे की, न मिठाइयों की। कोई नहीं कह रहा कि हैप्पी दिवाली। जैसे सबको साँप सूँघ गया हो। यह दीवाली का साँप था। साँप तो साँप है। डरना तो पड़ेगा। बहरहाल यह महँगाई का साँप हैं। विलायतीराम पांडेय पिछले कुछ दिनों से चुपचाप थे। कम बोलते थे, सुनते ज्यादा थे। शाम होते ही अपने घर लौट आये थे। आज उनके हाथ में एक झोला था, उसमें बढ़िया वाले पटाखे थे, मसलन अनार, फुलझड़ियाँ, पटाखों की लंबी लड़ी। मिठाई का महँगा डिब्बा। पत्नी की पसंद के रसगुल्ले, बिटिया की पसंद की बालूशाही और छुटकू के काले वाले जामन। सुनार का एक पैकेट, बच्चों के ढेरों उपहार। अपने लिए पायजामे का पैकेट भी। सबके चेहरे पर खुशियाँ ऐसे दौड़ने लगी हो, जैसे हॉट सीट पर सीधे बिग बी ने मुलाकात का समय तय कर दिया हो।

किसी ने यह नहीं पूछा कि ऐरियर मिल गया क्या?

रामप्यारी ने तपाक से झोला उनके हाथ से ले लिया और अँगूठी देखते ही अप्रत्याशित प्रेम बिखेर दिया। बच्चों का बाप का मूल्य समझ आया। समझदार पांडेय जी की गलती से एक पुर्जा बेटी के उपहार में चला गया। बेटी उपहार में मस्त थी और पुर्जा किसी गरीब के घर लक्ष्मी सा अनदेखा था। दिवाली वाले दिन पांडेय जी घर पर नहीं थे। घर में रौनक थीं। दीये जगमगा रहे थे। पर घर का मुखिया कहाँ था, किसी को मालूम नहीं। रामप्यारी की उँगली में हीरे की अँगूठी लश्कारा मार रही थीं। ऐसे लग रहा था, जैसे रामप्यारी की जवानी फिर से लौट आयी हो।

छोटा भाई, चोरी-छिपे दीदी के मोबाइल से खेलने के लिए हाथ मार रहा था। दीदी आ गई तो घबराहट में मोबाइल डिब्बे से बाहर गिर गया। साथ पर्चा भी। दीदी ने पहले गिरे मोबाइल को देखा, वह टूटने से बच गया था। फिर पर्चा उठाया, उसे पढ़ा। रोते-रोते माँ को दिखाया। उसके हाथ के तोते उड़ गए। उसने ऑटो किया और बच्चों समेत असपताल पहुँच गई। घर की खुशी के चलते अपनी एक किडनी का समझौता विलायती राम पांडेय ने कर लिया था। एक सेठ की बीमार लड़की की किडनी के बदले कुछ लाख रूपए में उसने अपने घर के लिए खुशियों को अपने घर में लाना कबूल किया था।

रामप्यारी ने आई सी यू के शीशे से झाँका। आई सी यु में विलायती राम पांडेय अनगिनत नलियों में लिपटा हुआ था। खून नली से होता हुआ कहीं जाता दिख रहा था। मुँह पर ऑक्सीजन लगी हुई थी।

बाहर दीवाली के पटाखे धड़ाधड़ बज रहे थे पर आई सी यू में एक चुप्पी थी। रामप्यारी ने देखा, पांडेय जी के चेहरे पर परिवार की खुशी की लड़ियाँ चमक रहीं हैं और रामप्यारी के हृदय में अंधेरे का सन्नाटा पसर रहा है।

पांडेयजी चैनल और अंतरराष्ट्रीय सीमा

लालित्य ललित

कल की खबर। पड़ोसी देश ने हमारी सीमा में घुस कर हमको ललकारा। हम क्यों चुप बैठते। सुनने में आया वे ट्रकों में ईंटें भर कर लाए थे। हमारा सम्मान किया। पहले तीन घायल। फिर सत्रह। इतने अपमान को सह न सकें। बीस ने विजय प्राप्त की। उनके भी चार दर्जन वीरगति को प्राप्त हुए।

पांडेय जी ने सोचा कि क्या होगा! समय और जमाने का! पांडेय जी के पिता जी लच्छु मल पांडेयजी ने कहा,' बेटे क्या होगा! विपदा आने वाली है। हमारे टाइम भी हुआ था। 62 में भी शोर था। खिड़कियां बन्द कर दी जाती। रोशनी बन्द कर दी जाती। खिड़कियों पर कागज चिपका दिए गए ताकि रोशनी बाहर न जाएँ नहीं तो दुश्मन आक्रमण कर देता। मैंने रामप्यारी से कहा है कि राशन पानी ले आयें, दो एक महीने का।

पांडेय जी ने कहा पिता जी। जो होगा उसमें राशन पानी भी आपका धरा का धरा रह जाएगा। आप इस बात को ऐसे लीजिये, दो रोटी की जगह टक्कर दें, सलाद बन्द कर दें, मीठे की चाह छोड़ दें, पर जी खाने के बाद हाथ झाड़ देते है कि मीठा है क्या! जब ये विपदा आने वाली है तो आपको भी लगाम लगानी होगी ये नहीं कि जीभ को चस्के की आदत पड़ गई है।

लच्छु मल पांडेयजी का मुँह बन गया, ऐसे जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन की अनुदान राशि अमेरिका ने बन्द करने की घोषणा कर दी हो। पांडेय जी से मुँह बना कर लच्छु मल जी अपने कमरे में चले गए।

पांडेय जी ने चीकू से कहा उठ जा, भाई। क्या पढ़ाई में करूंगा! ये जो ऑन लाइन की पढ़ाई है, स्कूल वाले कोई मुफ्त में नहीं पढ़ा रहे, देखो अभी मेल आया है कि जून की फीस जमा करवा दो।

चीकू ने कहा "स्कूल हमारे बन्द है, जा नहीं रहे तो पैसे किस बात के?"

स्कूल की टीचर्स और स्टाफ है,उनको सैलरी कहाँ से दी जाती है! वह सैलरी फीस से दी जाती है, बेटे पढ़ाई का मतलब समझ जाओ, समय से। लक्षण तो ऐसे लग रहे है जैसे साहबजादे राजनीति में आएँगे! सर्विस तो मिलने से रही! पढ़ाई करने के कोई लक्षण दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रहे!"

चीकू कुछ देर बड़बड़ाया। रामप्यारी से झन्नाटेदार थप्पड़ खाये, मुँह सजाया आटे के हलवे की तरह। दूसरे कमरे में चला गया।

इतने में किसी प्रकाशक मित्र का फोन आ गया। है जी, है जी से बात आगे बढ़ी कि बहुत बुरा समय है, भाई साहब।

पांडेयजी हाँ में हाँ मिलाते रहे। जब पक गए तो कहा कि देखो भइया मैं कोई चौनल नहीं देखता। इनको देखने से ब्लड प्रेशर बढ़ाने का कोई मन भी नहीं और न कोई इच्छा है।

हम्म!

वैसे क्या मानते है! कि चीन आक्रमण करेगा या नहीं! "प्रकाशक मित्र ऐसे सवाल दाग रहा था कि जैसे वह किसी चैनल का पत्रकार हो और मुझसे घर बैठे वह सवाल पूछ रहा हो और ये भी अपेक्षा करता हो कि मैं कोई नामी विद्वान हूँ अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों का और सही कहूँगा ही। हद है! ई-पुस्तक की बात शुरू की और जनाब कहाँ से कहाँ पहुँच गए। वही हुआ और दरीबा के दही भल्ले की बात शुरू की और चाँदनी चौक की आलू की टिक्की पर पहुँच गए। बिना खर्चा किए आभासित स्वाद लेने में वह बात नहीं आती जब तक आपकी उँगलियाँ चटनी में डूबी न हो और गोलगप्पे का

पानी आपकी जिव्हा को तीखा और चटपटा न कर दें।

बहरहाल पांडेय जी ने विदा लिया। उनके मन में द्वंद चल रहा था कि ये जनाब विदा लें और मैं लिखने के लिए समय समर्पित करूँ!

तभी राधेश्याम शर्मा का फोन क्या हुआ पांडेय जी! आज दफ्तर नहीं गए!"

अब पांडेय जी की बची कुची ऊर्जा का भी स्वाहा होना था, कहा कि आपको पता है हमारा काम आपको संचालित करना है यानी आपकी दही जमाना है और आपको चिल्ड बीयर पिलाना है।

शर्मा जी ने कहा, "आज तो खुश कर दिया।"

बात को समझना सीखिए साहब। हमारा काम है बिजली सप्लाई का। बिजली नहीं देंगे तो गर्मी में बजबजा जाओगे। उमस में नहाने पर मजबूर हो जाओगे। समझे न! इसलिए गर्मी में हमसे पंगे न लीजियेगा, दिमाग में बिठा लो। कहे तो एहसास करवा दूं!"

क्या पांडेय जी! आप तो हमारे मित्र है और अभिन्न भी। अच्छा-अच्छा फोन रखता हूँ। शुभ दिवस।

पांडेय जी मुस्कुराने लगे कि डर गए शर्मा जी।

रामप्यारी ने प्लेट में तरबूज दिए और कहा "लीजिये बच गए हैं। क्या सड़ तो नहीं गए! चीकू ने खाने से मना कर दिया।"

पांडेय जी ने सड़ा सा मुँह बनाया और कि कहा अच्छा जाओ देख लेते हैं। पांडेय जी ने बच बचा कर सावधानी से सही वाला हिस्सा खाया और अंतर्मन कुमार ने कहा कि ऑल इज वेल, ऑल इज वेल। तभी पांडेय जी के दफ्तर वाले वाट्सप ग्रुप पर संदेशा आया। कि बिजली विभाग दो दिन कोरोना के चलते बन्द रहेगा।

है राम! ये कोरोना ऑफिस में भी आ गया, वह भी दबे पाँव! राम जाने और क्या होने वाला है! तभी लल्लू भईया ने फोन किया कि पांडेयजी हालात विकट है। कब क्या हो जाए! कुछ कहा नहीं जा सकता लल्लू भईया घबराए हुए दिखे फोन पर। पांडेय जी ने कहा कि घबराओ मत। सब ठीक होगा। ये संक्रमण काल है, जितना बच सकें, उतना ही अच्छा है सबके लिए।

लल्लू भईया से बात कर के फोन रखा ही था कि असन्तुष्ट कुमार का फोन आ गया।

पांडेयजी नमस्कार! कुछ पता चला!"

बधाई हो आप बाप बने और मैं ताऊ!

अरे ये नहीं। अब न तो अपनी उम्र रही और न ही ऊर्जा।

यानि बोल गए। पांडेय जी ने मुस्कुराते हुए कहा।

अच्छा मजाक हुआ। सुनिये वह अंग्रेजी वाली स्टेनो थी न जूली महतो।

हाँ, क्या हुआ?

अरे! वह कोरोना संक्रमित हुई। कल रात उसका निधन हो गया। भाई! मैं तो हफ्ते नहीं जाने वाला ऑफिस!

बी पॉजिटिव इन योर थॉट। नॉट इन कोरोना ओके माय स्वीटहार्ट।

असन्तुष्ट कुमार को दिलासा मिली। कहने लगे कि आप हर समय मुझे किसी रामबाण ईलाज से कम नहीं लगते। कितने मौकों पर आपसे एनर्जी मिलती है पांडेय जी ने कहा कि इट्स ओके। बिरादर डोंट वरी।

अचानक से पांडेय जी छज्जे पर आये और सोचने लगे।

परिस्थितियों के बावजूद
समय विकट से बदत्तर होने के कगार पर है
समंदर की लहरों में उछाल
मंडियों में मंदड़ियों के नखरे
कारोबारियों को नुकसान
अब सीमाओं पर टकराहट
कहीं राजनीति
कहीं रणनीति से होता हुआ
चुनाव की सुगबुगाहटें
ये क्या है!
क्यों है!
तापमान फिर अपने ही रिकॉर्ड ध्वस्त करता हुआ

गड़बड़ी के कारण फिर गरीब मरता हुआ
आज तक कोई पैसे वाला
इलाज के लिए नहीं मरा है!
सोचने की बात है
ये भी सही है कि मृत्यु शाश्वत सत्य है
किसी का जाना हम कुछ देर को रोक सकते है
पर टालना सम्भव नहीं
हम जो भी करते हैं
उसका परिणाम जानते भी हैं
लेकिन कर जाते है
अब वह नाटक हो या सम्बन्धों में सेंध
दुनिया के मायने बदलना हर कोई चाहता है
पर खुद को
बदलना नहीं
काश वह दिन भी आये जब
हम ये कह सकें कि हमें इतनी शक्ति है
कि हम मुकाबले का सामना करने में सक्षम है
पर साहब
हमें अपने गाल बजाने से ही फुरसत कहाँ मिलती है
दूसरी बात
यदि गॉल ब्लेडर खराब हो
ऑपरेट कर दिया गया हो
तो कढ़ी का उतना ही आनंद लें
जितना एक हद तक आवश्यक हो
वरना परिस्थितियों से लड़ना कौनो जंग बराबर है
बात दिल से कही
दिमाग पर आई
आप भी सोच लीजिये
प्रकृति और संस्कृति से कभी खिलवाड़ न कीजिएगा
अगर किया तो
आप गए
हमेश के लिए...

तभी चीकू को डाँटते हुए पांडेयजी ने कहा एक बात बताओ यार तुम अक्ल से भी पैदल और दिमाग से भी।

काहे पैंसिलों को निकाल कर बिस्तर पर फैला दिया। ये समय दुबारा से लौट कर नहीं आएगा, आई बात समझ में। तभी टेलीविजन पर समाचार। न्यूजीलैंड से हफ्ते पहले कोरोना चला गया था और वह दुबारा से आ गया। हद है, नालयक कहीं का, जाहिल। कितना अपमान किया और कितनी गालियाँ दी, मजाल है कि उसे वापिस आना था।

कल्लू कालिया थोड़े है जो चमन की लौंडिया को छेड़ने से जो पीटा, वह आजतक गाजियाबाद से गुरुग्राम लौटा ही नहीं। राधेश्याम शर्मा ने भी कस कर धौल जमाया था, नालायक की पीठ पर। नालायकी की भी सीमा होती है। जब से कोरोना पसरा है, तब से कईयों की दुकानें बन्द हो गई। कुछ के बुटीक के धंधे बन्द हुए तो भाई लोगों ने पीपीई किट बनाने शुरू कर दिए।

पांडेय जी सोच रहे हैं कि क्या होगा देश का! एक तरफ बच्चों का भविष्य और दूसरी तरफ लड़कियों को ये चिंता कि उनका बाबू कहीं पलायन कर गया तो कहाँ से लाएंगी! कनाट प्लेस खुला तो कस्टमर नहीं। मेट्रो अभी चालू नहीं। दुकानों के सेल्सबॉय नदारद। अब मालिक ही सेल्समैन बने हुए हैं। शाम को टेलीविजन बता रहा है। एक तरफ पड़ोसी देश ने कैसे देश की सीमा का अतिक्रमण किया और कितनी आगे आ गया। हद है उसकी ये हिम्मत कैसे हुई! कैसे आ गया!

रामप्यारी ने कहा, सुनिये पांडेय जी, ज्यादा ब्लड प्रेशर को तूल मत दो, रफ्तार पकड़ ली तो काबू में न आ पायेगा। समझे न! आजकल वैसे भी अस्पतालों में मरीज कम कोरोना संदिग्ध ज्यादा हैं। दिखाने जाओगे और...।

न चीकू के पापा, मेरे बच्चों का एक कमाऊ पिता है, मैं न जाने दूँगी।

अच्छा ओपी को फोन कर देती हूँ, तीन महीने का राशन डलवा लेती हूँ। पता नहीं कल क्या सुनना पड़ जाए!

मँगवा लो,

इतने में पांडेय जी के पिता जी भी बोल पड़े, मेरा भी

च्यवनप्राश मँगवा लेना, कहते हैं इम्युनिटी बनी रहती है!

मँगवा देते है।

एक तरफ पांडेय जी सोचने लगे कि जित्ते भी चैनल है उनको तत्काल प्रभाव से बन्द कर देना चाहिए। बेकार में आम-आदमियों के खोपड़े से खेलते रहते हैं।

रामप्यारी ने बताया, अभी कल की बात ले लो, छुट्टन मियाँ की गली के तीसरे नम्बर के घर की ऊपरी मंजिल पर घोष बाबू रहते है नए उनको कोरोना डिटेक्ट हुआ है।

अच्छा! तुम्हें कैसे पता चला?

अरे! ख़बर रखनी पड़ती है। अभी सरला बहनजी ने किट्टी ग्रुप में मेसेज दिया।

ओह! ये बात है। पांडेय जी बड़बड़ाए।

अजी सुनिये! आप भी छुट्टी लेकर घर बैठो। बचे रहोगे। ऑफिस में कितने लोग मिलते है, राम जाने कोई गड़बड़ हुआ तो ले बैठेगा, कईयों को।

बात तो सही है। पर सरकारी दफ्तर क्या बनिए की दुकान है? बात करती हो। जाओ जल्दी से खाना पैक कर दो। आज जाना है।

ठीक है, गुस्सा काहे कर रहे हो। रामप्यारी बड़बड़ाती किचन की ओर प्रस्थान कर गई।

ये चैनल वालों को सच्ची कोई काम नहीं। सभी चिल्लाने वाले पत्रकारों को बॉर्डर पर भेज दें, पता चल जाएगा कि देशभक्ति टेलीविजन पर चिल्लाने से नहीं होती। उन सिपाहियों से पूछिये कि कैसे गोली सर्रर से आती है और कनपटी झट से लाल! अपने आप ही पांडेय जी बड़बड़ाए जा रहे हैं। मानो सारा मीडिया उन्हें लाइव देख रहा हो। बहरहाल लाइव इत्ते हुए जा रहे है कि लगता है कि भई कर लो, तुम भी बुकर पा जाओगे। आजकल होता क्या है जो अनर्गल बोल जाता है तो सुर्खियों में आ जाता है।

ये तो है, भईया। अंतर्मन कुमार ने कहा। पांडेय जी कूलडाउन। देखो अभी लंच का समय हुआ है। भाभी ने जो खाना बनाया है, उसका सम्मान करते हुए आगे बढ़ो। चर्चा उसके बाद भी हो जाएगी। पांडेयजी कूल डाउन। सीमाएं कई तरह की हैं। नम्बर वन तेलीराम की मँझली लड़की सीमा, जिसका चक्कर छेदी के लौंडे पिन्टू से चल रहा है। नम्बर दो हमारे गाँव के पार वाली सीमा, अरे वही गप्पू के मौसी की मुटेल, जिसका ब्याह न हो रिया। वही तो...नम्बर तीन अपने बिजली विभाग की सीमा जिसका चक्कर गणेश से चला और वह इस टूर्नामेंट में कई बार पिटने के बाद भी हारा नहीं।

अंतर्मन की बात सुन कर पांडेय जी के कलेजे को ठंडक पड़ी। तभी फुरसत में बैठे कि इन्हें समझ में आया कि क्या देखे और क्या नहीं! मसलन टेलीविजन से है। एक तो कल मुसद्दी बतला रहे थे कि चैनल्स सारे बिके हुए। क्या देखें, क्या नहीं। मैंने तो भइया आजकल पुरानी फिल्मों को देखना शुरू कर दिया है, क्या कहानी और क्या म्यूजिक होता था और आजकल की फिल्मों में तमाशा है बस। कल कोई बता रहा था कि बेबी सीरीज में वोह सब दिखाया दिया जाता है बेटे जो सड़क किनारे पन्नी वाली रंगीन किताबों में जवानी के रहस्यवादी दृष्टिकोण को इस कदर उजागर कर दिया जाता है कि बच्चों के साथ बुजुर्गों के थर्रामीटर का पारा खटाक से ऊपर को बढ़ जाता है।

नया जमाना है आप और हमारा कहाँ!

जो किसी फुस्स एटम बम की तरह आजकल निष्क्रिय पड़े है, बात करने वालों में रामकिशन पुनिया और कल्लू कालिया के चाचा रामभरोसे शामिल थे।

सरकार भी कुछ न करती। कहती है सबका साथ, सबका विकास। मैं तो कहता हूँ सरकार कोई ठोस कदम उठाएँ और लुच्चगिरी सामान का बहिष्कार किया जाये। क्या परोस रहे हैं!

तभी चिलमन ने कहा कि "सरजी, आज तो आपका लाइव प्रोग्राम है न! चलो, चलो। ड्राइंगरूम में, सब सेट। कुर्सी ओर किताबें टेक दी, बगल में पेन, गर्म पानी का एक कप और परिचय पत्र का पुलिंदा और हाँ, हाँकने वाले लेखकों की सूची। पिछली बार आपने कुछ का नाम लिया

और कुछ का छोड़ दिया, इस बार ऐसे न करना। संगी साथी है बुरा मान जाते हैं। पांडेय जी ने कहा, "टीम वर्क की तरह तुम मेरा कितना ख्याल रखते हो! इसी बात पर जादू की झप्पी।" चिलमन इसी बात पर खुश हो जाता है कि चलो इसी बहाने सरजी ने याद तो किया। पांडेय जी घर पर। उमस है। जाए तो जाए कहाँ। बाहर गर्मी। भीतर ज्वालामुखी। दफ्तर बढ़िया रहता है। टाट पर एसी और चिल्लाने को बुक्का फाड़ गला। ले आ भाई चाय। जब से कोरोना का संक्रमण फैल गया जमाने में, उस्ताद जी का खर्चा बच गया। न समोसे न पकौड़े और न कोई चट माल। जिसे देखो वह बचने में लगा है। कल कोई बतला रहा था कि एक डाक्टर और गए। दिल्ली में कोरोना ने तीन डॉक्टरों को लपेट लिया और विपक्षी इस मौके पर कि इनको भी एक करोड़ राशि पीड़ित परिवार को मिलनी चाहिए।

राम जाने क्या होगा! क्या नहीं!

तभी घंटी बजी।

चीकू देखना कौन आया!

आप देख लो, मैं काम कर रहा हूँ।

पांडेय जी ने कल्लू कालिया सा मुँह बनाया और दरवाजे पर चले गए। वहाँ डाकिया था डाक लाया था।

पांडेय जी का नया व्यंग्य संग्रह आया था 'साहित्य के लपकुराम।' क्या नाम था, डाकिए को खुश होकर पांडेय जी ने पाँच रूपये दिए और कहा। ये लो, बेटे आज ऐश करना, तुम भी क्या याद करोगे कि इस माहौल में भी कोई कैश देने वाला मिला!" डाकिए ने बवासीर के संक्रमण सा मुँह बनाया और वहाँ से मन ही मन अनेक सड़क छाप गालियों को संरक्षित करता हुआ प्रस्थान कर गया।

पांडेय जी ने पैकेट खोला। किताब निकाल कर सेल्फी ली और नीचे कैप्शन दिया पांडेय जी का नया व्यंग्य संग्रह "साहित्य के लपकुराम" नया व्यंग्य संग्रह।

अंतरराष्ट्रीय सीमा हो या छज्जू की बिटिया सीमा उसको बाद में देख लेंगे।

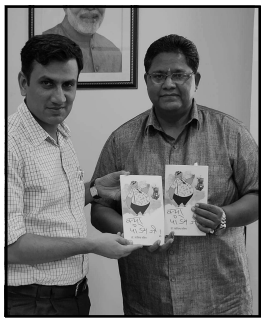

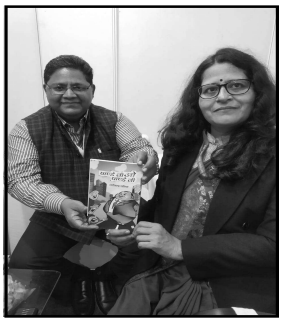

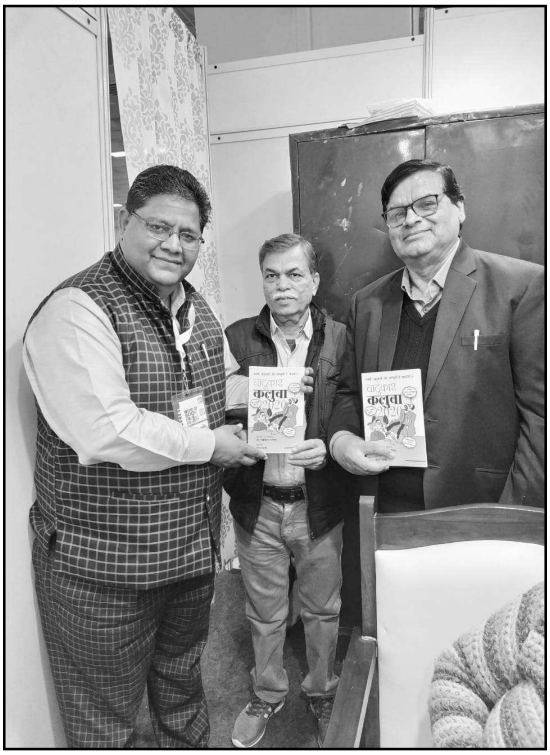

थैंक्यू कोरोना बनाम काम के गुलाम

डॉ. श्याम सखा श्याम

प्रिंसिपल श्रीवास्तव, जी प्रिंसिपल राजेन्द्र श्रीवास्तव बड़े कड़क, सिद्धांतवादी व्यक्ति हैं। लेकिन मेरे लिए तो वह राजू मेरा लंगोटिया यार ही है। जी मैं कौन? मैं श्याम पेशे से छाती रोग चिकित्सक कुछ साल पहले मेडिकल कॉलेज से रिटायर हुआ हूँ। किस्मत की बात है हम दोनों यहीं एक मोहल्ले में जन्मे पीला पढ़े बढे यहीं नौकरी की, रिटायर होकर भी पडोस में रह रहे हैं। शाम को दोनों की शतरंज जमती है। आज हम दोनों चाय पी रहे थे, राजेन्द्र बहुत खुश था बोला "यार मेरा बेटा मुकुल कलयुग का श्रवण कुमार है।" मुझे सुन कर थोड़ा आश्चर्य हुआ। आप कहेंगे क्यों? अस्ल में बात यह है कि श्रीवास्तव साहिब एक महीना पहले तक, अपने इकलौते इंजीनियर बेटे का नाम लेना दूर सुनना भी नहीं चाहते थे। हुआ यूं कि आइ आइ टी से इंजीनियरिंग क्र उनका इकलौता बेटा अमेरिका चला गया था। श्रीवास्तव जि की धर्मपत्नी भाभी विभा इस बात से दुखी रहती थी, लेकिन श्रीवास्तव जी कहते थे विभा पंछियों के बच्चे भी तो पंख आते ही उड़ जाते हैं तो मुकुल को भी शिक्षा के पंख लग गये तो क्या गलत हुआ? अच्छी नौकरी थी मुकुल की हर साल टिकट भेजता दोनों पति पत्नी अमेरिका जाते खूब सैर कराता था मुकुल अमेरिका ही नहीं कनाडा मेक्सिको, इंग्लेंड व योरप के कई देशों की सैर करवाई थी उसने माता पिता की। फिर अमेरिका में ही नौकरी कर रही अपनी जुनिए लड़की से विवाह कर बैठा। श्रीवास्तव जी को इससे भी कोई दुःख नहीं हुआ मगर विभा भाभी मन मसोस कर रह गई थी। कितने सपने पाले थे उसने मुकुल का विवाह धूमधाम से करने हेतु। सब धरे के धरे रह गए थे। मुकुल विवाह कर जब आया तो श्रीवास्तव जी ने बढ़िया रिस्पेशन दी थी। जो पाठक नहीं जानते उन्हें बतला दूँ कि कायस्थों में अभी भी दहेज़ प्रथा है और उनमें क्या भारत में सभी जातियों में दहेज़ विरोधी कानून के बावजूद यह बुराई चली आ रही है। विभा भाभी के भाइयों को खूब दहेज मिला था लड़कों के विवाह में। पर यह तो बिना दहेज़ की शादी थी जिसका अफ़सोस भी था भाभी को। लेकिन बहू आलिना अच्छा कमाती थी जाते जाते सास ससुर को हौंडा सिटी ऑटोमेटिक कार दे गई थी।

राजू शुरू से घुमक्कड़ रहा है नई गाडी ने उसे पंख लगा दिए थे। इस बुढौती में मेरठ से मुंबई गोवा तक गाड़ी दौड़ा आया था। लेकिन एक दिन दिल्ली जाते हुए एक ट्रक की चपेट में आ गया। उसे खुद तो थोड़ी चोट लगी लेकिन भाभी बहुत ज्यादा चोटिल हो गई थी। मैंने ही फोन पर सूचना दी थी मुकुल को।

फोन पर मुकुल ने कहा था मैं पैसे ट्रान्सफर कर रहा हूँ आप उन्हें बेस्ट अस्पताल में दाखिल करवा दें।

जब मैंने पूछा तुम कब आओगे? तो वह चुप हो गया कुछ रुक कर बोला अंकल मेरा। आलिना का आना तो संभव नहीं होगा क्योंकि हमने स्टेट्स चेंज यानी ग्रीन कार्ड की एप्लीकेशन दी हुई है जब तक उसका निर्णय नहीं आता, अगर हम अमेरिका से बाहर आ गये तो हमें ग्रीन कार्ड नहीं मिलेगा और बिना ग्रीन कार्ड यहाँ नौकरी नहीं कर पायेंगे। यानी नौकरी छूट जायेगी। मैंने यह बात अस्पताल बिस्तर पर पड़े श्रीवास्तव जी से कई दिन छुपाई कहता रहा कि छुट्टी मिलते ही आयगा। लेकिन एक दिन बतानी पड़ी।

उस दिन के बाद श्रीवास्तव जि ने मुकुल से नाता तोड़ लिया। वे तो ठीक होकर बाहर आ गये थे लेकिन पत्नी लगभग तीन महीने अस्पताल में रही और वहीं बेहोशी में

ही उसकी मृत्यु हो गई थी। हालांकि विभा की मौत से एक सप्ताह पूर्व मुकुल और उसकी पत्नी को ग्रीन कार्ड मिल गया था और वे आ गए थे। लेकिन राजेन्द्र ने उनसे बात करने की इन्कार कर दिया घर में भी घुसने नहीं दिया। मुकुल व उसकी पत्नी होटल में रुके रहे रोज अस्पताल आते पिता के आगे हाथ जोड़ते कुछ बोलते इससे पहले राजेन्द्र दूर चले जाते। मुकुल को मुखाग्नि भी नहीं देने दी थी उसने। थक हार कर मुकुल चला गया था। वो उन्हें फोन करता मगर वे जवाब नहीं देते थे। मुकुल मुझे फोन करता रोता रहता। मैंने समझाने की कोशिश की लेकिन राजेन्द्र नहीं माना अंत में उसने मुझे धमकी दे डाली थी कि मुकुल का जिक्र किया तो दोस्ती खत्म। मैं चुप हो गया था।

लगभग एक महीने पहले श्रीवास्तव जी इस मुए कोरोना की चपेट में आगये थे। हालात गम्भीर होते देख डाक्टरों ने उन्हें दिल्ली एम्स में रेफर कर दिया था। मैं उन्हें भरती करवा कर लौट आया था क्योंकि उनके पास जाने की तो इजाजत थी ही नहीं। घर लौट कर मैंने मुकुल को फोन किया तो वह बोला मैं पहली फ्लाइट से आ रहा हूँ अंकल, मैंने कहा भी कि शायद तुम्हारे पिता तुमसे न मिलना चाहें।

वह बोला देखा जायगा मैं आ रहा हूँ

आप अभी उन्हें मत बताएं। जब तक मुकुल आया श्रीवास्तव जी बेहोश हो गए थे वेंटीलेटर पर थे, मुकुल उन्हें दिल्ली के सबसे बड़े प्रसिद्ध प्रायवेट अस्पताल में ले गया। रात दिन सेवा में लगा रहा, उसकी मेहनत सेवा समर्पण काम आया। जब श्रीवास्तव जी को होश आया तो उन्होंने पूछा मैं कहाँ हूँ? डाक्टरों के बताने पर कि वे फलां अस्पताल में हैं द्य तो उन्होंने पूछा मैं तो एम्स में था यहाँ कैसे आया?

आपका बेटा आ गया था अमेरिका से वही लाया और लाख मना करने पर भी वह आपके कमरे में हो सोता था। हमने कहा भी कि आपको कोरोना हो सकता है पर वह नहीं माना। अब कहाँ है मुकुल? जी पिताजी यहाँ बेड के पीछे खड़ा मुकुल बोला। फिर उसने आगे बढकर उनके पाँव छुए। वे ठीक हो गए थे घर आ गए थे।

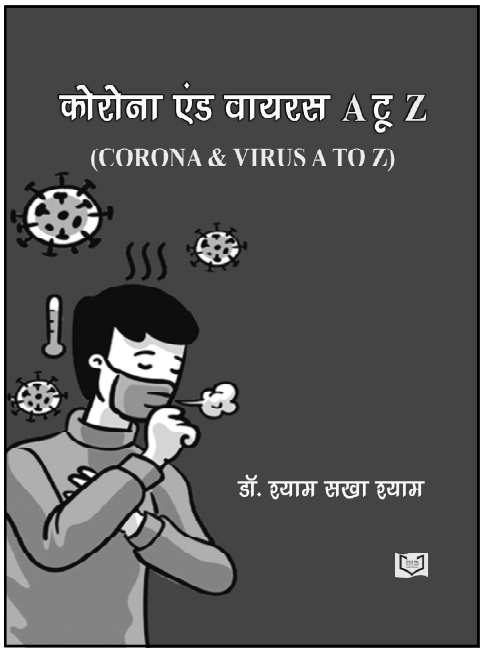

और हम अब चाय पी रहे थे उनके घर पर वे कह रहे थे 'श्याम भाई सचमुच मुकुल कलयुग का श्रवण कुमार है जिस वक्त लोग डर के मारे कोरोना पीड़ित माँ, बाप या बेटे तक की लाश का दाहकर्म करने भी नही जाते उस जमाने मे पता लगते ही 24 घण्टे में अमेरिका से आ गया मेरा बेटा।

और रात दिन सेवा कर के बचा लिया मुझे। परमात्मा ऐसा बेटा सब को दे।

चाय पीकर मैं घर जाने हेतु निकला तो मुकल बाहर तक छोड़ने आया। मैंने उससे कहा बेटा बहुत बहुत धन्यवाद जो तू फोन सुनते ही आ गया।

मुकुल बोला अंकल धन्यवाद के अधिकारी तो आप और कोरोना हैं। आप फोन न करते तो कैसे पता लगता और इस रुकोरोना के कारण वर्कफ्रॉम होम चल रहा है जिसकी वजह से ही तो मैं आ सका वरना अमरीका में इतनी जल्दी छुट्टी कहाँ मिल सकती थी अब तो मैं अस्पताल में भी और यहाँ भी काम कर रहा हूँ। जी वर्क फ्रॉम होम, वरना अमेरिका में तो हर कोई काम का गुलाम है।

ग़ैर हाज़िर कंधे

प्रभात शुक्ला

आमोद का जन्म एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता अध्यापन से जुड़े हुए थे। आमोद तीन भाई और एक बहन थे। पिता का अध्यापक के रूप में कानपुर में काफ़ी सम्मान था। मूल रूप से वो कन्नौज के रहने वाले थे लेकिन जीविका के लिए कानपुर आकर बस गए थे। पिता ने अपने सिद्धान्तों से समझौता किए बिना अपना मकान भी कानपुर में बना लिया था। आमोद इसी मकान में अपने माता पिता, दोनों भाइयों एवं एकमात्र बहन के साथ रहते थे।

पिताजी चूँकि शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े थे अतः उन्होंने अपने सभी बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने का प्रयास किया। संस्कारी परिवार होने के कारण सभी बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त करके बड़े पदों पर आसीन हो गए। आमोद भी प्रशासनिक सेवा में नियुक्त होकर दिल्ली आ गए। धीरे धीरे समय बीतता चला गया पिता ने सामर्थ्य अनुसार सभी बच्चों का विवाह उच्च कुलों में कर दिया। समय के साथ सभी पुत्र एवं एकमात्र पुत्री देश के विभिन्न शहरों में अपने परिवार के साथ बस गए। आमोद ने भी दिल्ली में अच्छे इलाक़े में मकान ले लिया। पत्नी सुशील ग्रहणी थी अच्छा वक्त गुजर रहा था। शादी के दूसरे वर्ष में उनको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। आमोद की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। सयुंक्त परिवार में पले बड़े होने के कारण परिवार से बड़ा लगाव था अतः पत्नी एवं नवजात पुत्र को लेकर माता पिता के पास कानपुर पहुँच गए। दोनो भाइयों एवं बहन को भी परिवार के साथ कानपुर बुला लिया। परिवार में बहुत समय के बाद छोटे बच्चे का आगमन हुआ था इसलिए धूमधाम के साथ परिवार और मित्रों के साथ उत्सव मनाया गया।

सभी लोग ज़िम्मेदारी के पदों पर आसीन थे अतः दो दिन साथ में व्यतीत करने के बाद सब लोग अपने अपने शहर चले गए। आमोद भी दिल्ली वापस आ गए। व्यस्तता बढ़ती गयी लेकिन आमोद अपने पिता, माँ, भाइयों और बहन से सम्पर्क में रहते थे। तीन वर्ष के उपरांत दूसरे पुत्र के आगमन से आमोद बहुत प्रसन्न थे। व्यस्तता के कारण सभी का इकट्ठा होना सम्भव नहीं हो पाया लेकिन आमोद अपनी पत्नी एवं दोनो पुत्रों के साथ माता पिता से मिलने कानपुर पहुँच गए। माता पिता तो वंश बेल देखकर आलहादित हो रहे थे। कुछ दिन रह कर आमोद दिल्ली आ गए और अपने काम में व्यस्त हो गए। आमोद हमेशा समय निकालकर माता पिता से मिलने कानपुर जाते रहते थे। कई बार दीपावली और होली में भी कानपुर चले जाते थे। दोनो पुत्र स्कूल जाने लगे थे पढ़ने में दोनो बच्चे बहुत तेज थे और कक्षा में प्रथम पाँच में रहते थे। अच्छे अंकों के साथ बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करके बड़े पुत्र का चयन मेडिकल में हो गया और देश के प्रतिष्ठित मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल गया।

दो वर्षों के उपरांत छोटे पुत्र का चयन आई आई टी में हो गया। देखते देखते बड़े पुत्र ने अच्छी श्रेणी में मेडिकल की परीक्षा उत्तीर्ण करी और पिता से एम डी करने के लिए अमेरिका जाने की इच्छा व्यक्त

की। आमोद ने पुत्र को निराश नहीं किया और पैसो की व्यवस्था कर के उच्चतम शिक्षा के लिए अमेरिका भेज दिया। एक वर्ष के बाद छोटे पुत्र ने आई आई टी से ग्रैजूएशन पूर्ण किया और पिता से पोस्ट ग्रैजूएशन के लिए विदेश जाने की इच्छा व्यक्त करी। अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होने के कारण अमेरिका की कई यूनिवर्सिटी ने छात्रवृत्ति की पेशकश की। आमोद जी की छवि ईमानदार अधिकारी की थी। बड़े बेटे को विदेश भेजने के उपरांत आर्थिक स्थिति दूसरे पुत्र को विदेश भेजने के लयक नहीं थी। फिर भी उन्होंने ऋण लेकर छोटे पुत्र को भी विदेश भेज दिया। अब दोनो पति पत्नी अकेले रह गए थे। बच्चों से सप्ताह में एक दो बार बात हो जाती थी। उधर आमोद के माता पिता की उम्र बढ़ रही थी।

उनको देखभाल की ज़रूरत थी। आमोद की पदोन्नति हो गयी थी उत्तरदायित्व बढ़ गया था इसलिए कानपुर जाकर रहना सम्भव नहीं था। माता पिता को वो अपने पास दिल्ली ले आए। आमोद और उनकी पत्नी पूर्ण समर्पण के साथ उनकी सेवा करते रहे। एक दिन माँ की तबियत ख़राब हो गयी। आमोद ने उनको शहर के अच्छे अस्पतालमें भर्ती कराया। माँ अस्पताल क्या गयीं बीस दिन रहने के बाद उनका पार्थिव शरीर ही वापस घर आया। सभी भाई बहन और उनके बच्चे माँ के अंतिम दर्शन के लिए दिल्ली आए लेकिन उनके पुत्र विदेश से नहीं आ पाए।

क्रिया कर्म के बाद सब लोग अपने अपने घर चले गए। माँ के जाने के बाद पिता जी भी टूट गए। कई बीमारियों ने उनको पकड़ लिया। इसी बीच आमोद के दोनो पुत्रों की विदेश में बड़े प्रतिष्ठानो में नियुक्ति हो गयी। लोग आमोद को बहुत भाग्यशाली मानते थे की उनके बच्चे अमेरिकी प्रतिष्ठानों में मोटे वेतन पर कार्यरत थे। स्वयं आमोद भी गौरान्वित महसूस करते थे। पत्नी अमेरिका बस गए बच्चों से मिलने की इच्छा व्यक्त करती थी। लेकिन आमोद के दोनो पुत्र व्यस्तता का हवाला देकर आने में असमर्थता व्यक्त कर देते थे। अपने विदेश प्रवास के दौरान दोनो पुत्र एक बार ही अपने घर दिल्ली आ पाए थे। आमोद यदा कदा अपने डॉक्टर पुत्र से विवाह करने के लिए कहते रहते थे, लेकिन वह कोई ना कोई बहाना बनाकर टाल देता था। आमोद की पत्नी ने बड़े पुत्र के ऊपर विवाह के लिए दबाव डालना शुरू किया। एक दिन बातचीत के दौरान ज्येष्ठ पुत्र ने अपनी माँ को बताया कि वो अपनी एक सहयोगी जो पेशे से डॉक्टर है उसको पसंद करता है और उससे विवाह करना चाहता है। माँ पुराने विचारों की थी उसको एक बार तो ऐसा लगा कि जीवन की सभी आशायें समाप्त हो गयी हों। किसी तरह अपने को सम्भालते हुए उसने कहा कि ठीक है आज तेरे पापा से बात करूँगी। तुरंत ही उसने आमोद को बताया। आमोद ने अपने पिता से इस बारे में बात करो। सभी लोग मौन थे एक अजीब सा सन्नाटा छाया हुआ था। आमोद के पिता अनुभवी थे उनको मालूम था कि हाँ करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है इसलिए सब ने एक मत से मंजूरी दे दी। कुछ दिनों के पश्चात बड़े पुत्र ने शादी कर लेने की सूचना दी और कुछ तस्वीरें भी भेजीं। आमोद ने प्रसन्नता ज़ाहिर करते हुए आशीर्वाद दिया। लेकिन उनकी पत्नी तो जैसे चुप सी हो गयीं थी।

समय गुजर रहा था भरे मन से आमोद की पत्नी ने छोटे पुत्र से विवाह की बात शुरू कर दी थी। लेकिन बहाने बनाकर वो इनकार कर देता था। आमोद भी साठ वर्ष के हो गए और सेवा निव्रत हो गए। आमोद के पिता भी अस्वस्थ रहने लगे थे। एक दिन वो ऐसे सोए की सुबह उठे ही नहीं। सभी

को सूचना दी गयी आमोद के सभी भाई बहन आए लेकिन इस बार आमोद के भाई बहन के पुत्र-पुत्री व्यावसायिक व्यस्तताओं के कारण नहीं आ पाए। आमोद के दोनो पुत्रों ने भी इतने कम समय में आने में असमर्थता व्यक्त की। आमोद ने यथाशक्ति सभी संस्कार पूरे किए। भाइयों से कानपुर के मकान के बारे में बातचीत हुई सभी ने एकमत से बेच देने का फ़ैसला किया हालाँकि आमोद इससे सहमत नहीं थे। लेकिन द्रवित मन से सहमति प्रदान कर दी। आमोद के छोटे भाई की दो पुत्रियाँ विवाह योग्य थीं और उसकी आर्थिक स्थिति थोड़ी कमजोर थी अतः उन्होंने अपनी पत्नी से मशवरा करके अपना हिस्सा भी छोटे भाई को देने का फ़ैसला किया। कुछ दिनों में सभी लोग अपने अपने घर चले गए। आमोद का अपने पिता से बहुत लगाव था वो इस झटके से टूट गए। पिता के गुजर जाने के पश्चात् जैसे घर ख़ाली हो गया था। पूरा दिन व्यतीत करना मुश्किल होता था। कभी कभी विदेश में बसे बच्चों से बात हो जाती थी। उनकी बहुत इच्छा थी कि उनका एक पुत्र वापस आ जाए और उनके साथ रहे। लेकिन दोनों में से कोई वापस आने को तैयार नहीं हुआ। बड़े पुत्र ने अमेरिका आकर रहने की सलाह दी। छोटा पुत्र भी ऐसी सलाह देता रहता था। लेकिन आमोद की पत्नी इसके लिए तैयार नहीं थी। वैसे आमोद जी भी इसके लिए अपने को समझा नहीं पा रहे थे। फिर भी दोनो अमेरिका गए लेकिन वहाँ मन ना लगने के कारण जल्द ही वापस आ गए। दोनो ने दिल्ली स्थित अपने निवास में ही रहने का निर्णय लिया और एक दूसरे के साथ अपना समय व्यतीत करने लगे। पारिवारिक एवं व्यावसायिक व्यस्तताओं के कारण मित्र भी नहीं बन पाए थे। भाइयों एवं बहन के साथ भी सम्पर्क कम हो गया था। जीवन में एकाकीपन बढ़ने लगा था। समय के साथ बड़े पुत्र को एक पुत्री हुई। पुत्र ने संतान होने की सूचना के साथ फ़ोटो भेजी।पत्नी ने फ़ोटो देखी लेकिन मन मसोस कर रह गयीं। आमोद और उनकी पत्नी की बहुत इच्छा थी अपनी पोती को गोद में खिलाने की लेकिन सम्भव नहीं हो पा रहा था क्यूँकि व्यस्तता के कारण पुत्र आने में असमर्थता जता देता था।

इसी तरह समय गुजर रहा था कि तभी एक दिन आमोद के छोटे पुत्र ने अमेरिका में बसी एक भारतीय लड़की से शादी कर लेने की सूचना दी। माँ की तो जैसे सभी आशायें ध्वस्त हो गयीं। चोट बहुत गहरी थी और इस झटके से उबरना बहुत मुश्किल था। मन बुझ गया था। आमोद और उनकी पत्नी की मनस्थिति गम्भीर हो गयी थी। खुश रहने का कोई कारण वह नहीं ढूँढ पा रहे थे। आमोद के भाई एवं बहन भी उम्रदराज़ हो रहे थे और अपने बच्चों के साथ व्यस्त थे। उनसे भी अब सम्पर्क त्यौहारों में बधाई तक सीमित हो गया था।

जीवन में एकरसता सी आ गयी थी। पत्नी को उम्र के साथ आने वाली बीमारियों ने घेर लिया था। लेकिन आमोद पूरी मज़बूती के साथ अपना संयमित जीवन व्यतीत कर रहे थे। पत्नी को समय समय पर समझाते भी थे और विधि के विधान का वास्ता देते थे। इसी तरह जीवन गुजर रहा था। विदेश में बसे बच्चों से भी बातचीत कम हो गयी थी। घर के रोज़मर्रा के काम भी भारी पड़ने लगे थे। दिल्ली में होने के कारण घर के कामों के लिए सहायक रखने में भी बहुत डरते थे। घर का ज़्यादातर काम आमोद ही करते थे। पत्नी किसी तरह रसोई के काम कर लेती थीं। जीवन में कोई विविधता नहीं थीं बस जिए जा रहे थे। एक दिन रोज़ की तरह आमोद ने सुबह की चाय बनाई स्वयं पी, पत्नी को दी और टहलने के लिए निकल गए। लौटकर घर का दरवाज़ा खोला और पत्नी को आवाज़ दी। कोई

उत्तर नहीं मिलने पर ढूँढना शुरू किया तो देखा की पत्नी रसोई में ज़मीन पर पड़ी है और कातर निगाहों से आमोद को देख रहीं हैं। तुरंत पड़ोसियों की मदद से उनको अस्पताल ले ज़ाया गया। डाक्टर ने बताया की पत्नी को दाहिने अंग में लकवा हो गया है। आवाज़ भी चली गयी है बहुत समय लगेगा ठीक होने में। बच्चों को सूचना दी गयी। सबने दुःख व्यक्त किया। आने में असमर्थता ज़ाहिर की और फिर से अमेरिका आने की पेशकश की। ये भी कहा कि वो अगर भारत आते भी हैं तो ज़्यादा दिन नहीं रुक पाएँगे। आमोद को सलाह दी की किसी नर्स को रख लें। बारह दिन अस्पताल में रखने के बाद आमोद पत्नी को घर ले आए। एक नर्स का प्रबंध भी किया जो सुबह आठ बजे से सायं चार बजे तक आती थी और निर्धारित व्यायाम कराती थी। एक माह के बाद नर्स ने आना बंद कर दिया। आमोद का जीवन अब पूरी तरह बदल गया था। पत्नी पूर्णतः आमोद की सेवा पर निर्भर हो गयी। प्रातः नित्य कर्म से लेकर खिलाने पिलाने दवाइयाँ देने आदि का सम्पूर्ण कार्य आमोद के भरोसे पर था। पत्नी की ज़ुबान भी लकवे के कारण चली गयी थी परन्तु आमोद पूर्ण निष्ठा एवं स्नेह के साथ पति धर्म का निर्वाह कर रहे थे। उनका अधिकतर समय अपनी पत्नी की सेवा और सुश्रुषा में गुजरता था। चूँकि पत्नी चलने फिरने उठने बैठने और बोलने में असमर्थ थी अतः आमोद का बहुत समय पत्नी के कार्यों में व्यतीत होता था।

समय निकालकर वो रसोई एवं साफ़ सफ़ाई का काम भी कर लेते थे। आमोद के पास अब समय कम पड़ जाता था। वर्षों तक दिनचर्या इसी प्रकार चलती रही। एक रात्रि आमोद ने पत्नी को दवा वग़ैरह देने के बाद सुलाया और स्वयं भी पास लगे बेड पर सोने चले गए। रात्रि में क़रीब दो बजे हार्ट अटैक होने से आमोद की मृत्यु हो गयी। पत्नी प्रातः छः बजे जब जागी तो इंतज़ार करने लगी की पति आकर नित्य कर्म से निव्रत होने में उसकी मदद करेंगे। इंतज़ार करते करते पत्नी को किसी अनिष्ट की आशंका हुई। चूँकि पत्नी स्वयं चलने में असमर्थ थी इसलिए उसने स्वयं को पलंग से नीचे गिराया और घिसटते हुए अपने पति के पलंग के पास जा पहुँची। उसने पति को हिलाया डुलाया, लेकिन कोई हलचल नहीं हुई वो समझ गयी की आमोद जी अब नहीं रहे।

पत्नी की ज़ुबान भी लकवे के कारण चली गयी थी अतः किसी को आवाज़ देकर बुलाना उसके वश में नहीं था। घर पर और कोई सदस्य भी नहीं था और फ़ोन बाहर ड्रॉइंगरूम में लगा था। पत्नी ने पड़ोसी को सूचना देने के लिए फ़ोन की तरफ़ घिसटते हुए फ़ोन की तरफ़ जाना शुरू किया।

लगभग चार घंटे की मशक्क़त के बाद फ़ोन तक पहुंची और उसने फशेन के तार को खींच कर नीचे गिराया। पड़ोसी के नम्बर जैसे तैसे लगाये। पड़ोसी भला इंसान था। फ़ोन पर कोई बोल नहीं रहा था लेकिन आमोद के नम्बर से फ़ोन आया था। उसने समझ लिया की मामला गंभीर है। उसने आमोद के घर की घंटी कई बार बजाई। कोई उत्तर न मिलने पर उसने आस पड़ोस के लोगों को सूचना देकर इकट्ठा किया। दरवाज़ा तोड़कर सभी लोग घर में घुसे। उन्होंने देखा कि आमोद जी पलंग पर मृत पड़े थे और उनकी पत्नी फ़ोन के पास मृत पड़ी थी पहले आमोद फिर उनकी पत्नी। शव यात्रा दोनो की साथ साथ निकली। पूरा मोहल्ला कंधा दे रहा था परंतु दो कंधे मौजूद नहीं थे जिनकी माँ बाप को सबसे ज़्यादा उम्मीद होती है। शायद वो कंधे करोड़ों रुपयों के कमाई के साथ अति महत्वकांक्षा से पहले ही दबे हुए थे।

सेवा का मूल्य

अर्चना मिश्र

अब तो गाँव में दो जून खाने के भी लाले पड़ने लगे। शीला परेशान हो गई। गाँव में काम नहीं। क्या करें? तभी किसी ने बताया पास ही शहर है। जहाँ बहुत बड़ा अस्पताल है, वहाँ चले जाओ।

सुनकर शीला ही बिसन के बाबू को मनाकर यहाँ आने को राजी कर पायी। इन चार बच्चों के साथ वो रहेंगे कहाँ? फिर तय हुआ कि दो बड़े बच्चे गाँव में माई के पास छोड़कर और दोनों छोटे को लेकर वो शहर जायेंगे। दूर की रिश्तेदार राधा कई साल से वहाँ है, कोई न कोई काम मिल ही जायेगा। वो उसका पता लेकर शहर आ गये।

राधा ने खोली दिलाने में मदद की। काम के लिये कल सुबह तैयार रहना मैं ले चलूँगी। अगर कोई पूछे कि पहले भी यह सब काम किया है तो हाँ बोल देना।

सब सिखा पढ़ाकर राधा एक घर ले गई। आंटी, ये सब काम करेगी पगार बता दो। घर में चार लोग थे। अंकल, आंटी, उनकी बीमार बेटी और उसका पति। घर का सब काम पाँच हज़ार महीने पर तय हो गया।

तो काम आज से शुरू कर दो। उसके डर को देख राधा थोड़ी देर रुक गई। राधा ने मोबाइल निकाल फशेन लगाया।

मैडम जी! "आदमी को अस्पताल ले जा रही हूँ, बुखार है।" दिखा कर आऊँगी।

शीला को बड़ा ताज्जुब हुआ। इसका मोबाइल? और इतना बड़ा झूठ। राधा ने हँसकर कहा सच बोलूँ तो कोई न मानेगा।

तू भी सब सीख जायेगी। आज तो राधा का साथ था, राधा ने सब समझा दिया। कल से अपने से आठ बजे तक यहाँ आ जाना। कह राधा भी चली गयी।

बिसन का बाबू तो सुनकर खुश हो गया। सब हिसाब लगाया तो शहर में इतना पैसा कम लगा। धीरे-धीरे मैं और काम देख लूँगी। फिर बच्चे भी तो देखना है।

शीला बेहद मन से काम करती। बिसन के बाबू को तभी उसने बताया कि एक घर में और काम है। देख शीला, "अगर काम मिल रहा है तो तू पकड़ ले, मैं घर का खाना और बच्चे देख लूँगा।"

'ऐसा कहीं होता है बिसन के बाबू?' ये शहर है। अगर सबका पेट भरना है तो ठीक। नहीं तो गाँव वापिस हो लेंगे।

उसका गुस्सा देख शीला मान गई। अब सोचने और कहने का क्या फायदा।

धीरे-धीरे सब ठीक चल रहा था कि आंटी की बेटी की अस्पताल से छुट्टी हो गई। यकायक शीला तो धरती पर आ गिरी। वो सब अपने शहर वापिस जानेवाले हैं। अब घर का खर्च कैसे चलेगा। माई ने भी दोनों बच्चों को वापिस भेज दिया है। छः लोगों का पेट अब कैसे पलेगा ठाकुर जी?

सुनकर बिसन का बाबू भी चिंतित हो उठा।

दूसरे दिन आंटी ने उससे पूछा।

"हमारे साथ चलोगी शीला?"

हम बच्चे और पति छोड़ कैसे जा सकते हैं। सोच लो दस हज़ार रूपये के साथ तुम्हारा रहना ए खाना फ्री। हर दस दिन में तुम अपने पति और बच्चों से मिलने चली जाना। किराये का पैसा हम अलग से देंगे। सोच लेना।

"इसमें क्या सोचना आंटी जी।" पति और मेरे बच्चे, मेरे बगैर नहीं रह पायेंगे।

रात बिसन के बाबू को बताया तो वह उल्टा शीला पर भड़कने लगा।

"अरे! सबका पेट देख।"

अभी तक मैं ही इनको देख रहा था। अब तुझे रोज नहीं देख पायेंगे बच्चे, तो क्या हो जायेगा। कुछ दिन में आदत पड़ जायेगी।

कल 'हाँ' कह और साथ चली जा। रात भर शीला सुबकती रही। नींद आँखों से कोसों दूर थी।

दूसरे दिन वह अपना सामान लेकर आंटी के यहाँ पहुँच गई। बस सब निकलने वाले थे। उसे देख खुश हो गये। चार घंटे बाद सब दूसरे शहर पहुँच गये।

बाप रे! आंटी का घर किसी हवेली से कम नहीं था। उसे

भी एक कमरा मिल गया। अरे! सिर्फ उसके लिये ये लेट्रिन और बाथरूम भी।

काश! वो बिसन के बाबू को बता पाती। जैसे-तैसे दस दिन गुजर गये। आंटी ने उसके पति और बच्चों के लिये बहुत से कपड़े और खाने का सामान देकर उसे बस में बिठा दिया। वह घर आयी तो सब उसके लाये सामान में खो गये। क्या उसकी कोई जरुरत यहाँ नहीं? सिर्फ सबकी जरूरत पूरी करने के लिये है वह। रात बिसन का बाबू बेहद खुश लग रहा था। दूसरे दिन बस में बिठाते हुए बोला "खूब मन लगा कर सेवा करना।" यहाँ की चिंता ना करना।

अब शीला भी आंटी के परिवार में रच बस गई। उसे भी यहाँ अच्छा लगने लगा। दस दिन लगा जैसे जल्दी आ गया हो। घर गई तो पता चला कल बिसन के बाबू को कुत्ते ने काट लिया है। इंजेक्शन लगेंगे। जो पैसे लायी थी, दे दिये। दूसरे दिन उसे जाने को तैयार देख बिसन के बाबू ने कहा।

रुक जा अपनी आंटी को फोन कर दे तू बाद में आयेगी।

मेरे बगैर उनका काम नहीं चलेगा। यहाँ तू सब संभाल लेगाए बिसन के बाबू। मुझे पता है।

"मेरा कहना भी नहीं मानेगी?"

तुम्हारा ही कहना माना है बिसन के बाबू कि उनकी सेवा मन लगाकर करना। यहाँ की चिंता ना करना।

कह, शीला तेजी से बस स्टॉप की ओर चल पड़ी।

व्यंग्य

सुबह कुछ और बहाना टिका कर दफ़्तर के निर्धारित समय से एक-डेढ़ घंटे बाद दफ्तर पहुँचते रहते हैं। दफ्तर के किसी साथी की मृत्यु हो जाए तो तीन बजे शोक सभा इसीलिए रखते हैं ताकि चार बजे तक शोक में आकंठ डूबकर फिर छुट्टी से तर जाएँ। इसी बहाने दफ्तर से निकल लें। हमें बिना काम किये साल में एक बार नकद बोनस के साथ छुट्टी का बोनस भी तो चाहिए।

जिन्दगी का इन्द्रधनुष

जिन्दगी
अहसासों का
इन्द्रधनुष है,
जो खिलता है
सुदूर बादलों के बीच
रंग-बिरंगी
लेकिन तिर्यक रेखाओं में
और जगा देता है सपने
जगा देता है मुस्कान
खिला देता है
आँखों के फूल
कुछ पल के लिए।

(शहर-शहर सैलाब : डॉ. संजीव कुमार)

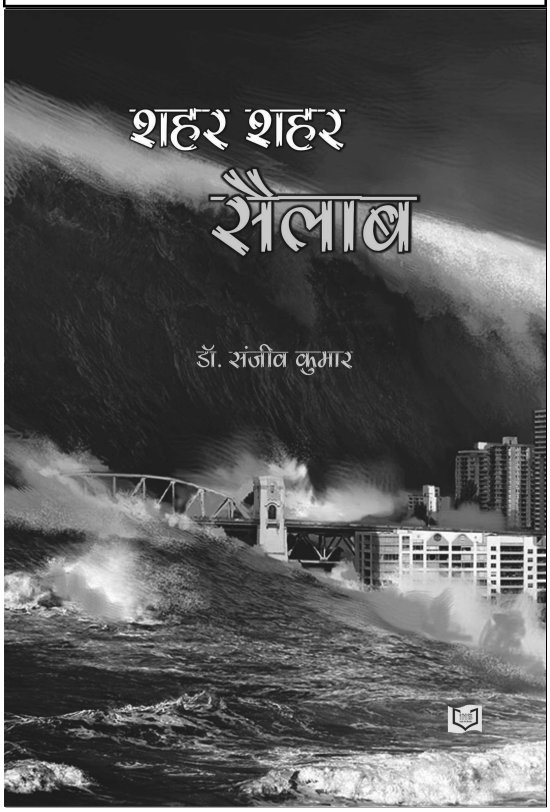

काव्याभिव्यक्तियाँ

लालित्य ललित की कविताएँ

गाँव का खत : शहर के नाम

उस दिन डाकिया
बारिश में
ले आया था तुम्हारी प्यारी चिट्ठी
उसमें गांव की सुगन्ध
मेरे और तुम्हारे हाथों की गर्माहट से
मेरे भीतर ज्वालामुखी फूट पड़ा था
सच!ढेर सारी बातें लिख छोड़ी थीं तुमने
''समय से काम पर जाना
ठीक वक्त पर खाना खाना
और सबसे जरूरी शहरी सांपिनों से दूर रहना
कितना ख्याल रखती हो मेरा
या कहूँ कि अपना।
याद है वह सावान की अलसाई दोपहर
ब्याह से केवल दो दिन पहले
जब गेंदा ताई के ओसारे में खाए थे
मैंने तुमने सत्तू और चूरमे के लड्डू
जिन्हें तुम सुबह से ओढ़नी में छिपाए हुए थीं
तुम्हारा खत उनका भी स्वाद दे रहा है
और याद आ गया मुझे बिट्टू के पैदा होने पर
बाँटी थी गाँव भर में मिठाई
मैंने, बप्पा ने, अम्मा ने नाच-नाचकर
मैंने पिछले हफ्ते फैक्टरी में फिर बाँटी थी मिठाई
संभाल-संभाल कर
जब मेरा तुम्हारा बिट्टू हुआ था दस वसंत का
बिमला कैसी है
क्या बापू को याद करती है
बिमला अब तो बड़ी हो गई होगी
ध्यान रखियों शहर की हवा गाँव तक पहुँच चुकी है
लड़की जात है, ताड़ की तरह बढ़ जाती है
तुमने लिखा था पूरन काका भी पूरे हो गए
और हरी नम्बरदार की तेरहवीं चौदस को थी
समय मिला तो
आ जाऊंगा
पर सहर में समय मिलता है क्या?
वा 'हरिया' पिताजी के वक्त आया था
सब कुछ देखना पड़ता है जी।
मेरा भी मन न लगता
मुझको भी कुतुबमीनार देखना है
अब के तुम्हारी एक न सुनूंगी, हाँ...
अच्छा, शहर में अपना ख्याल रखना
ठीक-ठीक काम करना
मालिक लोगों से बनाकर रखना
जन्नत नसीब होती है
गांव आते वक्त
रेल से मत आइयो
मण्डी टेशन पर बम फटा था
लाली भौजाई कहे थी
लिख दियोए संभल कर आइयो मेरे लिए लाली
पीले रंग का ब्लाउज
बिट्टू के लिए बंडी
बिमला के लिए ओढ़नी और हाँ
अम्मा के चश्में का नम्बर भेज रही हूँ
बाकी क्याए बस तुम आ जाजो जी,
अच्छा अब सुन लो ध्यान से
'बाबू' बन के आइयो
आते वक्त कुर्ता पाजामा पहन के मत आइयो

यहाँ रोब नहीं पड़ेगा
पिछले महीने कजरी का 'वो' भी
गांव में हीरो बनके आया था
बड़ा अच्छा लगे था
सच, तुम भी पैंट-कमीज और
जूते पहन के आना
वो याद से तिरछी टोपी जरूर लीजो
तू मुझको 'वा' में राज दिखे है
अच्छा अब खत बन्द करती हूँ
तुम्हारी पत्नी
जमुना देवी
काली मंदिर के पास
गाँव और पोस्ट आफिस ढुंढसा
जिला अलीगढ़
उत्तर प्रदेश।

माँ-बाप

चाहते हो
मायूस होना?
क्यों चाहते हो?
किसलिए चाहते हो?
किसके लिए चाहते हो!!
कितने आज मायूस हैं
कभी जानने की इच्छा
जाहिर की है!
नहीं की न!
करोगे भी नहीं।
क्योंकि रौंदकर चलना
तुम्हें पसंद है
जैसे माँ सारा दिन
सारी रात खटती है
अपने में जीती है
और
परिवार की
महत्वाकाँक्षाएँ
माँ के सपने को
रौंदकर आगे
बढ़ती हैं
और माँ
उफ़ भी नहीं करती
हकीकत है यही
सड़क पर चलती गाड़ियाँ
सड़क वही है
माँ-बापू देश में
पेंशन और टेंशन में
काट रहे हैं जीवन के
शेष दो-चार दिन
और
बहू-बेटा
पेरिस में मना रहे
छुट्टियाँ!!
वाह रे मेरे बच्चों
काश
जान जाते
कि बूढ़े माँ-बाप के
किसी कोने में
एक दिल है
और उस दिन दिल की एक
किताब है
जिस पर लिखा है
मेरे बच्चों
तुम्हें तकलीफ ना हो
और उसके लिए
मैं हूँ ना!
बच्चों की नजर में
बूढ़े माँ-बाप का

कोई मोल नहीं
वाकई में सच है
आज का सच
जिसे नकारा नहीं जा सकता
मानो या ना मानो।

पिता

पूरे परिवार को सँवारता है
मकान बनाता है
बच्चों की परवरिश
शिक्षा से लेकर
नौकरी शिक्षा तक
पिता घर की एक अपरिहार्य
स्थिति में होता है
जिसे नकारा नहीं जा सकता
पिता घर का वह
आधार स्तंभ होता है
जो अपनी इच्छाएँ बतलाता है
नहीं
किसी को जताता नहीं
यूँ ही ख़ामोश रहता है
लेकिन परिवार में खुद को
तलाशता है
बाबू जी जल्दी करो देर हो जाएगी
चीकू की बस निकल जाएगी
और हाँ!
प्रकाश की दुकान से
दो किलो दूध
एक दर्जन अंडे
ज़रूर ले आना
और हां!
बाबू जी ज़रा
जल्दी आना
इनको ऑफिस जाना है
ठगा-सा पिता
ख़ामोश है
धीरे धीरे क़दम बढ़ाता
चल पड़ता है
चंद खुशियों की
तलाश में
पथराई आंखों से
देखता है आसमान
भाग्यवान
क्यों मुझे छोड़ गई

विश्व हिंदी सम्मेलन

हिंदी की सेवा करते
हिंदी विद्वान
कितनी करते हैं सेवा
या
स्वाह!
आप हम बेहतर जानते हैं
फिर भी मुँह ताकते हैं
रस्मी हिंदी दिवस का
या
मंत्रालय की ओर
कि कब अपना नाम भी
विश्व हिंदी सम्मेलन में
नेतृत्व करते अभियान से
जुड़ सके!
और हम यह भूल जाते हैं
कि आज हिंदी
संपर्क भाषा के साथ
ऐसे लोगों से जुड़ चुकी है

जो हर सम्मेलन में
नजर आते हैं
जिनके पांव कब्र में हैं
लेकिन
मगर
किंतु
परंतु
उन्हें यकीनन भरोसा है
कि उनके सहारे ही
हिंदी का भला होगा
और वे चकाचक कपड़े
चमकाए
सिल्क आवरण पहने
मंद मंद मुस्कुराते हुए
विश्व में हिंदी का
परचम
और कई पेग चढ़ाकर
स्वदेश लौट आते हैं।
अपने को एक नये अध्याय
से जोड़ने के लिये

ग़रीब और गुलामी

ग़रीब
आदमी ही क्यों शिकार बनता है?
अमीर क्यों नहीं
अक्सर सवाल उठता है
अपराधी की नज़र में
दोनों बराबर हैं
कोई आसानी से
सुलभ हो जाता है
कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती से
ध्यान रखें
आप, अपना व अपने
परिवार का
कहीं
अगला शिकार
आप तो नहीं!
कमरे में सन्नाटा पसर
गया
आज़ाद भारत का
आम आदमी
अभी तक
गुलाम है।

लालित्य ललित संपूर्ण परिचय

डॉ. ललित किशोर मंडोरा

साहित्यिक नाम : लालित्य ललित

जन्मतिथि : 27 जनवरनी, 1970 दिल्ली

शैक्षिक योग्यता : हिंदी ऑनर्स (किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय) परा-स्नातक हिंदी (दिल्ली विश्वविद्यालय) खेल व विज्ञोन पत्रकारिता में सर्टिफिकेट कोर्स (दिल्ली विश्वविद्यालय) हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तरांचल) से पी.एच.डी (साठोत्तरी हिंदी व्यंग्य साहित्य में युगबोध)।

साहित्यिक गतिविधियाँ

'नवसाक्षर लेखन' कार्यशालाओं के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका- हिमाचल प्रदेश (सोलन), छत्तीसगढ़ (दुर्ग, कवर्धा, भिलाई, कांकेर, कोरबा) राजस्थान (जयपुर, उदयपुर, जेसलमेर), उत्तराखंड (देहरादून अल्मोड़ा, बिहार) (नवादा, पटना, आरा), मध्यप्रदेश (पंचमढ़ी)।

राष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठियों के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका :- गढ़वाल (श्रीनगर), शिमला पुस्तक मेला, (कुल्लू, मंडी, हिमाचल प्रदेश), चंबा (हिमाचल प्रदेश), स्टेट लिटरेसी हाउस (लखनऊ, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश), श्रीगंगानगर (राजस्थान), भोपाल (म. प्र.) जम्मू (जे.एड.के. कल्चरल सोसायटी), रायपुर, बिलासपुर एवं दुर्ग (छत्तीसगढ़), बैंग्लोर (कर्नाटक), बीड (महाराष्ट्र), अहमदाबाद (गुजरात), नैनीताल, हल्द्वानी (उत्तराखंड) व पंजाब शामिल।

साहित्यिक साक्षात्कार

डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शेरजंग गर्ग, अजित कुमार, कमलेश्वर, रामनारायण उपाध्याय, डॉ. रामदरश मिश्र, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री त्रिलोचेन शास्त्री, प्रो. विजयेन्द्र स्नातक। कृष्णा सोबती, डॉ. नगेन्द्र, श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, गोपाल प्रसाद व्यास, श्री. के.सी. सौनरिक्सा, डॉ. नरेन्द्र कोहली, जसदेव सिंह, रवीन्द्रनाथ तयागी, श्रीलाल शुक्ल, ज्ञान चतुर्वेदी, चन्द्रकांत मेहता, प्रतिभा राय (उड़िया कथाकार) नासिरा शर्मा, प्रेम. जनमेजय, हरीश नवल, डॉ. गंगा प्रसाद विमल, कन्हैयालाल नंदन पृथ्वीराज मोंगा, अमर गोस्वामी, तेजेन्द्र शर्मा, दिविक रमेश, प्रताप सहगल, गिरीश पंकज, सुभाष चंदर, वल्लभ डोभाल, गोविंद मिश्र, राजेंद्र यादव, हरिसुमन बिष्ट आदि।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह

'गाँव का खत शहर के नाम' अभिरूचि प्रकाशन से प्रकाशित पहला संकलन प्रकाशित पचास वर्ष की आयु में यानी जीना सीख लिया, तलाशते लोग चूल्हा उदास है बचा रहेगा प्रेम ही, बचे रहेंगे केवल शब्द मेरे लिए तुम्हारा होना, चुप हैं शब्द और उनके अर्थ, सफरनामा आदि 60 काव्य संकलन प्रकाशित।

व्यंग्य संग्रह

जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग, से आरम्भ हुई व्यंग्य लेखन की यात्रा, अबतक विलायती राम पांडेय पांडेय जी और जिंदगीनामा डिजिटल इंडिया के व्यंग्य पांडेय जी और फुर्सत के लड्डू पांडेय जी की दुनिया पांडेयजी कहिन, ओ पांडेय जी, साहित्य के लपकूराम आदि 23 व्यंग्य संकलन प्रकाशित।

संचयन

51 व्यंग्य रचनाएँ : लालित्य ललित (संचयन, रमेश तिवारी, ए.पी.एन पब्लिकेशंस, दिल्ली-2018)
लालित्य ललित के चुनिंदा व्यंग्य (संचयन एवं संपादन : सुनीता शानू, क्रिएटिव आई, दिल्ली-2020)
लालित्य ललित की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (संचयन एवं संपादन : सोमनाथ यादव, लोकवाणी प्रकाशन, 2020) आदि।

नवसाक्षरों के लिए पुस्तक लेखन

पाराटोली का पारस, सबक परीक्षा, रामू मल्लाह, सुखीराम की दुकना, मानेसर की बड़की सच्चा भक्त आदि।

साक्षात्कार पर विशेष पुस्तकें

सीधी बात साहित्यकारों से

इसके अतिरिक्त,
अनुवादित कार्य, संपादन कार्य, पत्र-पत्रिका संपादन, संपादकीय परामर्श स्तंभ/कॉलम लेखन।
विदेश मंत्रालय से प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय साहिक्यितक त्रैमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के स्तंभ राजधानी की सांस्कृतिक गतिविधियाँ का तेरह वर्ष तक नियमित लेखन।

विशिष्ट साहित्यिक उपलब्धियाँ

अनवरत (विशेषांक, जनवरी 2018) : लालित्य ललित पर केंद्रित पुष्पगंधा (विशेषांक, मई-जुलाई 2019 लालित्य ललित पर केंद्रित)।
अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, मराठी, राजस्थानी, तेलुगु, ओड़िया, मलयालम इत्यादि भाषाओं में कविताएँ व व्यंग्य रचनाएँ अनूदित।
देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ व व्यंग्य एवं कहानियाँ, साक्षात्कार व समीक्षाएँ प्रकाशित। अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक कार्यक्रमों में भागीदारी।

सम्मान : हिंदी अकादमी, सरकार से वर्ष 1991 और 1992 के लिए श्रेष्ठ कवि के रूप में पुरस्कृत। दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय संग्रहालय भोपाल द्वारा 6 मार्च 2008 को 'संवाद' के कुशल संपादन हेतु पुरस्कृत।
प्रो. विजयेंद्र स्नातक स्मृति सम्मान से सम्मानित। विध्व न्यूज नेटवर्क द्वारा 2016 में मलेशिया में राष्ट्रीय गौरव सम्मान से सम्मानित।
पहले 'रवीन्द्रनाथ त्यागी युवा व्यंग्य सम्मान' से मई 2018 में नई दिल्ली में सम्मानित।

संपर्क : कार्या संपादक (हिंदी) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन इंस्टीट्यूशनल एरिया वसंत कुंज, फेस-II, दूरभाषा **कार्यालय :** 011-26707796
ई-मेल : lalitmandora@gmail.com/ lalitmandora27@gmail.com
आवास : बी-3/43, शाकुन्तला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

शुभ्रामणि की कविताएँ

शुभ्रामणि

1.

जब कुछ लिखने का
मन होता है
तब क्या लिखना है...
दिल को कहाँ पता होता है।

बस लिखते चले जाते हैं
और मन का हाल बयाँ हो जाता है।

इसे हर कोई पढ़ नहीं सकता...
इसे हर कोई समझ नीं सकता।

ये उन लोगों के लिए लिखा होता है,
जिन्हें शब्दों में छिपी आवाज पता होती है।

2.

खामोशी से डर लगता था
कि कहीं आदत न बन जाए

अब दिल चाहता है
कि खामोश हो के
इसे ही आदत बना लिया जाए

कैसे उम्र के साथ
साल दर साल
बचपना 'रूठ' जाता है

कैसे लोग अपने ही जैसा
बनानें में
दूसरों की शख्सियत को
चूर कर देते हैं।

खुद को महान मानकर
वो ओरों पर उंगली उठाते हैं
क्या उसी उंगली से वो ऊपर
वाले की
दिशा भूल जाते हैं।

खुद से भी तो निष्पक्ष
बाते करके देखें
कभी खुद से भी माफी माँगने में
मजबूर होके देखें

सच तो ये है
कि डरते हैं लोग
खुद से बातें करने में
क्योंकि जब आईना
जिन्दगी की तस्वीर दिखाता है
तो आदमी खुद से भी डर जाता है।

3.

शब्दों में जान-बेजान भावों से
बयाँ होते हैं...

भाव खतम
तो शब्द सिर्फश शब्द
रह जाते हैं।
एकदम निरीन और निर्जीव

सच तो ये है
शब्दों को
मतलब हम देते हैं
सब शब्दों में
अपने-अपने मतलब
ढूंढने लगते हैं...

कभी-कभी भाव को
दोहरा के समझाने पड़ जाते हैं

जो समझ ना आए
समझाने पर भी

वो सिर्फ एक बहस बनकर
रह जाते हैं

कौन जीता कौन हारा
के खेल में...
सब खुद की जीत मानकर

बस उस पल में
न बीते हुए पलों की खबर
न आने वालों पल का सिला।

4.

रोज-रोज की भाग-दौड़ में
सांस लेना तो
भूल ही गए

दूसरों को सम्हालने में
खुद ही जीना भूल गए

मुड़ के देखा तो
मालूम हुआ
मन के सपने बनना तो
भूल ही गए

अभी भी ज्यादा देर नहीं हुई थी
पर जब पंख खुले तो
उड़ना ही भूल गए

ऐ जिन्दगी...
तेरी बढ़ती हुई रफ्तार में
एक पल के लिए
ठहराना ही भूल गए।

5.

मौसमों के बीच में
उलझती-सुलझती सी ज़िन्दगी
कभी ठंड में ठिठुरती रही
कभी पसीने से लथ-पथ खड़ी रही
कभी गिरती पत्तियों में रंग दिखे
कभी फूलों में उमंग सी मिली।

इन्हीं मौसमों के बीच कुछ तूफान
आए और चले गए
थोड़ी सी व्यवस्था और
अर्थव्यवस्था हिला गए।

बर्फ में ढकी सी धरती
खूबसूरत तो दिखी
पर आग की तपन के संग ही
रात गुजर सकी।

तूफानी ठंड के जाते ही
गुनगुनी सी धूप ने
जो उम्मीद की किरन जगा दी
थम के सांस ली और
बर्फ में खेलने की खुशी पा ली

कभी इसी धूप में जलती तपन से
घर में रहने की चेतावनी मिली
कभी बवंडर से बचने के लिए
घर में ही छिपने का आखिरी विकल्प मिला।

ये सब बदलाव आता है जाता है
पर इंसान घूम-फिर के व्यस्त हो जाता है
भागती-दौड़ती सी जिंदगी में
ये मौसम का संदेशा कहाँ पढ़ पाता है।

मौसम प्रकृति की वो पुकार है
जो बार बार यही बता रही है
इंसान जिंदगी जीने की भागदौड़ में
प्राकृतिक जीना तो छौड़ ही गया है।

कभी थक कर पेड़ की ठंडी छांव
में बैठ के देखो
कभी आग में हाथ ताप के गालों
को छूना सीखो

कभी फूलों की तस्वीर नहीं
उनकी खुशबू ले के देखो
कभी गिरते पत्तों में फिर से जीना सीखो
बस थमकर एक बार
मौसम को छूकर तो देखो
क्या पता इन मौसमों में संदेशों में
जीने का नया एहसास मिल जाए
क्या पता इस नए एहसास में
जीने का उल्लास मिल जाए।

गीता पंडित की कविताएँ

रिसते हुए छाले

धरती की कोख़ से फूटता हुआ बीज
आवाज़ देता है किसान को
फ़सलों में परिवर्तित हो
पेट भरता है जन का,
लोकतंत्र को करता है पुष्ट
सराहता है अन्नदाता के परिश्रम को

मगर सत्ता को आदत है भूलने की
वह आवाज़ नहीं लगाता किसान को
किसान करता है वही फिर फिर
लोकतंत्र भी कहाँ बदलता है

जिन आँखों में होने चाहिये थे सपने
वहाँ आँसुओं के घर हैं

जिन अधरों पर होने चाहिये थे माटी के गीत
वहाँ सिसकियाँ हैं

जिन पाँवों में होनी चाहिये थी गति
वहाँ रिसते हुए छाले हैं

सरकार तुम किसके साथ हो
लोक के या धन तंत्र के
बताओ तो।

लौटना

प्रतीक्षा साधना है
साधना जीवन के अधरों की मुस्कान

मुस्कान को सदियों में ढालने के लिए
जीवन का मृत्यु के साथ
निरंतर संघर्ष
उम्र के सर की चाँदनी है
जो मौन के शीतल जल में स्नानकर
धवल हो जाता है

मौन मन जब मुखर हो उठता है
ढह जाते हैं पीड़ा के साम्राज्य
पतझर झाँकने लगता है बगलें
अंगडाई लेकर उठती है
उदास ख़ामोश शाम

वीतरागी देह
पुकारती है अपने बसंत को
यही समय होता है पंछियों के लौट आने का।

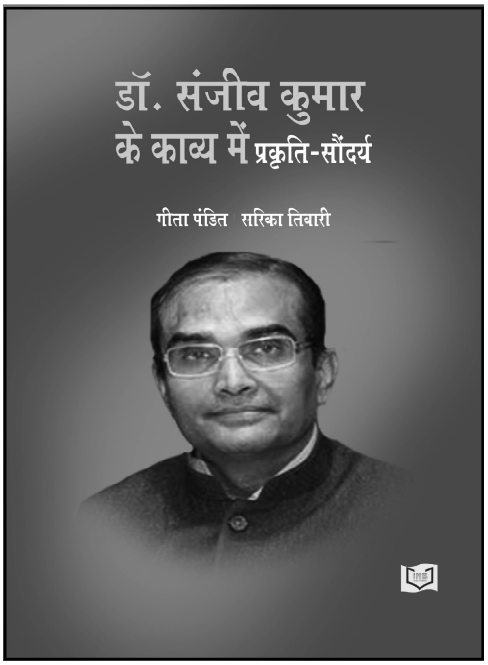

प्रगति राय की कविताएँ

युवती

मैं एक चंचल बालिका नहीं
एक स्थिरचित्त युवती हूँ।
मैं एक दिग्भ्रमित गौ पुत्री नहीं
एक स्वस्थ मस्तिष्क युवती हूँ।
मैं एक अव्यवस्थित हरिण शावक नहीं
एक विचारशील युवती हूँ।
फर्क जान लिया है मैंने
यथार्थ और भ्रम में
स्वप्न और सत्य में
तौल लिए है मैंने
रिश्ते-नाते, मेल-जोल
सौहार्द प्रेम, जोड़-गठजोड़॥
मैं अब अपठित गद्यांश नही
गायी हुई मधुर कविता हूँ
मैं अस्फुट से कुछ शब्द नही
सारयुक्त स्वरलहरी हूँ।
मैं अबुझ और अगम्य नही
सुलभ और सुगम नीति हूँ।
मैं समर्पण हूँ, मैं ज्ञान हूँ
मैं वसुधा हूँ, मैं धैर्यवान हूँ।
मैं हूँ समृद्ध, धनधान्य हूँ।
मैं नही विकल श्मशान हूँ
मैं तो बहती झरझर नदी
मैं रूह हूँ, मैं प्राण हूँ॥

माँ

वक्त बदलता है, तकदीर बदलती है।
बदलती है जिन्दगी, तस्वीर बदलती है॥
मौसम बदलता है, बादल बदलते है।
अम्बर बदलता है, धरा के ढ़ग बदलते है॥
चेहरे बदलते है, भाव गहरे बदलते है।
रिश्ते बदलते है, रिश्तों के माने बदलते है॥
दोस्त बदलते है, दुश्मन बदलते है।
पल में प्राण प्यारे हमदम बदलते है॥
दीवारें बदलती है, दरारें बदलती है।
सदियों की नफरत में मीठी तकरारें बदलती है॥
न बदलता है ग़र कुछ तो, वो बेहद खास है साहिब!
माँ के आँचल की न बहारें बदलती है॥
वो ठहरी है तब से, जना हमको जब से
सबकुछ बदलता है, पर माँ न बदलती है॥

कहानीकार

क्यों लिखते हो तुम कहानियाँ
मुझे बताओ तुम ये बात॥

मन में छिपी हुई कोई टीस
या उकेरते हो तुम जज्बात।
या है ये अनुभव की सीख
क्यों नहीं झुकाता नायक शीश॥

बागों में लाते हो बहार
फिर देते हो उन्हें उजाड़।
काँटों के है संग मुस्काना
क्यों समझाते हो हर बार॥

यह है तुम्हारे मस्तिष्क का विकार
या कि किसी हार का उपचार।
क्यों रहते हो तुम हरपल बेकरार
क्या इसी कारण कहे जाते हो "कहानीकार!"

प्रेम से बनी खिचड़ी और दलिया का स्वाद तो दुगुना हो ही जाता है। प्रेम में पगी बोली और उसके अन्तर्निहित भाव से मन बासों उछलने लगता है। बहुत सुंदर कविता।

रणविजय राव

मदनशलाका

मदनशलाका बैठी डाल पर
प्रातः से ही कूक रही
मेरे हृदय में भी रह-रहकर
जाने कैसी हूक जगी॥

हुआ सवेरा जग ये जागा
अधसोई मेरी पलकें
नित्यकार्य दैनन्दिन भूली
ख्वाबों में खोई पलकें॥

मैं नहीं, तुम हो, तुम्हीं-तुम्हीं हो
जग में देखूँ जहाँ कहीं
दिन में तुम हो, रात में तुम हो
दसों दिशाएँ तुम्हीं-तुम्हीं॥

तुम ही सरसों के फूलों में
अमिया के बौरों में तुम ही
मन के दर्पण में तुम बैठे
सुख में, दुःख में तुम्हीं-तुम्हीं॥

वासन्तिका ने हो मतवारी
सन्देशा सबको पहुँचाया
तभी कृष्णा ने हो मतवारी
बात मुझे भी ये बतलाया॥

चादर से ही ताक रही मैं
गुनती हूँ उसकी बातें
भूल गयी मैं गिनती उनकी
रोकर बीती जो रातें॥

भीगी तकिया भी मुसकाती
आज मुझे ये कहती है
क्रोध के डंक चुभोकर मन में
तू कब तक रह सकती है?

मान भी ले, अब हठ छोड़ दे
भूल जा बीती सब बातें
रीता-रीता जो मन तेरा
भर ले उनमें मीठी यादें॥

समय के घोड़े दौड़ लगाकर
तेरा वक्त भी लाएँगे
जो कुछ तेरा बिखर गया है
आँचल में भर जाएँगे॥

रश्मि चौधरी की कविता

सूरा

ये खम्भों पर बने घुमावदार
मेहराबों से फिसलती यादें
ऊँची छतों वाले कमरों
की ये मोटी दीवारें
इन्हीं दीवारों के झरोखे
पर बैठे हैं अब भी अल्फशज़
बतियाते हैं तेरे मेरे क़िस्से
इन चौड़ी लाल पत्थर की सीढ़ियों पर
उतरते हैं डाले हाथों में हाथ
मिलाते हुए कदमों में कदम
इन मीनारों की फड़फड़ाहटें
रूबरू करतीं हैं गुटर-गूँ
नक्काशी नहीं ये छज्जों पर
आयतें लिखीं है अरबी में
इन नक्काशियों की गुफ्तगू से
बन गया सूरा तेरे मेरे नाम का!!

नीरज मनमीत

अश्वारोही

धवल बादलों में
दौड़ता घोड़ा
प्रक्षेपित एक अग्निबाण!
जैसे दसों दिशाओं में
शून्य का अंधकार चीरती
प्रात रश्मियाँ।

उन्नत भाल तनी ग्रीवा
लहराते अयाल
तीव्र लयबद्ध चाल
ज्यों वेग स्वयं गतिमान!

घोड़े की लगाम है
अश्वारोही स्त्री के
सधे हाथों में!

नियंत्रण इस तरह कि
कोई संगीत सिद्ध कलाकार
सुर साथना में लीन!

स्त्री का गर्वपल्लव ललाट
कमान सी तनी काया
चकित करती
दीखती वह भी
साक्षात गति स्वरूपा।

अम्बर की रंगशाला में
नृत्यलीन
कोई दक्ष नृत्यांगना!

शिफॉन

शिफॉन का चाँद खिला था कल रात
पारिजात के सफेद फूलों और हरी पत्तियों के बीच।

शाख़ों से छनकर आते
चाँदनी के रेशमी तार
तुम्हारे कमरे के दरीचे से उतर
तुम्हें छू रहे थे
बातें कर रहे थे तुमसे

तुम्हारी अधखुली डायरी के सफ़हे पर
सैटिन पैटर्न बुन रहे थे।

पश्मीने के इसी सफ़हे पर
चाँद उतर आया है और
गुलाब की रोशनाई से लिखी है
वो एक तुम्हारी अपूर्ण कविता
तुम्हारी दोस्त स्त्री के नाम!

शिफॉन के चन्द्रमा पर
रेशम और पश्मीने के धागों से
जो सूती सैटिन शब्द
कुदरत ने टाँके हैंए

वही एक अपूर्ण कविता है
जो तुम लिख रहे हो
सदियों से
अपनी दोस्त स्त्री के नाम!

विवेक रंजन श्रीवास्तव की कविता

चंचला हो
नाक से उच्चारी जाती
मेरी नाक ही तो
हो तुम।
माथे पर सजी तुम्हारी
बिंदी बना देती है
तुम्हें धीर गंभीर।
पंचाक्षरो के
नियमों में बंधी
मेरी गंगा हो तुम
अनुस्वार सी।
लगाकर तुममें डुबकी
पवित्रता का बोध
होता है मुझे।
और
मैं उत्श्रंखल
मूँछ मरोड़ू
ताँक झाँक करता
नाक से कम
ज्यादा मुँह से
बकबक
बोला जाने वाला
ढ़ीठ अनुनासिक सा।
हंसिनी हो तुम
मैं हँसी में
उड़ा दिया गया
काँव काँव करता
कौए-सा।
पर तुमने ही
माँ बनकर
मुझे दी है
पुरुषत्व की पूर्णता।

पारमिता षाडंगी की कविता

'आईना'

कौन थी वह
जो रहतीं थीं मेरे घर के
दीवार पर लटकते हुए आईना में
में रोज़ देखती उसे
कुछ जाना पेहचाना सा
तो कुछ अनजानी सी
उसकी अंदर की ख़ाली अंश भी
मेरे भीतर था

टुटने के लिए ख़ाली
शब्दों के क्या आवश्यकता है?

देखती थी मैं
आईना के उस पार
आस्था जितनी
अविश्वास भी उतनी
फिर भी जो बोलना था
वह तो रहगया

आईने में वह ऐसे थी
जैसे डाक में न भेजें जाने वाली
कवाँरी चिट्ठी
बिन पढ़े और बिन जाने

उसकी अंदर की आर्तनाद
मेरे अनुभव के परिधी में
मन्थन कर रही थी
क्या कभी एक प्रतिम्बिब
रोमांचित होती है?
फिर वह मेरे दुःख को
कैसे अनुभव करती घ है
मेरे शब्दों को कैसे छू लेती है

ढुंडती रहतीं अपनी कविता में
मेरे भीतर की निरवता को

कल जब मेरी पर्दे के पीछे से
एक नया सबेरा आएगी
बहुत कुछ समझने की बीज को लेकर
उसकी साथ में भी भोगुगीं
कुछ नया संपर्क की प्यास को

अब सोचती हूँ
फिर कौन थी वह
मेरे आईने में
कहीं में तो नहीं।

डॉ. राहुल की कविता

आया वसन्त

फूल खिले, कलियाँ मुस्कराई,
मौसम हुआ सुहाना,
डाल-डाल पर चिड़ियें हंसती
आ मिल गाएं गाना

हरे-भरे हैं पेड़
मनों में खुशियाँ हैं छाई
महक उठा माटी का कण-कण
केश बिखेरी बैठी है अमराई।
जीवन की बेल लटकी
दिशा-दिगन्त है
वन-उपवन, बागों में कोयल की कूक
हंसता वसन्त है

मुरझाया मन झूम रहा
कहता हन्त-हन्त है
स्वप्निल मौसम का आवर्तन यह
दुख का बस अन्त है।

आओ आओ, प्रिय! अब गले तो लगा

जीवन की घड़ियाँ बीती चली जा रहीं,
मन की ऊर्मिल तरंगें यही गा रहीं,
बांध लो बंधनों को न खोलो कभी
प्रेम-पूरित मिलन वक्त आया अभी,

चांद कहता यही भाव अमृत पगा।
आओ आओ, प्रिये! अब गले तो लगा।

हार में जीत हो, जीत में हार हो,
वेदनाओं में मंजुल सहज प्यार हो,
देखो दुनिया की धारा बही जा रही,
एक सस्मित सी स्मृति इधर आ रही,

मान उसको भी अपना तनिकतो जगा
आओ आओ प्रिये! अब गले तो लगा।

चांद तारे रहेंगे सदा व्योम में
रवि की आभा भी होगी सदा सोम में
छूट जाएंगे दुख-सुख के बंधन यहाँ
कल न जाने हम होंगे कहाँ, तुम कहाँ

साथ जबतक है जी लें, हम भय को भगाए
आओ आओ प्रिये! अब गले तो लगा।

शशि किरन की कविताएँ

स्वेटर

सर्दियां आने को है
सोचती हूँ
तुम्हारे लिए
एक स्वेटर बुन दूँ
सलाई पर फंदे डाल
पहली सलाई बुनी
तो ख्याल आया कि
हम स्वेटर की बुनावट

जैसे ही तो बुने हुए हैं
शादी के शुरुआती साल स्वेटर के
बार्डर के माफिक
गार्टर स्टिच में बुने
हर सलाई सीधी सीधी
पर हम ए कितने उलझे
हर बात पर सिर्फ रजामंदी
हां मतलब हां
ना मतलब ना
न कोई तकरार
न कोई इनकार
उसके बाद धीरे धीरे
जैसे स्वेटर की बुनावट
का वजूद उभरने लगता है
हम भी अपनी जिन्दगी के
अपने अपने किरदारों में
आ ही गए
बुनावट वाला
सीधा तुम्हारा
और उल्टा मेरा
मेरे हिस्से में आई
जोड़ की कई गांठे
मेरे हिस्से में आईं
खुरदुरी सिलाइयाँ
मेरे हिस्से में आया
फंदों का क्रंदन
गुंथा हुआ सारी
बुनावट का आलिंगन
सारी गर्माहट मेरे हिस्से
तुम जब भी
दफ्तर से आकर
बाज़ारी स्वेटर
उतार
मेरा बुना
स्वेटर पहनते हो
तो महसूस होता है
कि गर्माहट
अभी बची हुई है
बरकरार है
हमारा वजूद जैसे
सिक्के के दोनों पहलू
आईने का अक्श
दूध में मिला पानी
फूल में समाई खुशबू
और हमारी परछाई
की तरह
हम से लिपटी हुई
आज भी
रहेगी हमेशा
सदा के लिए।

मेरा तुम्हारा प्यार

आ जाओ बाँट ले मेरा तुम्हारा प्यार
बुरा न लगेगा जो ज्यादा ले जाओ
थोड़ी सी ले जाना जमीं
ले जाना एक भीगा आसमान
कुछ कसैली यादें हो तो छोड़ देना
तीखी झिड़कियाँ भी पड़ी रहने दो
और भी कुछ चुभता हुआ लगे तो छूना नहीं
तुम ले जाना सौंधे पलों की खुशबू
वो भी ले जाओ पल जो ठहर गए थे कभी
उन चोर चितवनों की बाँध लो गठरी
समर्पण के धागों से गाँठ लगा लो
ऐसा करोण्ण
तुम आज खंगाल लो मेरा सारा खज़ाना
जो जो तुम्हारा हो लूट लो

और जो कहीं थोड़ी बहुत मैं भी चली आऊं
तो रख लेना उसे भी
टटोल कर देखोगे न! तुम ही मिलोगे
बाँध लोगे जब ये पुलिंदा
तो कह देना और भी कुछ देना है
तुम्हें दूंगी आँखों में बसा इंतज़ार सा काला काजल
तह कर रख दी है वो तारों भरी रात
चाँद को कही सारी शिकायतें
सब्ज़ी में कुछ ज्यादा ही डला नमक
प्यार के सारे जायके
और बाँध दूंगी चार लड्डू राह के
चले जाना अपना हिस्सा लिए
पर हाँ
मुड़कर न देखनाए नहीं तो
जा नहीं पाओगे!

तुम्हारी आँखों में

तुम्हें देखता हूँ तो
तुम्हारी आँखों मे
उलझ कर रह जाता हूँ
और बात होठों तक
आते आते रह जाती है
आँखों में समंदर होता है क्या ध
नहीं!
तो इतनी गहराई
सपनों में पगे
कशिश भरे दो प्याले
छलकते हुए!
मुझे छल क्यों जाते हैं
कहाँ बहा ले जाते हैं ध
गुम हो जाता हूँ
खो जाता हूँ
आँखों में भूलभुलैया होती है क्या ध
तो इनकी पुतलियाँ
क्यों कर लेती है मेरी
पुतलियों का सम्मोहन
अजब गजब सा
जंतर मंतर
जादू वादू!
सब हो जाता है!
क्या हो जाता हैध
कैसे मैं पिघल सा जाता हूँ ध
लावा उमड़ आता है
मन में! तन में!
तुम्हें बांहों में भर लेने को
बादल सा उमड़
ठिठक कर रह जाता हूँ
आँखों का काजल
रोक लेता है
मुझे बुरी सी नज़र सा
पलकों की ओट में
कनखियो में
तरसता
प्यासा
देखता रह जाता हूँ
तुम्हारी आँखों में
उलझ कर रह जाता हूँ!

अरूण शेखर की कविताएँ

1.

हर विपदा एक अवसर है
किसी के लिए कुछ कर गुजरने का
किसी के लिए भूख से मरने का

नयी नयी सोच, नए उद्योग का
नए नए करप्शन, नए नए भोग का

बाढ़ हो या सूखा
या कोई महामारी
ये सब उन्हीं के लिए है
जो है जनता बिचारी

इस अवसर ने
कवियों को कविता दी
कहानी कारों को कहानी
चिंतकों को चिंता करने के अवसर दिए
विपक्ष को मुद्दे
और सरकारों को
करने को मनमानी

मिला है जनता को भी बहुत कुछ
उसके हिस्से में भी हैं
बहुत चीजें सारी
गरीबी, भूख और बीमारी

2.

सुनो!
इस सुंदर सी इमारत में
अपना प्यारा सा घर है

जिसमें शामिल हैं
हमारे सपने
हमारा संघर्ष
हमारी ज़िद
और
बहुत सारे
मज़दूरों का खून-पसीना
और उनके बच्चों की
बहुत सारी भूख...

3.

गरीबी और महामारी

इंसान बना
भूख बनीए रिश्ते बने
इंसान बना
इंसानियत बनी, हैवानियत बनी
इंसान बना
अमीरी बनी, गरीबी बनी
इंसान बना
धर्म बना, धर्माधिकारी बने
इंसान बना
इज्ज़त बनी, इज्ज़तदार बने
इंसान बना
गांव बने, शहर बने
गांव बने
पंच बने, सरपंच बने
शहर बने
शहरों में तरह-तरह के मंच सजे

मंच बने, मंच से नारे लगे
मंच से भाषण हुए
मंच पे कुसी लगी
कुर्सी पे नेता उगा

कुर्सी के इर्द गिर्द
पंच हैं, सरपंच है
धर्मधिकारी हैं

इज्ज़त की ठेकेदारी है
नेता से कुर्सी है
कुर्सी से नेता है
इंसान तो बस
शतरंज का प्यादा है
जो कि वोट देता है
इसी कि वजह से
लोकतंत्र ज़िंदा है
न खाता है
न पीता है
मरने में
सबसे आगे रहता है...।

4.

गरीबी के टीके की खोज कब तक...

बीमारियां पहले भी थी
महामारियां पहले भी आईं
आगे भी आएगी

शनि और गुरु
फिर वक्री होगा
कभी ग्रहण लगेगा
कोई न कोई ग्रह
किसी न किसी
की सीध में फिर आएगा

कभी सुनामी, कभी सूखा
कभी महामारीए कभी बाढ़ का
कारण दे जाएगा
कारण बतानेवाला
कारण बताने का पैसा लेगा
फिर उपाय का अलग से बिल देगा

हर बीमारी की दवा की खोज होती है
महामारी से निजात मिलती है
फिर एक नई बीमारी
फिर एक नई दवा
फिर कोई महामारी
फिर कोई टीका

आज सारी दुनिया में होड़ है
कौन सबसे पहले इसे विकसित करे
इंसान को बचाने का सिरमौर बने
कौन सबसे पहले अपनी जेबें भरे

सारी बीमारियों से बड़ी है
सारी महामारियों के आगे खड़ी है
ये जो गरीबी की लंबी लड़ी है
इस पर कब शोध होगा
इसका कब कोई टीका बनेगा
इस यक्ष प्रश्न का कब कोई जवाब देगा

ये सबको पीछे छोड़ देती है
इसपर कभी कोई रिसर्च नहीं होती है
हर चुनाव में सबसे ज़्यादा इसी की चर्चा होती है

सरकारें आती हैं
जाती हैं
चर्चा बाकी रह जाती है
अगले चुनाव के लिए...

इसके टीके की कभी कोई
ख़बर नहीं आती है
झुग्गी, झोपड़ी
सड़क-चौराहे पर
कभी रेल की पटरी
कभी भूख की आग में
बेमौत मारी जाती है...।

सोनीलक्ष्मी की कविताएँ

तुम हो

जब ब्याह दी जाती हैं
बेटियां
कम उम्र में ही
मौत हो जाती है
उनके सपनों की
उनके अभिमान की
उनके भविष्य की
उनके अरमानो की।

फूटने लगता है
हृदय में
वेदना के अंकुर।

झुलस जाती है
उनकी खुशी
जीवन के शेष सफर में
दब जाती हैं वे
कई जिम्मेदारियों के तले।

तेरी तस्वरी

यूं ना जाया करो
छोड़कर
अकेला मुझे
जाता है चला
मेरा दिल भी
तेरे साथ
रह जाती हूं मैं
अकेली
यूं उदास।

होती है जब
तेरी तस्वीर
मेरी नजरों के सामने
इंतजार में
देखा करती हूं
उसी तस्वीर को
मुस्काते रहते हो
तुम हरदम
दिखती है चमक
तेरी आंखों में जब
जगता है एक भरोसा सा
कि तुम यहीं कहीं हो
मेरे आस-पास

मैं कैसे बयां करूं
कि मुझे तुमसे ही
दिखता है सारा जहां
खुशनसीब हूं मैं
कि मिला है जीवन साथी
तेरे जैसा।

मॉब लिंचिंग : कारण और निवारण

संतोष खन्ना

भारत में मॉब लिंचिंग के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए मेरे मस्तिष्क में एक जिज्ञासा जागी कि मॉब लिंचिंग जैसे कुकृत्य क्या भारत में ही कारित होते हैं या फिर विश्व के अन्य देशों में भी होते हैं? अंतरजाल पर शोध करते हुए मेरे सामने एक अत्यंत चौंकाने वाला मामला सामने आया है। यह मामला बहुत पहले अर्थात् 1892 का है जिसमें एपरैम ग्रीज्जार्ड नाम के एक अश्वेत अफ्रीकी व्यक्ति को 10,000 की श्वेतों की एक भीड़ ने मार डाला था। यह घृणा-आधारित अपराध था। श्वेतों को संदेह था कि एपरैम ग्रीज्जार्ड और हैनरी ग्रीज्जार्ड दोनों अफ्रीकी/अमेरिकी भाईयों ने दो श्वेत बहिनों से बलात्कार किया था; इसलिए 24 अप्रैल, 1892 को श्वेतों की भारी भीड़ ने तैनेसी के गुडलेविले में उन दोनों बहिनों के घर के समीप उन्हें मार डाला गया। इन दोनों भाईयों को पहले गिरफ़्तार किया गया था और उन्हें नेशविले की जेल में डाल दिया गया। लेकिन साक्ष्य के अभाव में उन्हें रिहा कर दिया गया। अभी वे जेल में ही थे कि दस हज़ार श्वेतों की भीड़ ने जेल के गार्ड को बलात् हटा ऐपराम ग्रीज्जार्ड को जेल से बाहर निकाला और घसीटते हुए इग्लैंड स्ट्रीट ब्रिज ले गई वहाँ उसे सरेआम फाँसी लगा दी गई और उसकी मृत देह पर दो सौ से अधिक राउंड फायर किए गए थे।

कहा जाता है कि पीड़ित दोनों बहिनें वैनेसी के गाँव की ब्रूस परिवार की बेटियाँ थी। वे अमेरिकन सिविल युद्ध के स्टेट्स सेना के अधिकारी स्वर्गीय ली ब्रूस की बेटियाँ थीं जो अपनी विधवा माँ के साथ गुडलेविले में रहती थीं। हेनरी ग्रीज्जाड को पहले पकड़ा गया जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसने अपने साथ मेक हार्पर के होने की बात बताई। हेनरी ग्रीज्जार्ड को पहले ही एक भीड़ ने फाँसी पर लटका दिया था। बाद में उसके भाई ऐपरेम ग्रीज्जार्ड और हार्पर को जेल में डाला गया।

इस मामले में जाँच का आदेश भी दिया गया था।

सिविल अधिकारों की एक्टाविस्ट इग बी. बैल्स ने मॉब लिंचिंग के इस मामले की जाँच की और उसने कहा कि एपरैम ग्रिज्जार्ड ब्रूस बहिनों से मिलने अवश्य गया था परंतु अपराध कारित नहीं हुआ था, बस ग्रीज्जार्ड को अंतर्जातीय संबंध रखने के कारण मौत की सज़ा दी गई। वैल्स ने यह कहा कि उस समय जब भीड़ ने एपरैम ग्रीज्जार्ड को जेल से निकाला था उस समय जेल में आठ-वर्ा की एक अश्वेत बच्ची से बलात्कार का एक श्वेत अपराधी भी बंद था किंतु भीड़ ने उसे कुछ नहीं कहा, इसलिए वैल्स ने एपरैम ग्रीज्जार्ड की मॉब लिंचिंग के बारे में कहा कि ''यह उस समय दक्षिण के एथेंस की उन्नीसवीं सदी की सभ्यता की रक्त पिपासा का एक र्मनाक उदाहरण था।''

बाद में मई, 1892 में वहाँ अफ्रीकी अमेरिकनों ने ग्रीज्जार्ड की लीचिंग का बदला लेने के लिए तीन श्वेतों की हत्या कर दी थी। विश्व में मॉब लिंचिंग के इतिहास को जरा-सा कुरेदने पर हैरान कर देने वाले तथ्य सामने आए। बताया गया कि विश्व का मॉब लिंचिंग का सबसे क्रूरतम इतिहास संयुक्त राज्य अमेरिका का रहा है। ऊपर हम मॉब लिंचिंग के जिस मामले पर चर्चा कर आए हैं वह अमेरिका का कोई इकलौता मामला नहीं है बल्कि लिंचिंग शब्द ही अमेरिका से ही निःसृत हुआ है और सर्वाधिक मामले अमेरिका में ही हुए हैं। जैसा कि बताया गया है कि 'लिंचिंग' शब्द ही अमेरिका से ही आया है। वहाँ एक

व्यक्ति हुए हैं विलियम लिंच। कहा जाता है कि अमेरिकी क्रांति के दौरान वर्जीनिया के बेडफर्ड काउंटी का चार्ल्स लिंच अपनी निजी अदालतें लगाने लगा था। अपराधी और विरोधी ड्यंत्रकारियों को बिना किसी क़ानूनी प्रक्रिया के सज़ा देने लगा था। धीरे-धीरे लिंचिंग के रूप में यह शब्द अमेरिका में फैल गया। इस अत्याचार का सर्वाधिक शिकार अमेरिका के दक्षिणी हिस्से में बसे अश्वेत अफ्रीकी-अमेरिकी समुदाय के लोग हुए।

लेकिन बाद में विसकन, इतालवी और स्वयं अमेरिकी भी इसके शिकार हुए।

मॉब लिंचिंग में लोगों की भीड़ के सामने पेड़ों या पुलों से लटका कर पहले अंग-भंग कर उसे ज़िंदा जला कर घोर अमानवीय तरीक़े से हत्याएँ की जाती थीं। इस संबंध में यदि हम आँकड़ों की बात करें तो पता चलेगा कि 'नेशनल एसोसिएशन फॉर दी एडवांसमेंट ऑफ कलर्ड पीपल' के अनुसार 1882 से 1968 तक अमेरिका में भीड़ हत्या में अनेक लोगों को मार डाला गया जिसमें 3,446 अश्वेत मारे गए थे। वहीं 1,297 श्वेत लोग भी इस कुकृत्य के शिकार हुए थे। रिकार्ड में है कि फरवरी, 1918 में भी एक भीड़ ने जिम मैकलेहरॉन नाम के एक अफ्रीकी अमेरिकी की सरेआम बर्बरतापूर्ण हत्या कर दी थी। वहाँ कई मामले मॉब लिंचिंग के ऐसे भी हुए हैं जब श्वेत लोगों की भीड़ ने श्वेतों को ही सरेआम मौत के घाट उतार दिया। उदाहरण के लिए, 1870 में नार्थ केरोलिना के स्टेट सीनेटर जॉन स्टीफेंस को इसलिए श्वेत लोगों की भीड़ ने मार डाला क्योंकि वे मुक्त कराए गए अश्वेत गुलामों की मदद करते थे। इसी तरह, 1837 में एक अख़बार के संपादक एवं प्रकाशक 35-वर्षीय श्वेत एलीजा लवज्वॉय को इसलिए श्वेत भीड़ ने मार डाला क्योंकि वे अश्वेतों को गुलाम बनने की प्रथा का अंत करने के पक्षधर थे।

कुछ निर्दोश श्वेत लोग अश्वेत लोगों की भीड़ द्वारा मार दिए जाते रहे हैं यथा 1975 में भी पिज्को मरियान नाम का एक 54-वर्षीय पोलिश यहूदी मिशिगन दंगों के बीच फँस गया और उसे अश्वेतों ने मार डाला था। अब्राहम लिंकन और मार्टिन लूथर किंग जैसे खुले विचारों वाले व्यक्तियों के विचारों से प्रेरित होकर अफ्रीकी समाज में बहुत बदलाव आया है किंतु अभी कोविड काल के दौरान एक अश्वेत को वहाँ पुलिस ने ही मार डाला था जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अमेरिका के अनेक शहरों में बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन और दंगे हुए थे और देश की काफ़ी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया गया। इसी प्रकार, अन्य देशों में किसी-न-किसी तरह इस प्रकार के कुकृत्यों से लोग प्रभावित होते रहते हैं। इतिहास में यह भी दर्ज है कि 1672 में हालैंड के निवर्तमान प्रधानमंत्री जोहान डी. विट्ट (पजज) तक को एक भीड़ ने नृशंतापूर्ण नंगा करके मार डाला था।

भारत में मॉब लिंचिंग

अब हम भारत में मॉब लिंचिंग की स्थिति पर नज़र डालेंगे। भारत के राट्रीय अपराध ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 2001 से लेकर 2014 तक देश में 2290 महिलाओं की डायन होने की आशंका में पीट-पीट कर हत्या कर दी गई। इनमें से 464 हत्याएँ बिहार में हुई हैं, उड़ीसा में 415 हत्याएँ, आंध्र प्रदेश में 383 ऐसी हत्याएँ हुईं। हरियाणा में 209 हत्याएँ हुईं। ऐसी हत्याएँ प्रायः अंधविश्वासी और भयभीत ग्रामीणों की भीड़ द्वारा कारित की जाती हैं। इन हत्याओं में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह हत्याएँ आदिवासी महिलाओं को स्वयं आदिवासी महिला भीड़ द्वारा कारित की जाती हैं या फिर दलितों की दलित भीड़ द्वारा की जाती हैं, इसलिए इन हत्याओं का राजनीतिक रंग न होने के कारण ऐसी मॉब लिंचिंग को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। इस संबंध में अभी हाल ही में मैंने बिहार की नालंदा ज़िले की वर्तमान अवर जिला जज श्रीमती प्रतिभा से बात की तो उन्होंने बताया कि अब बिहार में ऐसे मामले नहीं के बराबर रह गए हैं।

भारत में मॉब लिंचिंग की छुट-पुट घटनाएँ हमेशा होती रहती हैं तथा कई बार चोरी के संदेह में उन्मादी भीड़ संदेहास्पद व्यक्ति को पीट देती है या पीट-पीट कर उसे मार ही देती है। देश के कई इलाकों में कई बार चोरी, प्रेम प्रसंग या ग़लत ड्राइविंग के आरोप में पकड़े गए लोगों की उन्मादी भीड़ इसलिए हत्या कर देती है कि हत्यारों को लगता है कि गिरफ़्त में आए लोगों को छोड़ देने से उन्हें क़ानूनी प्रक्रिया से सज़ा नहीं मिल पाएगी या वे छूट जाएँगे या सालों बाद फैसला आएगा। यह बात लोगों को सही लगती हे कि क़ानूनी एजेंसियाँ मुस्तैदी से कार्य नहीं करती जिससे अपराधी अधिकांशतः छूट जाते हैं और उन्मादी भीड़ की मानसिकता यह बनती है कि उस व्यक्ति का वहीं तत्काल फैसला कर दिया जाए। परंतु भारत में क़ानून का शासन है और इस तरह संदेहास्पद व्यक्तियों की पिटाई या उसकी हत्या किसी भी दृटि से उचित नहीं है, न न्याय की दृटि से और न ही नैतिकता और मानवीय मूल्यों की दृटि से। अभी तक उन्मादी भीड़ के दोाियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की भिन्न-भिन्न धाराओं के अंतर्गत कार्यवाही की जाती रही है।

भारत में मॉब लिंचिंग की एक और प्रव त्ति देखी गई है। यह अधिकांशतया भिन्न-भिन्न संस्कृति समूहों में 'तनाव' और 'विवाद' के कारण केस कारित किए जाते हैं। 29 सितंबर, 2006 को महऱाट्र के भंडारा ज़िले के खेरलांजी गाँव में दलित वर्ग के एक परिवार के चार सदस्यों की पिटाई कर उनमें से उस परिवार की दो महिलाओं को नंगा कर उन्हें घुमाया गया और बाद में उनकी हत्या कर दी गई। यह कुकृत्य एक दलित वर्ग की उन्मादी भीड़ ने ही कारित किया था। अभी कुछ वर्ष पहले 18 मई, 2017 में झारखंड में सात व्यक्तियों को बच्चा चोर होने के संदेह में उन्मादी भीड़ ने मार डाला था। इनमें से चार व्यक्ति मुसलमान थे और तीन हिंदू थे। वैसे भारत में मॉब लिंचिंग को लेकर तब से इस अपराध के तरफ़ अधिक ध्यान दिया जाने लगा जब वर्ष 2015 में उत्तर प्रदेश के दादरी के गाँव बिसाड़ा में डेनिश अखलाक नाम के एक व्यक्ति को बीफ खाने की अफ़वाह पर भीड़ द्वारा इतना पीटा गया कि उसकी म त्यु हो गई। तत्पश्चात्, ऐसे कई मामलों में अब तक 68 लोगों की जान जा चुकी है, इनमें दलितों के साथ हुए अत्याचार भी शामिल हैं। किंतु गोरक्षा के नाम पर हुए मामलों ने इस मामले की भयावहता और तात्कालिकता को बहुत बढ़ा दिया है। गोरक्षा के नाम पर अधिकांश मामलों में मुस्लिम वर्ग के लोगों को निशाना बनाया गया है लेकिन हिंदू लोग भी मॉब लिंचिंग का निशाना बने हैं।

वर्ष 2018 में तहसीन पूनावाला मामले में उच्चतम न्यायालय ने मॉब लिंचिंग को 'भीड़ तंत्र के एक भयावह कृत्य' की संज्ञा दी थी और साथ ही उसने केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को मॉब लिंचिंग की समस्या के समाधान के लिए क़ानून बनाने के लिए कहा था और साथ ही दिशा-निर्देश भी जारी किए थे किंतु केंद्रीय स्तर पर इस बारे में अभी कोई क़ानून नहीं बनाया गया है। हाँ, राजस्थान सरकार ने राजस्थान लिंचिंग से संरक्षण विधेयक, 2019 अवश्य पास कर राष्ट्रपति के पास भेज दिया है। अब तक हुए मॉब लिंचिंग के लगभग 200 मामलों में से 86 प्रतिशत मामले राजस्थान में ही हुए हैं। राजस्थान में पहलूखान का मामला 1 अप्रैल, 2017 का है। अलवर में भीड़ ने उसे इतना पीटा कि दो दिन बाद उसकी मौत हो गई। इसी प्रकार, 20 जुलाई, 2018 को गौरक्षकों ने रकबर खान को पीटा और उसकी मृत्यु हो गई। इसी घटना का संज्ञान लेते हुए राज्य सरकार से कार्यवाही करने संबंधी रिपोर्ट माँगी। राजस्थान में गोरक्षा मुद्दे पर ही मॉब लिंचिंग की घटनाएँ नहीं हुई बल्कि हरीश जाटव नाम के एक व्यक्ति द्वारा बाईक से एक बुजुर्ग की मृत्यु कारित करने के कारण गुस्साई भीड़ ने उसे पीट-पीट कर घायल कर दिया जिससे बाद में उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार 2 सितंबर, 2019 को जोधपुर के फलौदी क्षेत्र में एक बच्चे को चोर समझ कर उसकी जम कर पिटाई की गई और उसे अमानवीय यातनाएँ दी गईं।

राजस्थान ने अपने यहाँ बढ़ती मॉब लिंचिंग की घटनाओं के कारण राजस्थान लिंचिंग से संरक्षण संबंधी विधेयक, 2019 पारित किया। ज्ञातव्य है कि मॉब लिंचिंग के संबंध में पश्चिम बंगाल और मणिपुर भी ऐसा ही क़ानून बना चुका है। पश्चिम बंगाल ने अगस्त, 2019 में द वेस्ट बंगाल (प्रिवेंशन ऑफ लिंचिंग) विधेयक, 2019 सर्व-सम्मति से पारित किया जिसकी उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें दोषियों को मृत्यु दंड देने का प्रधान किया गया है।

पश्चिम बंगाल विधान सभा में लिंचिंग विरोधी क़ानून पर बहस के दौरान मुख्य मंत्री ममता बैनर्जी ने कहा, ''लिंचिंग एक सामाजिक बुराई है और हम सभी का उसके ख़िलाफ़ एकजुट हो कर संघर्ष करना होगा। उच्चतम न्यायालय ने लिंचिंग के ख़िलाफ़ केंद्र और राज्य सरकारों को क़ानून बनाने के लिए कहा है।''

पश्चिम बंगाल में लिंचिंग विरोधी विधेयक तो पारित हो गया परंतु वहाँ लिंचिंग की घटनाएँ नहीं रुक रहीं। समाजशास्त्रियों का कहना है कि समाज में बढ़ती असहिष्णुता के साथ ही ऐसी घटनाओं का धार्मिक पहलू भी है। ज़्यादातर मामलों में पीटने और पिटने वाले अलग-अलग कौम के होते हैं।

उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश

राजस्थान, पश्चिम बंगाल और मणिपुर में लिंचिंग विरोधी अपराधों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था किए जाने के बावजूद देश में मॉब लिंचिंग और हिंसा की घटनाएँ रुक नहीं रही हैं। इससे पहले उच्चतम न्यायालय मॉब लिंचिंग संबंधी घटनाओं पर रोक लगाने के लिए दिशा-निर्देश जारी कर चुकी है। जब तक मॉब लिंचिंग के विरुद्ध कोई कड़ा क़ानून नहीं आता, उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश ही देश का क़ानून माना जाएगा। यह दिशा-निर्देश क्या हैं, यहाँ उनकी भी चर्चा कर लेते हैं–

मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने मॉब लिंचिंग पर अंकुश लगाने के लिए दिशा-निर्देश जारी करते हुए कहा कि सभी राज्यों को इन दिशा-निर्देशों के पालन के संबंध में रिपोर्ट फाइल करनी होगी। दिशा-निर्देश इस प्रकार हैं–

(1) राज्य सरकारें मॉब हिंसा और लिंचिंग की घटनाओं को रोकने के लिए अपने यहाँ प्रत्येक ज़िले में किसी वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को नामित करेंगी।

(2) राज्य सरकारें उन ज़िलों, संभागों और गाँवों की सूची तैयार करेंगी जहाँ हाल में मॉब हिंसा और लिंचिंग की घटनाएँ हुई हैं।

(3) नोडल अधिकारी अपने ज़िलों अथवा क्षेत्रों में मॉब लिंचिंग संबंधी मामलों के समाधान के लिए ऐसे मामलों को वहाँ के पुलिस महानिदेशक के ध्यान में लाएँगे।

(4) प्रत्येक पुलिस अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह मॉब लिंचिंग के अपराध के लिए एकत्रित भीड़ को तितर-बितर करे।

(5) केंद्र सरकार और राज्य सरकारें रेडियो, टेलीविज़न तथा अन्य मीडिया मंचों के माध्यम से यह बात प्रसारित करें कि लिंचिंग और भीड़ हिंसा करने वालों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाएगी।

(6) सरकारें सोशल मीडिया मंचों से भड़काऊ सामग्री के प्रसारण पर रोक लगाएगी और ऐसे अपराधियों के विरुद्ध तत्काल एफ.आई.आर. करेंगी।

(7) राज्य सरकारें पीड़ित व्यक्तियों को मुआवज़ा देने के लिए योजनाएँ बनाएगी।

(8) राज्य सरकारें सुनिश्चित करेंगी कि पीड़ितों को किसी तरह से भी सताया न जाए।

(9) यदि कोई पुलिस अधिकारी जानबूझ कर आवश्यक कार्यवाही करने में लापरवाही करेगा तो उसके विरुद्ध उचित कार्यवाही भी की जाएगी।

(10) इसके अलावा, अपराधियों के विरुद्ध 'फास्ट ट्रेक'

न्यायालयों/नामित न्यायालयों में केस चलाए जाएँ और मामलों को यथासंभव छह महीने में निपटाया जाए।

मॉब लीचिंग और भारतीय दंड संहिता

वैसे मॉब लिंचिंग संबंधी मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 300 एवं 302 के अंतर्गत मुकद्दमा दर्ज किया जा सकता है। धारा 302 में यह प्रावधान है कि जो भी किसी की हत्या कारित करता है, उसे म त्यु दंड या आजीवन कारावास का दंड दिया जा सकता है और उससे जुर्माना भी वसूला जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसे बर्बर अपराधों के लिए कठोर दंड देने की व्यवस्था करने वाले क़ानून तो हैं। अतः ज़रूरत इस बात की है कि उन्हें कठोरता से लागू किया जाए।

राजस्थान का मॉब लिंचिंग कानून

राजस्थान द्वारा पारित मॉब लिंचिंग संबंधी विधेयक में मॉब लिंचिंग की परिभाषा भी दी गई है जो इस प्रकार है– दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह में स्वाभाविक या योजनाबद्ध तरीक़े से धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान, भाषा, आहार-व्यवहार, लैंगिक अभिविन्यास, राजनीतिक संबद्धता नस्ल के आधार पर मॉब द्वारा हिंसा करना मॉब लिंचिंग कहलाता है। इस प्रकार, इस परिभाषा का दायरा काफ़ी व्यापक है जिसमें व्यक्ति के संविधान प्रदत्त मूल अधिकारों या मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है। भारत के संविधान में अनुच्छेद 21 में प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने जीवन जीने के अधिकार की बहुत विस्तृत व्याख्या की है। भीड़ के द्वारा किसी भी आधार पर हिंसा का कोई औचित्य नहीं है। भारत में विधि का शासन है; तो भीड़ अपने हाथ में क़ानून कैसे ले सकती है?

यद्यपि केंद्र सरकार ने अभी कोई क़ानून नहीं बनाया है परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि अपराधियों को दंड नहीं दिया जा सकता। वैसे भी यह प्रश्न उठता है कि क्या कठोर क़ानून बन जाने से ही मॉब लिंचिंग पर क़ाबू पाया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देशों के बावजूद और भारत में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बावजूद यह लोमहर्षक घटनाएँ क्यों हो रही हैं?

भारत में बलात्कार संबंधी क़ानून में मृत्यु दंड की व्यवस्था की गई और निर्भया कांड के चार अपराधियों को मृत्यु दंड दिया जा चुका है और भी अनेक मामलों में अपराधियों को जीवन कारावास या लंबे समय तक के कारावास का दंड दिया जा चुका है परंतु प्रश्न यह है कि क्या समाज में बलात्कार की घटनाएँ कम हुईं?

मॉब लिंचिंग के अपराधियों के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश होते हुए भी क्या मॉब लिंचिंग की घटनाओं पर अंकुश लगा? 16 अप्रैल, 2020 को महाराष्ट्र में पालघर ज़िले में गड़ी चंचाले गाँव में दो साधुओं और उनके कार चालक की भीड़ द्वारा लिंचिंग के लोमहर्शक चित्र आज भी देश की आँखों के सामने होंगे जिसमें पुलिस अधिकारी ने स्वयं ही साधुओं को लिंचिंग के लिए भीड़ के हवाले कर दिया था।

इस मामले में भीड़ से अधिक तो उस पुलिसकर्मी पर गुस्सा अधिक आता है जिसने साधु को भीड़ के हवाले कर दिया जो उस पुलिसकर्मी का शिशुवत हाथ थामे अपनी जीवन की उससे भीख माँग रहा था।

यद्यपि इसमें नौ नाबालिग लड़कों और 152 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया और संलिप्त पुलिसकर्मियों के विरुद्ध भी कड़ी कार्यवाही की गई किंतु यह मुकद्दमा अभी तक निचली अदालत में कितना आगे बढ़ा है उसका कुछ अता-पता नहीं है। वैसे पक्षकार में साधुओं की हत्या का मामला अब उच्चतम न्यायालय में पहुँच गया है। पिछली सुनवाई में उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र सरकार से रिपोर्ट माँगी थी तो महाराष्ट्र सरकार ने फाइल की गई अपनी रिपोर्ट

में कहा है कि इस मामले में निचली अदालत में चार्जशीट दाख़िल हो चुकी है और लापरवाही के आरोपी पुलिसकर्मियों के विरुद्ध सख़्त कार्यवाही की गई है। महाराष्ट्र सरकार ने अपने हलफ़नामे में यह भी बताया है कि एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को बर्खास्त किया गया है और 2 को अनिवार्य सेवा-निवृत्ति दे दी गई है। 252 व्यक्तियों के विरुद्ध चार्जशीट दाख़िल की गई है। उच्चतम न्यायालय में अब इस मामले में अगली सुनवाई 15 नवंबर, 2020 को है। क़ानून अपराधों को रोकने का बहुत बड़ा हथियार है परंतु हमें सोचना यह होगा कि क्या केवल कठोर क़ानून बना देने से इस बुराई पर रोक लगेगी? हम इस समस्या के समाधान के लिए कठोर क़ानूनों की गुहार लगा कर क्या केवल हम विंडो ड्रेसिंग ही कर रहे हैं या समस्या की जड़ तक पहुँच कर उस जड़ को समूल नष्ट करने के बारे में सोचेंगे?

भीड़ हिंसा और लिंचिंग का एक तो यह कारण है कि देश की न्याय व्यवस्था इतनी जटिल, महँगी और समय-खाऊ है कि बहुत सारे लोगों को यह लगता है कि अभियुक्त हाथ में आया है इसको स्वयं ही कड़ा दंड दे दो क्योंकि इसे न्यायालय सज़ा दे पाएगा या नहीं? यह अनिश्चित है। न्यायालयों में न्याय के संबंध में तरह-तरह के अपनाए गए हथकंडे अपराधी को सज़ा दिलाने में सफल नहीं हो पाते; सभी ने देखा है कि कैसे निर्भया के अपराधी भी फाँसी की सज़ा से बचने के लिए क्या-क्या जुगत भिड़ाते रहे जबकि समूचा देश ऐसे न शंस अपराधियों को शीघ्र-से-शीघ्र फाँसी के फँदों तक लटकता देखना चाहते थे। इसलिए सभी प्रकार के अपराधों पर अंकुश लगाने के लिए न्याय व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त और सभी की पहुँच के अंदर सुनिश्चित करना है।

इसके अलावा, वर्तमान समाज इतना पतनोन्मुख है कि लगता है उसमें मानवता बची ही नहीं है। मानव मूल्यों का इतना अवमूल्यन हो गया है कि हर कोई जीवन की अंधी दौड़ में भाग रहा है और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए कुछ भी करने को उत्सुक रहता है। इसका एक कारण तो यह भी है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था ने हर किसी का सरोकार पैसा बना दिया है। बच्चों के पालन-पोषण में न कहीं अनुशासन है, न संयम; तो संस्कार कहाँ से आएँगे? वैसे भी कहते हैं कि 'जैसा खाओ अन्न, वैसा बनेगा मन।' वर्तमान फास्ट फूड की संस्कृति ने देश के बच्चों के खाने के जायके ऐसे बिगाड़ दिए हैं कि उन्हें घर के सादे व्यंजन पसंद नहीं आते। 'फास्ट फूड' में पता नहीं किस प्रकार के मसालों का इस्तेमाल होता है कि जो बच्चों में मोटापा तो लाते ही हैं और उनकी सेहत का सत्यानाश भी करते हैं।

साथ ही, उसकी मनोवृत्तियों को उद्दीप्त करते हैं, जिससे उनका मन अधिकांशतया पढ़ाई में ध्यान कम, कंप्यूटर पर ऊल-जलूल हिंसा-भरे खेलों पर ज़्यादा रहता है और वह परिवार के कहने में कम अपनी मन-मर्ज़ी के मालिक अधिक बन जाते हैं। ऊपर से भारत की शिक्षा व्यवस्था भी ऐसी है जो डिग्रियों की बारिश तो करती है परंतु वह युवा पीढ़ी को इनसान नहीं, अधिकांशतया 'बुल्ली' अधिक बनाती है।

ऐसी पढ़ी-लिखी पीढ़ी भी जब तैयार होती है वह केवल विशेष प्रकार के रोज़गार के लिए उपयुक्त होती है। हुनर के अभाव में उन्हें रोज़गार मिल नहीं मिल पाता, जिससे उनकी मानसिकता उच्छशृंखल, हिंसक और गुंडागर्दी की अधिक बन जाती है। ऐसे में जीवन में उनसे संयम, सदाचार और सभ्य व्यवहार की आशा करना रेत में मछलियाँ पकड़ना जैसा हो जाता है; और परिणाम यह हो रहा है कि समाज में हिंसक कार्यकलाप, बलात्कार और अत्याचार जैसे अपराधों में बाढ़-सी आ गई है। ऐसे लोग जब किसी भीड़ का हिस्सा बनते हैं तो बर्बरता और न शंसता की किसी भी सीमा तक चले जाते हैं।

देश में वर्तमान में सिनेमा और टेलीविज़न सीरियल मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण साधन बने हुए हैं। देखने की बात यह है कि ऐसे मनोरंजन के साधनों के माध्यम से लंबे समय से क्या परोसा जा रहा है? अधिकांश फ़िल्मों में हिंसा और

अश्लीलता का आधिक्य रहता है। किशोर और युवा वर्ग जब ऐसे कार्यक्रम देखता है तो आपको क्या लगता है वह कीचड़ में कमल के समान निर्लिप्त रहेगा? उनके जीवन का यही समय तो प्रभाव ग्रहण का समय होता है। मेरे विचार से आज जो समाज में हिंसा का बोलबाला है या क़ानूनों के कड़ा होने के बावजूद यौन शोषाण के अपराधों में वृद्धि हो रही है, उसका स्रोत हमारी फ़िल्में हैं जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर षड्यंत्र के तहत अथवा अन्यथा समाज को हर प्रकार से तहस-नहस करने पर उतारू हैं।

यदि किसी फ़िल्म में 50 प्रतिशत हिंसा और उसे ग्लैमरस बनने का प्रयास रहता है तो उसकी देखा-देखी दूसरी फ़िल्मों में हिंसा 70 प्रतिशत या 80 प्रतिशत दिखाई जाएगी और लगभग हर फ़िल्म में अश्लीलता से लैस एक 'आइटम् सांग' तो रहता ही है। आज का युवा वर्ग से चारों तरफ़ फैली हिंसा और खुलेआम पर्दे पर यौन संबंधों का प्रदर्शन देखकर उनसे साधु-संत बने रहने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। जब कोई अपराधों में लिप्त हो अथवा अन्यथा हिंसा आदि में लिप्त होता है तो समाज में छाती पीटना आरंभ हो जाता है और कड़े क़ानून बनाने की आवाज़ उठने लगती हैं।

लेकिन बुराई या समस्याओं का स्रोत क्या है? इस मूल मुद्दे पर किसी का ध्यान नहीं जाता। कई बार आश्चर्य होता है कि क़ानून होने के बावजूद भारत के सेंसर बोर्ड ऐसी फ़िल्मों के प्रदर्शन की अनुमति कैसे दे देता है? फ़िल्मों में हिंसा प्रदर्शन और महिलाओं के अश्लील चित्रण तुरंत बंद होने चाहिए।

महिलाओं के अश्लील निरूपण पर अंकुश लगाने के लिए 1987 में एक क़ानून बना था और उसे लागू करने के लिए नियम भी बना कर उन्हें लागू किया गया था किंतु फ़िल्मों और कई बार टेलीविज़न आदि पर आने वाले विज्ञापनों को देख कर अहसास होता है कि भारत के क़ानून ख़ूबसूरत 'बुकशेल्फ़ो' में दफ़न होने के लिए बनाए जाते हैं।

ऊपर मैंने शिक्षा व्यवस्था के संबंध में उल्लेख किया है।

हमारी शिक्षा प्रणाली और दूसरी व्यवस्था ने भारत को दो भागों में बाँट दिया है— इंडिया और भारत। इंडिया में अच्छी शिक्षा, अच्छी चिकित्सा सेवा, अच्छे रोज़गार और जीवन को ऐश्वर्यगत रूप से जीवन की विपुल सुविधा साधन उपलब्ध हैं : और भारत में ग़रीबी, अव्यवस्था, अपराध और अत्याचारी जीवन-शैली है। इंडिया के काइयाँ तत्त्व भारत के बेबस और निरीह लोगों के सामने चंद सिक्के फेंक कर उनकी भीड़ इकट्ठी करते हैं और विरोध प्रदर्शन, जलूस, रैलियों के लिए ऐसी भीड़ का इस्तेमाल करते हें, ऐसी भीड़ पालघर के साधुओं की हत्या कर देती है। ऐसे ही तत्त्वों को बरगला कर उनसे कभी जाति के नाम पर दंगे कराए जाते हैं। 'मास्टर माइंड' अपने वातानुकूलित कक्षों में हमेशा आराम फरमाते हैं और मोहरों को या तो लिंचिंग का शिकार होना पड़ता है या फिर लिंचिंग के अपराध में जेलों की हवा खानी पड़ती है। ऐसा लगता है हमारा समाज भीतर से गल-सड़ चुका है तथा जहाँ मानवीय मूल्यों का अंतिम संस्कार कर दिया गया है। आज संयम और अनुशासन जैसे शब्द अर्थहीन हो चुके हैं।

मॉब लिंचिंग भीतर तक सड़-गल चुके समाज का एक वीभत्स एवं भद्दा आईना है। ऊपर से आईना साफ़ करने से कुछ नहीं होगा, आईना ही बदलना होगा। क़ानून अपराध पर अंकुश तभी लगा पाता है जब समाज का स्वरूप स्वच्छ, स्वस्थ और सुंदर हो। और कहीं कोई अपवाद स्वरूप अपराधी तत्त्व क़ानून को हाथ में लेने का प्रयास करता है तभी क़ानून आगे बढ़ कर उसे दंड दे कर उसे सुधार सकता है। अपराधी समाज अपराधियों को दंड देगा भी तो उससे कहीं कुछ बदलाव नहीं होगा। समाज सुधार के लिए हमें आमूल परिवर्तन करना होगा।

व्यंग्य यात्रा को साहित्यिक पत्रकारिता पुरस्कार

असहमति में भी सहमति हो तो सच्चा आनंद है

भगतसिंह कोश्यारी, राज्यपाल महाराष्ट्र एवं गोवा

आज जब अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ बंद हो रही है, ऐसी विकट स्थिति में हिंदुस्तानी प्रचार सभा पत्रिकाओं को आर्थिक मदद कर प्रोत्साहन दे रही है, इस कठिन काम के लिए संस्था का अभिनंद है। व्यक्ति आते-जाते हैं लेकिन संस्थाएँ सालोंसाल चलती रहती है और चलती रहेंगी। उन्होंने 'व्यंग्ययात्रा' पत्रिका से ही एक दृष्टांत देते हुए पत्रिकाओं के संदर्भ में कहा कि शहर के पौधे बनने की बजाए, गाँव के पौधे बने जो मुरझाते नहीं है। ये विचार श्री भगतसिह, कोश्यारी, राज्यपाल-महाराष्ट्र और गोवा ने राजभवन में आयोजित एक भव्य समारोह में व्यक्त किए। प्रसंग था-राष्ट्रपति महात्मा गाँधी द्वारा 1942 में स्थापित संस्था हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई के वर्ष 2019-2020 के 'महात्मा गांधी' हिंदी पत्रिका पुरस्कार विवरण समारोह का।

श्री कोश्यारी जी ने अपनी यादों को टटोलते कहुए कहा कि वे 'हंस' पत्रिका नियमित रूप से पढ़ते थे और संपादक श्री राजेन्द्र यादव जी की कई बातों से सहमत भी नहीं हो पाते थे किंतु असहमति में भी सहमति हो जाए तो आनंद है और वही सच्चा पाठक है। उन्होंने चिंता व्यकत की कि नई पौद्योगिकी-तकनालॉजी के दौर में पत्रिकाएँ चंद्रमा की तरह छोटी-बड़ी होती रहती है परंतु ध्यान रखना होगा कि अच्छी पत्रिकाएँ विलुप्त न हों।

राज्यपाल जी ने एक लाख रूपये का प्रथम पुरस्कार 'नया ज्ञानोदय' को द्वितीय 75 हजार का पुरस्कार 'व्यंग्ययात्रा

को और तीसरा पुरस्कार 'हंस' पत्रिका को स्मृति चिन्ह के साथ दिया।

'नया ज्ञानोदय' की ओर से ज्ञानपीठ के ट्रस्टी श्री मुदित जी ने सम्मान के प्रत्युत्तर में कहा कि ये हजारों हजार पाठकों का सम्मान है जो पत्रिका को लोकप्रिय बनाते हैं। हम इस पत्रिका को साढ़े छह दशक से नियमित रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। द्वितीय पुरस्कार विजेता 'व्यंग्ययात्रा' के संपादक और वरिष्ठ व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने कहा—यह एक भिक्षुक का सम्मान है। 2004 में जब से यह पत्रिका आरमभ हुई है तब से इसने भिक्षाम देहि की पुकार लगाई और कटोरा व्यंग्य शुभचिंतकों के समाने रखे दिया। 17 वर्ष बाद भी कटोरा भरने वालों ने इसे खाली नहीं रहने दिया। इसे लबालब भरा रखा। यह यह सम्मान मुख्यधारा में अछूत माने जाने वाली व्यंग्य विधा का सम्मान है। इस पुरस्कार के द्वारा व्यंग्य को साहित्य की पंगत में बैठने के लिए हिंदुस्तानी प्रचार सभा का धन्यवाद। हिंदुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना गांधी जी ने की थी। गांधी जी ने अछूतोद्धार किया था। आज व्यंग्य का अछूतोद्धार हो रहा है। मुख्यधारा की पत्रिकाओं, नया ज्ञानोदय और हंस के साथ व्यंग्य यात्रा भी पुरस्कृत हो रही है। व्यंग्य यात्रा का अपना कार्यालय नहीं है। उसका तो अपना झोपड़ा तक भी नहीं है। कोई छूट भी नहीं है जो चाय पिला सके। मेरा घर ही कार्यालय है और मेरी पत्नी ही चाय पिलाने वाली छोटू है।

व्यंग्य यात्रा ने कभी साहित्य के राजमार्ग पर चलने का घमंड नहीं पाला है। इस पत्रिका ने पिछले 17 वर्ष में अपने सहयात्रियों के बल पर छोटी-छोटी कुदलों से पगडंडियाँ तैयार की हैं। सार्थक व्यंग्य विमर्श इसका मिशन है। मिशनरी सोच के कारण ही 17 वर्ष पूर्व इसका मूलय 20 रुपये था और आज भी वही कीमत है। पर साहित्य में इसका मूल्य बढ़ा है। हिंदुस्तानी प्रचार सभा, स्पंदन, पंडित बृजलाल द्विवेदी आदि साहित्यिक पत्रकारिता सम्मानों ने इसे मूल्यवान किया है।

तीसरे पुरस्कार को ग्रहण करते हुए साहित्यकार स्व. राजेन्द्र यादव जी की बेटी और 'हंस' की संपादक रचना यादव ने हिंदुस्तानी प्रचारन सभा के संदर्भ में कहा कि एक ऐसी ही संस्था है जो पत्रिकाओं को पुरस्कृत करती है क्योंकि समाज में ऐसी पत्रिकाओं का योगदान है और इसकी मान्यता भी है। समाज में ऐसी गतिविधियों को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। उन्होंने हलके-फुलके अंदाज में कहा कि तीसरा पुरस्कार आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है कि अभी कुछ और सुधार की आवश्यकता है। हम प्रयास करेंगे कि भविष्य में दूसरे और तीसरे स्थान पर आ सकें। प्रारंभ में सभा के ट्रस्टी और मानद कोषाध्यक्ष श्री अरविंद डेगवेकर ने कहा कि देश से प्रकाशित होने वाली 46 पत्रिकाओं की प्रविष्टियाँ प्राप्त हुई थीं उनमें से निर्णायकों सर्वश्री वरिष्ठ पत्रकार-संपादक विश्वनाथ सचदेव और चर्चित पत्रकार हरीश पाठक ने उक्त तीन पत्रिकाओं का चयन किया। उन्होंने यह भी कहा कि इस वर्ष पुरस्कार की राशि बढ़ा दी गई है। सभा के ट्रस्टी एवं सचिव ने राज्यपाल महोदय को भारत के पहले क्रिया शब्दकोश की प्रति भेंट करते हुए कहा कि सभा ने भारत की कई जेलों में पुस्तकालय खोले हैं और अब देश के सभी 144 सेंट्रल जेलों में कैदियों को पढ़ने के लिए पुस्तकालय खोलने का विचार है। गुजरात की शिक्षण संस्था में भी हमने पुस्तकालय खोले हैं। श्रीलंका के केलानिया विवि और मॉरीशस के महात्मा गाँधी संस्थान में हिंदी पुस्तक खंड की स्थापना की है जिसमें उर्दू की पुस्तकें भी शामिल हैं और अब हम बहुत जल्द टोकिया विधि में भी इसे खोलने जा रहे हैं। प्रारंभ में सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका शशि निगम ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। कार्य़म का शानदार संचालन सभा के निदेशक और साहित्यकार संजीव निगम ने किया। राष्ट्रगान से प्रारंभ और अंत होने वाले इस गरिमामय कार्यक्रम में महानगर मुंबई के चुनिंदा साहित्यकार, कवि, लेखक डॉ. वागीश सारस्वत, डॉ. अनंत श्रीमाली, चित्रा देसाई, मंजु, लोढ़ा, प्रकाश रामकुमार, गीतकार मनोज मुंतजिर, शेखर अस्तित्व, पत्रकार ओम प्रकाश तिवारी, हरीश पाठक, कमलेश पाठक, शैलेष तिवारी, आशा कुंद्रा आदि उपस्थित थे।

पुस्तक समीक्षा

उम्र भर देखा किए (जीवनी सूरज प्रकाश लेखक : विजय अरोड़ा)

समीक्षक : डॉ. प्रताप सहगल

उम्र भर देखा किए, हिन्दी के जाने-माने कथाकार सूरज प्रकाश की जीवनी है। इसे उन्हीं के छोटे भाई विजय अरोड़ा ने, जो स्वयं भी एक कथाकार हैं, बड़े मनोयोग से लिखा है। एक जीवित लेखक अक्सर आत्मकथा लिखते हैं। हिन्दी में राजनेताओं या सेठों की जीवनियाँ तो मिलती हैं लेकिन किसी जीवित लेखक की जीवनी विरल ही होगी।

यह सत्य है कि इसे लिखने के लिए बहुत सारे इनपुट स्वयं सूरज ने ही अपने छोटे भाई को दिए होंगे लेकिन जिस तरह से विजय ने उन्हें पिरोया है, वह तो उन्हीं का कौशल है। सूरज प्रकाश की पारिवारिक पृष्ठभूमि, भारत विभाजन के समय परिवार का तभी बने पूर्वी पाकिस्तान के बन्नू से भारत आना और दुर्धर्ष संघर्ष से इस जीवनी की शुरुआत हुई है। पुनर्स्थापन के इसी दौर में 1952 में सूरज प्रकाश का जन्म होता है। विजय अरोड़ा उनसे लगभग आठ साल छोटे हैं। अब आप अनुमान लगा सकते हैं कि एक बड़े भाई और प्रख्यात कथाकार सूरज को एक दूसरे कथाकार और छोटे भाई विजय ने किस तरह से अपने अंदर उतारा होगा और फिर उसे शब्द चित्रों में सृजित किया होगा।

विजय ने बहुत सधे हुए ढंग से अपने इस लेखन में त्वरा शैली का इस्तेमाल किया है। छोटे-छोटे खंडों में सूरज प्रकाश के जीवन की घटनाएँ एक-दूसरी से लिपटी चली आती हैं। देहरादून से बम्बईए बम्बई से अहमदाबाद और फिर पुणे में ही उनके जीवन का अधिक हिस्सा कटा है। कुछ इधर-उधर काम करने के बाद उन्होंने सबसे लंबी नौकरी रिज़र्व बैंक आफ इंडिया में ही की है। यह सब तो ब्यौरे हैं। इन ब्यौरों को दिलचस्प तरीके से उदघाटित करना, न सिर्फ उदघाटित, बल्कि उन्हें सर्जनात्मक आख्यान के रूप में शब्दों में बाँधना। इस अभियान में विजय विजयी साबित होते हैं।उम्र भर देखा किए सूरज प्रकाश के जीवन एवं लेखकीय संघर्ष को समानंतर रूप से साधते हुए चलती हुई जीवनी है। बीच-बीच में कुछ दोस्तों का ज़िकश भी आता है लेकिन वह केवल ज़िक्र भर होता है। मुझे लगता है कि दोस्तों के साथ हुई बैठकें, साहित्यिक अथवा दूसरी मुठभेड़ें, उनके सर्जनात्मक तनाव, वैचारिक मतभेद, महत्वाकांक्षाओं की टकराहटें भी इस जीवनी का हिस्सा बनतीं तो शायद यह जीवनी एक लेखक के अंतर्लोक को खोलने में और अधिक सक्षम होती। यह हिस्सा मुझे अनुपस्थित लगा। इसी तरह से उनकी पत्नी मधुए जो स्वयं भी एक लेखक हैं, उनके साथ भी हुई होंगी कभी कुछ वैचारिक असहमतियाँ। अगर हुई हैं तो वे भी यहाँ दर्ज नहीं हैं। पारिवारिक संघर्ष है, सूरज प्रकाश के दफ्तरी जीवन में होने वाली ऊठा-पटक भी है। इस सारे माहौल में सृजन करने की छटपटाहट भी है। अहमदाबाद प्रवास सृजनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक उपजाऊ रहा है तो पुणे प्रवास सबसे अधिक खुष्क। इस जीवनी से ही पता चलता है कि सूरज ने एक ही जीवन में दो जीवन जिए हैं। एक उस भयानक रात की जानलेवा घटना से पहले और एक जीवन उसके बाद। इस दुर्घटना ने उनके जीवन को देखने परखने का नज़रिया भी बदला।

यह जीवन सूरज प्रकाश के बहुत सारी अज्ञात अथवा अल्प ज्ञात तथ्यों को हमारे सामने खोलती है। उनकी जीवनी में एक आम पाठक की क्या दिलचस्पी हो सकती है। उनकी जीवनी कोई क्यों पढ़े? इस सवाल का जवाब भी लेखकीय संघर्ष और उसे बयान करने के अंदाज़ के साथ जुड़ा हुआ है। यह दोनों ही बातें इस जीवनी के पक्ष में जाती हैं। विजय ने छोटे-छोटे लेकिन महत्वपूर्ण प्रसंगों का कहानी की तरह से बयान किया है। पढ़ने का जो सुख मिलना चाहिए, वह इसे पढ़ते हुए मिलता है। इसीलिए इसकी भूमिका लिखते हुए प्रेम जनमेजय ने लिखा है 'एक एक पेज सिप करते

हुए।' यह सिप कॉफी का हो सकता हो और एक पैग का भी। लेकिन यहाँ यह सिप एक एक पृष्ठ और एक-एक शब्द का है। जितने मनोयोग से विजय ने इस जीवनी को अपने शब्दों से संवारा है, उतनी ही संलग्नता और शिद्दत के साथ प्रेम ने अपनी भूमिका दर्ज की है।कोई भी जीवनी या आत्मकथा कभी भी पूरी नहीं होती। वस्तुतः पूर्णता तो कहीं होती ही नहीं। पूर्णता मिथ है। इसलिए यह जीवनी भी बहुत कुछ कहने के बावजूद कुछ और कहने के लिए छोड़ देती है। उसके लिए सूरज प्रकाश को शायद आत्मकथा लिखनी पड़ेगी। यह तो भविष्य की बात है फिलहाल आप जीवनी को पढ़कर एक लेखक के संघर्ष के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। पढ़ने का आनंद, सो अलग। इसके लिए विजय अरोड़ा को बधाई। आपके मन में इसे पढ़ने की इच्छा जगी हो तो तुरंत कार्रवाई करें।

सराहनीय पुस्तक। हर एक के पढ़ने योग्य।

पत्थर का देवता

लेखक : डॉ. संजीव कुमार

हम देवता क्यों बनाते हैं–
एक पत्थर को?
हम क्यों कैद कर लेते हैं
उसे मंदिर में?
जान कर भी–
कि पत्थर के पाँव नहीं होते।
हम उससके बातें करते हैं
जानकर भी–
कि वह सुन नहीं सकता
हम क्यों आशा करते हैं–
कि वह बोलेगा
और जब भी बोलेगा–
केवल तथास्तु कहेगा?
बस–
और कुछ नहीं?

(अपराजिता पुस्तक से)

लालित्य ललित जी का बीकानेर आगमन और उनसे मुलाक़ात का अपना एक अलग ही आनन्द था।

हंसी खुशी मज़ाक़ और गीत कविता और तीखे करारे चुटीले व्यंगात्मक लहज़े वाले सम्वादों में कब शाम गुज़र गयी पता ही नहीं चला। इन सब के अलावा यह शानदार पुस्तक भी मिली चुप हैं शब्द और उनके अर्थ।

वैसे लालित्य जी की कविताओं पर लिखना मुझ सरीखी का बनता नहीं फिर भी, पुस्तक पढ़ी तो रहा नहीं गया।

सच पूछिये तो इनकी कविताओं में जो सहज शब्दों में अतुकांत लिखी कविताएं हैं, गूढ़ अर्थ निकलते हैं और देर तक शब्द आपको जकड़े रहते हैं। कोई इतनी संगीन बात इतने हल्के से लगने वाले शब्दों में कैसे कह सकता है!

फ़ुर्सत से पढ़ी कुछ कविताएं और बानगी के तौर पर दो कविताएं शेयर कर रही हूँ।

'आप मस्त झूठ बोलिये आपकी तरक्क़ी के रास्ते खुले हैं'

क्या लिख डालते हैं आप बड़ी ही सहजता से!

लालित्य जी को बधाई व उनकी अर्धांगिनी राजेश्वरी मंडोरा को दुगुनी बधाई क्योंकि सफ़ल लेखक होने में उनका भी बड़ा योगदान है।

लाईफ पाटनर यदि स्पेस न दे तो?

सुलक्षणा राजवंशी दत्ता

आपकी कविताओं का फलक पहाड़ से लेकर मैदान तक गाँव से लेकर महानगर तक अत्यंत व्यापक और विस्तृत है। इन मुक्त छंद की रचनाओं के माध्यम से वर्तमान और आसपास की जिंदगी की कहीं कटु और यथार्थ इनमें परिलक्षित होता है।

–प्रदीप पंत

फार्म-5

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाना है।

1. **प्रकाशन का स्थान** : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. **प्रकाशन का समय काल** : त्रैमासिक

3. **मुद्रक का नाम** : बालाजी ऑफसेट,
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

4. **प्रकाशक का नाम** : डॉ. संजीव कुमार
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. **सम्पादक का नाम** : डॉ. संजीव कुमार
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति ओर साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

मैं डॉ. संजीव कुमार, एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।